शोध नवनीत

ISSN : 2321-6581
जनवरी - जून - 2024
वर्ष : XII, अङ्क - I
कुल अङ्क - XXII

शोध नवनीत
SHODH NAVNEET

षाण्मासिकी अन्ताराष्ट्रिया शोध-पत्रिका

The Half Yearly International Peer-Reviewed
Research Journal of Humanities and
Oriental Knowledge

हमारा प्रयास समाजोपयोगी,
नवीन एवं प्राच्यज्ञान का प्रकाशन

"Our whole effort is to publish
societal, innovative and
oriental knowledge"

स्तुति प्राच्यविद्या समिति, गोण्डा (उ.प्र.)
STUTI PRACHYAVIDYA SAMITI, GONDA (U.P.)
अन्तर्जाल (Website) : www.shodhnavneet.com
अणुसंकेत (E-mail) : shodhnavneet@gmail.com
चलभाष (contact us) : +91-7800193920

जनवरी - जून 2024 ISSN : 2321-6581

वर्ष : XII, अङ्क - I, कुल अङ्क - XXII

शोध नवनीत

SHODH NAVNEET

(षाण्मासिकी अन्ताराष्ट्रिया शोध-पत्रिका)

The Half Yearly International Peer-Reviewed (Refereed)
Research Journal of Humanities and Oriental Knowledge

हमारा प्रयास समाजोपयोगी, नवीन एवं प्राच्यज्ञान का प्रकाशन

Our whole effort is to publish societal, innovative and oriental knowledge.

प्रधान सम्पादक :

डॉ. अवधेश प्रताप सिंह

असिस्टेंट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

सम्पादक :

डॉ. प्रमोद कुमार मिश्र

असिस्टेंट प्रोफेसर-संस्कृत, गौतमबुद्ध राजकीय महाविद्यालय, अयोध्या (उ.प्र.)

सह-सम्पादक :

डॉ. आशुतोष पारीक

असिस्टेंट प्रोफेसर, सम्राट पृथ्वीराज चौहान राजकीय महाविद्यालय अजमेर, राजस्थान

डॉ. सुनील कुमार शर्मा

सहायक आचार्य, शिक्षाशास्त्र विभाग, श्री लालबहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ, नव देहली

स्तुति प्राच्यविद्या समिति

51- जबर नगर, पो. परास,

जिला - गोण्डा, उत्तर प्रदेश, भारत - **271403**

अन्तर्जाल (Website) : www.shodhnavneet.com

अणुसंकेत (E-mail) : shodhnavneet@gmail.com

चलभाष (contact us) : +91-7800193920

- **प्रबन्ध सम्पादक**
  डॉ. अनुराधा शुक्ला

- **विधिक सलाहकार**
  श्री सतीश कुमार मिश्र
  एडवोकेट, चैम्बर नम्बर 18 ए, हाईकोर्ट, प्रयागराज – 211 002

- **शोध नवनीत**
- **Shodh Navneet (International Peer-Reviewed (Refereed) Research Journal)**
- **ISSN : 2321-6581**
- **वर्ष : XII, अङ्क : I, कुल अङ्क : XXII, जनवरी – जून 2024**

© प्रकाशक द्वारा सभी अधिकार सुरक्षित

- प्रकाशक
  स्तुति प्राच्यविद्या समिति (Reg. No. - 1137/2013-14)
  म० सं० 51, जबर नगर, पो० परास
  जिला – गोण्डा, उत्तर प्रदेश, भारत – 271403
- सम्पर्क सूत्र : +91-7800193920
- अणु-सङ्केत : **shodhnavneet@gmail.com**
- बेबसाइट : **www.shodhnavneet.com**
- सहयोग राशि (Subscription) : प्रति अङ्क **₹ 150**
  Soft Copy : Free by E-mail or Free Download from- www.shodhnavneet.com
- **D.D. 'Stuti Prachyavidya Samiti' Payable at 'Gonda'** के पक्ष में होना चाहिए।

- मुद्रित :
  प्रभा कम्प्यूटर्स एण्ड प्रिंटर्स
  30/21, यूनिवर्सिटी रोड, प्रयागराज – 211 002

नोट : शोधपत्र/शोधलेख के प्रति सम्पूर्ण उत्तरदायित्व उसके आलेखकों का होगा तथा लेखकों के मत से सम्पादक, सम्पादक मण्डल आदि का सहमत होना अनिवार्य नहीं है। सम्पादक मण्डल/समीक्षक समिति आदि द्वारा चयनित शोधपत्रों को निःशुल्क प्रकाशित प्रदान किया जाएगा। शोध नवनीत से सम्बन्धित किसी भी विवाद के लिए न्यायिक क्षेत्र जनपद न्यायालय फैजाबाद होगा। ₹ 1500 सहयोग राशि का भुगतान करके 'शोध नवनीत' शोध पत्रिका का वार्षिक सदस्य बना जा सकता है। सदस्य बनने पर सदस्यता प्रमाण-पत्र के साथ पत्रिका का वार्षिक दो अङ्क प्रदान किया जायेगा। प्रत्येक वर्ष जनवरी-जून अङ्क का प्रकाशन जुलाई माह के प्रथम सप्ताह में एवं जुलाई-दिसम्बर अङ्क का प्रकाशन जनवरी माह के प्रथम सप्ताह में किया जायेगा।

मुख्य संरक्षक (Chief Patrons)

- **प्रो. राम सेवक दुबे**

  कुलपति, जगद्गुरु रामानन्दाचार्य राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय, जयपुर, राजस्थान
- **प्रो. रमेश कुमार पाण्डेय**

  पूर्व कुलपति, श्री लाल बहादुर राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली
- **प्रो. के. रविशङ्कर मेनोन**

  पूर्व-कुलसचिव एवं संकायप्रमुख शिक्षाविभाग,

  राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ (मा. वि.), तिरुपति (आ.प्र.)
- **प्रो. राम किशोर शास्त्री**

  पूर्व-अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
- **प्रो. सत्यप्रकाश दुबे**

  आचार्य, संस्कृत विभाग, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय जोधपुर, राजस्थान
- **प्रो. जि.एस. कृष्णमूर्ति**

  संकाय प्रमुख, साहित्य विभाग, राष्ट्रिय संस्कृत विश्वविद्यालय, तिरुपति

सम्पादक मण्डल (Editorial Board)

- **प्रो. उमेश प्रसाद सिंह**

  पूर्व आचार्य, संस्कृत विभाग, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
- **प्रो. रंजन त्रिपाठी**

  संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
- **डॉ. विजय कुमार शर्मा**

  वेद विभाग, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ.प्र.)
- **प्रो. सत्यपाल तिवारी**

  हिन्दी विभाग, राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
- **डॉ. जितेन्द्र कुमार सिंह**

  सह-आचार्य, हिन्दी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, राजस्थान
- **डॉ. गीता शुक्ला**

  एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभागाध्यक्ष

  भगवानदीन आर्यकन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, लखीमपुरखीरा (उ.प्र.)
- **डॉ. शैलेन्द्र कुमार शाहू**

  सहायक आचार्य, साहित्य विभाग,

  संस्कृत विद्या धर्म विज्ञान संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

- **डॉ. बबलू पाल**

  सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग,

  महात्मा गांधी केन्द्रीय विश्वविद्यालय, मोतिहारी, बिहार

- **डॉ. नरेन्द्र कुमार पाण्डेय**

  सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग,

  हिमांचल प्रदेश केन्द्रीय विश्वविद्यालय, धौलाधार परिसर-१, धर्मशाला, हिमांचल प्रदेश

- **डॉ. आभा द्विवेदी**

  सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग,

  सिद्धार्थ विश्वविद्यालय, कपिलवस्तु, सिद्धार्थनगर

- **डॉ. राजीव रंजन**

  असिस्टेंट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

- **डॉ. विवेक शर्मा**

  असिस्टेंट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,

  हिमाचल प्रदेश केन्द्रीय विश्वविद्यालय धर्मशाला, हिमाचल प्रदेश

- **डॉ. देवराज**

  सहायक आचार्य, संस्कृत इक्डोल,

  हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय शिमला, हिमाचल प्रदेश

- **डॉ. हरिपद महापात्र**

  सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग,

  साँकराइल अनिल विश्वास स्मृति महाविद्यालय झाडग्राम, पश्चिम बंगाल

- **डॉ. प्रताप चन्द्र राय**

  सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग,

  सिधो-कानहो वीरसा विश्वविद्यालय पुरुलिया, पश्चिम बंगाल

- **डॉ. रवि प्रभात**

  सहायक प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,

  महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक, हरियाणा

- **डॉ. शैलेन्द्र कुमार मिश्र**

  असिस्टेंट प्रोफेसर, मानवशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

- **डॉ. विशाल श्रीवास्तव**

  असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, राजकीय महाविद्यालय पचवस बस्ती (उ. प्र.)

- **डॉ. अमित कुमार मिश्र**

  विभागाध्यक्ष, पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग,

  जी.एन.एस. विश्वविद्यालय, जमुहार, सासाराम, विहार

- **श्री आदित्य प्रताप सिंह**

  असिस्टेंट प्रोफेसर, शारीरिक शिक्षा विभाग,

  राजकीय महाविद्यालय पचवस बस्ती (उ. प्र.)

- **डॉ. रजनीश शर्मा**

  प्राचार्य, कंचन देवी शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय

  एवं कंचन देवी कॉलेज ऑफ कम्प्यूटर साइंस भीलवाड़ा, राजस्थान

- **डॉ. परमेश कुमार शर्मा**

  सहायक आचार्य–शिक्षाशास्त्र विभाग,

  श्री लाल बहादुर राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ, नव देहली

समीक्षक समिति / निर्णायक मण्डल
(Review Committee/Referees Board)

- **प्रो. पी. के. साहू**

  पूर्व–आचार्य, शिक्षाशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

- **प्रो. ई. एम. राजन**

  केन्द्रीय संस्कृतविश्वविद्यालयः, गुरुवायूर–परिसरः, तृश्शुर, केरलम्

- **प्रो. सुशील कुमार शर्मा**

  पूर्व–आचार्य, अंग्रेजी एवं आधुनिक यूरोपियन भाषा विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

- **प्रो. उमाकान्त यादव**

  पूर्व–आचार्य, संस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

- **प्रो. आमोदवर्धन कौण्डिन्न्यायन**

  वेद विभाग, वाल्मीकि विद्यापीठ, काठमाण्डू, नेपाल संस्कृत विश्वविद्यालय, नेपाल

- **डॉ. बजरंग बिहारी तिवारी**

  एसो. प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, देश बन्धु डिग्री कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

- **प्रो. प्रदीप कुमार दीक्षित**

  संस्कृत विभाग, विक्रमाजीत सिंह सनातन धर्म कॉलेज, नवाबगंज, कानपुर (उ.प्र.)

- **प्रो. अमूल्य कुमार सिंह**

  प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, का. सु. साकेत महाविद्यालय, अयोध्या (उ.प्र.)

- **डॉ. राजीव सिन्हा**

  असिस्टेंट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, श्रीकृष्ण महाविद्यालय,

  नदीया (कल्याणी विश्वविद्यालय), पश्चिम बंगाल

- **डॉ. सुदेव**

  असिस्टेंट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, पाँच मुड़ा विश्वविद्यालय, बाँकुड़ा, पश्चिम बंगाल

- **डॉ. उमाकान्त प्रसाद**

  असिस्टेंट प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विभाग, विश्वभारती, शान्ति निकेतन, पश्चिम बंगाल

परामर्शदात्री समिति (Advisory Committee)

- **डॉ. जी. गङ्गाधरन नायर**
  पूर्व डीन एवं प्रोफेसर, संस्कृत व्याकरण विभाग,
  श्री शङ्कराचार्य संस्कृत विश्वविद्यालय, कालडी, केरल
- **प्रो. ए. पी. सच्चिदानन्द**
  प्राचार्य, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान (मा. वि.), राजीव गाँधी परिसर शृङ्गेरी , कर्नाटक
- **प्रो. लक्ष्मीनिवास पाण्डेय**
  प्राचार्य, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान (मा. वि.), वेदव्यास परिसर बलहार, हिमाचल प्रदेश
- **प्रो. सुकान्त सेनापति**
  परीक्षा नियन्त्रक, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान (मा. वि.), नव देहली
- **प्रो. मनोज कुमार मिश्र**
  विभागाध्यक्ष, वेद विभाग, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान (मा. वि.), नव देहली
- **प्रो. सुरेश चन्द्र दुबे**
  पूर्व-आचार्य, अंग्रेजी एवं आधुनिक यूरोपियन भाषा विभाग,
  इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
- **श्रीमती प्रियंवदा काफ्ले**
  एसो. प्रोफेसर, इतिहास पुराण विभाग (वाल्मीकि विद्यापीठ),
  नेपाल संस्कृत विश्वविद्यालय, नेपाल
- **डॉ. विजय शङ्कर द्विवेदी**
  असिस्टेंट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
- **डॉ. शिव कुमार मिश्र**
  प्रधानाचार्य, राजकरन वैदिक इण्टर कॉलेज, अयोध्या (उ.प्र.)

नोट : शोधपत्र/शोधलेख का प्रकृति के अनुसार सम्पादक मण्डल एवं समीक्षक समिति में अन्य विषय विशेषज्ञों का सहयोग लिया जा सकता है। शोधपत्र दो या दो से अधिक विशेषज्ञों की समीक्षा के अनन्तर ही प्रकाशित किया जाएगा।

सम्पादकीय (Editorial)

मानवीय संवेदना के विविध पक्षों के माध्यम से अनुस्यूत एवं ईश्वर प्रदत्त भारतीय ज्ञान परम्परा सृष्टि के प्रारम्भ से ही अपनी महत्ता को बनाये हुए है। भारतीय ज्ञान परम्परा में प्राचीनकाल से ही जीवन के विविध पक्षों पर चिन्तन-मनन अनवरत् जारी था। इस परम्परा में हम सृष्टि, सृष्टि प्रक्रिया, ईश्वर, ब्रह्म, आत्मा-परमात्मा के साथ-साथ मानवीय जीवन के विविध पक्ष यथा - ज्ञान-विज्ञान, चिकित्सा, खगोलशास्त्र, वास्तुशास्त्र, कला, संगीत, काव्य-काव्यशास्त्र, भाषाविज्ञान, व्याकरण, शिक्षा, मानवीय मूल्य, पर्यावरण संरक्षण आदि के सृजन, चिन्तन और इनके विस्तार में हमारे मनीषी अग्रसर रहे हैं। भारतीय ऋषियों एवं विद्वानों का चिन्तन केवल भारतीयों के लिए न होकर अपितु मानव कल्याण एवं वैश्विक जगत् के लिए था। भारतीय संस्कृति सम्पूर्ण विश्व को अपना परिवार मानती है। इसी को व्यक्त करते हुए ऋषि कहता है -

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेद्॥

भारतीय ज्ञान परम्परा नित्य अपने चिन्तन और शोध के द्वारा नवीन ज्ञान का सृजन एवं मूल्याङ्कन में निर्मग्न रही है। जिसका विपुल भण्डार भारतीय वैदिक वाङ्मय एवं लौकिक वाङ्मय में दृष्टिगोचर होता है। यहाँ वेद, पुराण, स्मृतिग्रन्थ, दार्शनिकग्रन्थ, काव्य, नाट्य, गद्य, संगीत, व्याकरण, भाषा आदि का सूक्ष्म चिन्तन भारतीय शोध परम्परा का प्रकर्ष है। ऋषियों एवं कवियों ने सरस (सहज) भावाभिव्यक्ति में मानवीय मूल्यों की स्थापना पर बल दिया है। इसी क्रम में हमारा प्रयास है कि अपने प्राचीन ज्ञान की समीक्षा करते हुए उसको और अधिक जनोपयोगी एवं सर्वग्राह्य बनाया जाए, जिससे मोह-माया, भ्रष्टाचार की ओर अग्रसर होते वैश्विक जगत् को नवीन दिशा दी जा सके और लोगों में त्याग और मानवीय मूल्यों की स्थापना की जा सके।

'शोध नवनीत' शोध पत्रिका निरन्तर एक दशक से प्रकाशित हो रही है। इसका यह 22वाँ अङ्क (जनवरी-जून 2024) आप सभी विद्वानों को समर्पित है। इस अङ्क में वैदिक, लौकिक साहित्य एवं मानविकी से संबन्धित समाचीन विचारों के साथ विविध सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक विषयों को समाहित करने वाले संस्कृत हिन्दी एवं अंग्रेजी भाषा के चयनित शोधलेखों का संकलन किया गया है। ये आलेख अपने विषय के प्रतिपादन के साथ ही नवीन शोध के प्रेरक भी हैं। अतः इनका पठन, मनन आदि शोधार्थियों के लिए अत्यन्त उपादेय है। प्राच्यज्ञान को संरक्षित एवं प्रकाशित करने वाली वर्तमान शोध को वैश्विक पटल पर ले जाने के लिए अनवरत प्रयत्नशील यह पत्रिका आपके सफल अनुसन्धान की सहगामिनी और प्रेरिका के रूप में सदैव आपके साथ है। **'चरैवेति चरैवेति'** इस परम्परा का सम्यक् निर्वाह के लिए अपने 'शोध-नवनीत' के सुधी पाठकों/लेखकों एवं सहयोगियों के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं।

सादर।

प्रधान सम्पादक/सम्पादक

विषयानुक्रमणिका
(CONTENTS)

- **महाभारतीय-राजनीत्याम् अमात्य-महत्त्वम्** **01**
  डॉ. जयदेवः पण्डा
- **वायुपुराणानुसारं गयातीर्थस्य वैशिष्ट्यम्** **14**
  डॉ. पारमिता पण्डा
- **प्राचीन-भारतीयायुर्वेदशास्त्रे महामारीरूपे तक्मा यक्ष्मा च** **20**
  डॉ. सुजय दासः
- **नीलमतपुराणे वर्णितः वैष्णवसम्प्रदायः** **28**
  डॉ. विवेक शर्मा, रमन कुमार शर्मा
- **कालिदासस्य रूपकेषु शिवोपासना** **34**
  डॉ. नरेन्द्रकुमारपाण्डेयः
- **पाणिनिव्याकरणपरम्परायां वैद्यनाथपायगुण्डे : एकमध्ययनम्** **40**
  शंखशुभ्रः गच्छितः
- **केशवाचार्यचरितमहाकाव्यस्य स्वरूपम्** **48**
  डॉ. विवेकशर्मा, रवि कुमार
- **श्रीमद्भगवद्गीता में ज्ञानयोग विमर्श** **57**
  डॉ. बबलू पाल
- **वर्तमान वैश्विक जगत् में वैदिक आर्थिक विमर्श की उपादेयता** **67**
  डॉ. अनूप कुमार अत्रेय, डॉ. आशुतोष पारीक
- **श्रीमद्भगवद्गीतायां मानसिकस्वास्थ्यप्रबन्धनम्** **74**
  गोपालकृष्णमिश्रः
- **महाभारत में गर्भसंस्कार की परंपरा : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन** **87**
  शुभम राय, डॉ. उर्वशी सी पटेल

- **पाणिनीय कारक -विभक्ति** **94**
  डॉ. गुंजन गर्ग
- **संस्कृत वाङ्मय में वर्णित ईश्वर-भक्त बालक उपमन्यु के चरित का अनुशीलन** **108**
  डॉ. दीक्षा शर्मा
- **रामायण एवं महाभारत का सांस्कृतिक महत्त्व** **113**
  डॉ. सुरेश कुमार सांदू
- **महाभारत के शान्तिपर्व में वर्णित धर्म की साम्प्रतिक उपादेयता** **120**
  ज्योति मिश्रा
- **कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी का हिन्दी प्रेम** **126**
  डॉ. जितेन्द्र कुमार सिंह
- **कमलेश्वर के उपन्यासों में चित्रित समाज** **132**
  डॉ. श्रुति शर्मा
- **कृष्णा सोबती के उपन्यास जिंदगीनामा में जीवन मूल्य** **138**
  राधा सिंह
- **श्रीकृष्ण का गोकुलागमन लीला माहात्म्य और चित्रकला में उसकी अभिव्यक्ति** **144**
  जसवन्त सिंह चौधरी
- **प्रेमचन्द के साहित्य में नारी की स्थिति** **150**
  रामकरण रावत
- **राजस्थानी साहित्य, कला एवं संस्कृति में लोकनाट्य का योगदान** **155**
  हर सहाय शर्मा
- **अचलदास खीची री वचनिका का अनुशीलन** **161**
  कुलदीप बारहठ
- **'गवेषणा' का रामधारी सिंह 'दिनकर' विशेषांक : एक परिचय** **167**
  नवीन कुमार जोशी

- **कुमारसम्भवम् महाकाव्य में हिमालय : एक वर्णन** **171**
  (प्रथम सर्ग के विशेष सन्दर्भ में)
  कुलदीप कुमार गुप्ता
- **जनपद फिरोजाबाद के विकास में कृषि की भूमिका : एक सूक्ष्म स्तरीय भौगोलिक अध्ययन** **177**
  रूम सिंह, प्रो. मौकम सिंह यादव
- **ग्रामीण क्षेत्र में अनुसूचित जाति की महिलाओं के समक्ष शैक्षणिक चुनौतियाँ एवं बदलता परिदृश्य** **182**
  डॉ. सुमित्रा शर्मा
- **नई सदी की हिन्दी फिल्मों में स्त्री मुद्दे एवं प्रतिनिधि फिल्में** **193**
  डॉ. दिनेश कुमार सैनी
- **संस्कृत वाङ्मय में 'धर्म' एक दर्शन** **197**
  डॉ. प्रवीण शर्मा

Shodh Navneet (International Peer-Reviewed Research Journal)
ISSN : 2321-6581, Vol. XXII, January - June 2024

महाभारतीय-राजनीत्याम् अमात्य-महत्त्वम्

डॉ. जयदेवः पण्डा*

महाभारतं न केवलमाख्यानम्, अपि तु समग्रस्यापि संस्कृतवाङ्मयस्य सारभूतम्। महाकाव्यमिदं सर्वविषयसंकलनात् सकलशास्त्रीयतत्त्वसारग्रहनात् गौरवं विवृणते। तदानीन्तनः समग्रोऽपि वैदिको लौकिकश्च प्रथितो विषयो महाभारते संलक्ष्यते। महाभारतेऽस्मिन् काव्यं दर्शनम्, अध्यात्मं, वैदिकतत्त्वम्, ऐतिह्यम्, आख्यानं, नीतितत्त्वं, राजनीतिसारोऽन्यच्चापि लोकोपयुक्तं तत्त्वज्ञानं सुमधुरया शैल्या उपस्थाप्यन्ते। एवं विज्ञायते यद् महाभारतं गुणगौरवात्, सर्वविषयावगाहितत्वात्, आचारशिक्षणात्, पावनत्वाच्च पञ्चमो वेद इति। धर्म-अर्थ-काम-मोक्षविषयकम् अखिलं जिज्ञासितं तथ्यमत्रोपनस्यते। न च किञ्चिदुच्छिष्यते। अतएव ग्रन्थकर्तुः इयमुत्घोषणा न विप्रतिपत्तिमाश्रयते यत् -

धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ।
यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्।। [१]

अतएव एतस्मिन् व्यासेनोपदिष्टा राजनीतिशिक्षा राजनीतिः वा विशदेन आलोचिता भूता, अस्मिन् विषये नास्ति कापि सन्देहावसरा। किञ्च राजनीत्याम् अमात्यः स्तम्भस्वरूपः। महाभारतेऽपि अमात्यानां महनीयत्वं प्रदिपादितम्। अत्र मया **''महाभारतीय-राजनीत्याम् अमात्य-महत्वम्''** विषयेऽस्मिन् आलोचना उपस्थाप्यते।

भारतवर्षस्य राजनीतिशास्त्रप्रणेतारः सर्वथा निरङ्कुश-शासनव्यवस्थाया विरुद्धा आसन्। ते खलु अमात्येभ्यः स्वामीत्यादिषु सप्तप्रकृतिषु द्वितीयस्थानं प्रदत्तवन्तः। सर्वे प्राचीनाः आचार्याः मन्त्रीपदस्य महत्त्वं स्वीकुर्वन्ति। मनुस्मृत्यां प्रदर्शितं यत्- *''अपि यत्सुकरं कर्म तदप्येकेन दुष्करम्। विशेषतोऽसहायेन किन्तु राज्यं महोदयम्।।''* [२] अर्थात्, साधारणकार्यमपि सहायतां विना सफलतां न प्रयाति का कथा दुष्कर- राजकार्यस्य। किञ्च कौटिलीय-अर्थशास्त्रे राजा-अमात्यौ रथस्य चक्राभ्यां तुल्येते। कौटिल्येनोक्तम्-

सहायसाध्यं राजत्वं चक्रमेकं न वर्तते।
कुर्वीत सचिवांस्तस्मात्तेषां च शृणुयान्मतम्।।[३]

एवं महाभारतेऽपि मन्त्रिणां महत्त्वं बहुषु स्थलेषु आलोचितम्। शान्तिपर्वणि कालकवृक्षीय-मुनिना विदेहराजो जनक उक्तः यत् मन्त्रिणां सहायतां विना राजा दिवसत्रयमपि राज्यं सञ्चालयितुं न

* सहाध्यापकः, संस्कृतविभागः, पञ्चकोट-महाविद्यालयः, पुरुलिया, पश्चिमबङ्गः

शक्नोति–***''न राज्यममात्येन शक्यं शास्तुमपित्र्यहन्।''***[४] तस्मिन् पर्वणि एवमपि कथितमस्ति–

यदल्पतरं कर्म तदप्येकेन दुष्करम्।
पुरुषेणासहायेन किमु राज्यं पितामहः।।[५]

उद्योग–पर्वणि विदुरेण दुर्योधनः कथितः यत् – तव पितरौ मित्राणाममात्यानां च विनाशात् परं पक्षहीनं पक्षिणमिव कष्टौ अनुभविष्यतः – *''हतमित्रौ हतामात्यौ लूनापक्षाविवाण्डजौ।''*[६] एतत्सर्वं मन्त्रिणां महत्त्वमुद्घोषयति। किञ्च शान्तिपर्वणि कथितमस्ति – *''कुलबाहुधनामात्याः प्रज्ञा चोक्ता बलानि च।''*[७] अर्थात् अमात्यो राज्ञो बलरूपेण प्रतिपादितः। सुसहाययुक्तो राजा हि सम्पूर्णां पृथ्वीं शासितुं शक्यते। शल्यपर्वणि मतमिदं प्रतिफलितम्– ***''असहायो हि को राजा राज्यमिच्छेत् प्रशासितुम्।''***[८] न केवलं मनुष्यानां पशुराज–शार्दुलोऽपि मन्त्रिपदस्य आवश्यकतामनुभूतवान्। महाभारतकारेण शृगाल–मुखात् प्रकाशितं सत्यमिदम् – *''शक्यमनमात्येन महत्वमनुशासितुम्।''*[९] एतत्सर्वं वचनं प्रमाणीक्रियते मन्त्री राज्यस्य एकः स्तम्भस्वरूपः। मन्त्री हि राज्यस्य स्थैर्यं तथा दृढतां विधत्ते – *''मन्त्रिणां मन्त्रमूलं हि राज्ञो राष्ट्रं विवर्धते।''*[१०]

उपाधिः– प्राचीनभारतवर्षस्य राजनैतिकग्रन्थेषु अभिलेखेषु च आङ्गलभाषायां व्यवहृतः ''मिनिष्टार'' इति शब्दोऽयममात्यः सचिवः मन्त्री चेति शब्दत्रयेणाभिधीयते। साधारणदृष्ट्या यद्यपि त्रयच्छब्दाः पर्यायवाचिनस्तथापि बहुषु राजनैतिकग्रन्थेषु एते शब्दा भिन्नार्थेन व्यवहृयन्ते। शुक्रस्य नीतिसारानुसारेण सचिवः सेनाध्यक्षः अमात्यश्च राजस्व–विभागस्याध्यक्ष आस्ताम्, मन्त्रिणां कार्यमासीत् राज्ञः मन्त्रणादानम्।[११] कौटिल्येनापि अमात्यानां मन्त्रिणां च नियोगे भिन्ना भिन्ना योग्यता निर्धारिता।[१२]

महाभारतेऽपि एतेषामुपाधित्रयाणाम् उल्लेखः प्राप्यते। तत्र कुत्रापि उपाधिद्वयस्य कुत्रापि वा तस्याधिकानामुपाधीनाम् एकत्र समार्थकरूपेणोल्लेखः प्राप्यते। आदिपर्वणि सचिवो मन्त्री चेति उपाधिद्वयं सदृशार्थेन व्यवहृयते।[१३] नृपतेः संवरणस्य मन्त्रिणः सचिवस्तथा अमात्यश्चेति उपाधिद्वयेन सम्बोधीयन्ते।[१४] एवं लोमपादस्य मन्त्रिणः सचिवोऽमात्यश्चेति उपाधिभ्याम्,[१५] राज्ञः सोमकस्य मन्त्रिणः अमात्यो मन्त्री चेति नामभ्याम्,[१६] अपि च अयोध्यानरेश–दशरथस्य मन्त्रिणः सचिवो मन्त्री चेति उपाधिद्वयेन वर्णीयन्ते।[१७] शुक्रस्य मतानुसारेण केवलं मन्त्रणादानं मन्त्रिणां कार्यम्, परन्तु महाभारते वयं राजानममात्येन सचिवेन वा सह मन्त्रयितुं प्रेक्षामहे।[१८] अतएव उपर्युक्तानि दृष्टान्तानि अमात्यो मन्त्री सचिवश्चेति उपाधित्रयस्य पर्यायवाचितानि प्रकाशितानि।

संख्या– महाभारतानुसारेण राजकार्यं विधिना परिचालयितुं मन्त्रिभिः सह मन्त्रणायाः आवश्यकता प्रदर्शयिता। यतः केनचिदेकेन व्यक्तिना मन्त्रणेष्टानां गुणानामाधारेण भवितुमशक्यम्, तदर्थं भीष्मस्य मतानुसारतो मन्त्रिणां संख्या स्वल्पं मा भवेत्, यतः राजा बहुभिः विशेषज्ञैः सह परामृशेत।

ग्रन्थेऽस्मिन् मन्त्रिणां संख्याविषये विचाराणां विभिन्नता परिलक्षिता। भीष्मेण उपदिशता

युधिष्ठिरः कथितः - मन्त्रिणां संख्या सप्तत्रिंशत् स्यात्। तस्मिन् मन्त्रिमण्डले चत्वारो ब्रह्मणाः, अष्ट क्षत्रियाः, एकविंशतिसंख्यकाः वैश्याः, त्रयः शूद्राः, सूतश्चेकः स्युः।[१९] किन्तु तस्मिन् अष्टसंख्यकैः मन्त्रिभिः गठितः लघुः मन्त्रिमण्डलोऽपि आसीत्, यः खलु अधुनातनेन 'केविनेट' इत्यनेन सह तुल्यते। यस्य स्थितिः शान्तिपर्वणि वचनेनानेन प्रतीता- *"अष्टानां मन्त्रिणां मध्ये मन्त्र राजोपधारयेत्।"* [२०] भीष्मस्य मतानुसारतः मन्त्रिणां संख्या त्र्यूना भवितुं न युक्ता। राजा त्रयानां मन्त्रिणां पृथक् पृथक् मतानि विज्ञाय यत्नेन विमृष्टवान्-

तेषां त्रयाणां विविधं विमर्शं विवुध्यचित्तं विनिवेश्य तत्र।
स्वनिश्चयं तं परनिश्चयं च निवेदयेदुत्तरमन्त्रकाले।।[२१]

अतएव महाभारते विस्तृतो मन्त्रिमण्डल आसीत्, यत्र मन्त्रिसंख्यासीत् सप्तत्रिंशत्। परन्तु सर्वैः सह मन्त्रणया मन्त्रभेदस्य सम्भावना स्यात्। अतो मन्त्रसंवरणस्याभिप्रायात् राजा तेषु कतिपयैः सह अमन्त्रेयत। तेषां संख्या त्र्यल्पा अपि तु अष्टाधिका भवितुं न योज्या।

गुणः- शासनव्यवस्थायां मन्त्रिणां महत्त्वपूर्णं स्थानमनस्वीकार्यम्। अतएव तेषां नियुक्तिः सावधानेन भवितव्या। मन्त्रिपदे ते खलु नियुक्ता अभवन् येषु मन्त्रिपदार्थमपेक्षिता गुणा आसन्। अतो भीष्मेणोक्तम्-

नापरीक्ष्य महीपालः सचिवं कर्तुमर्हति।
अकुलीननराकीर्णो न राजा सुखमेधते।। [२२]

महाभारते अस्माभिः सचिवः अमात्यो मन्त्री चेति पर्यायवाचि-शब्दानां गुणानां बृहती तालिका प्राप्यते। भीष्मस्य मतानुसारतः सचिवः स्यात् कुलीनः, सुशिक्षितो, ज्ञानविज्ञानपारगः, सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञः, सहिष्णुः, देशजः, कृतज्ञो, बलवान्, क्षमाशीलो, मनो दमनी, जितेन्द्रियो, निर्लोभी, संन्तोषी, स्वामिनो मित्राणां च उन्नतिकामी, देशकालज्ञः, आवश्यकानां वस्तूनां संग्रहे तत्परः, हितैषी, अतन्द्रितश्च। अपि च स भवेत् स्वविषये युक्ताचारः, सन्धिविग्रहकोविद्, राज्ञस्त्रिवर्गवेत्ता, पौरजनानां प्रियपात्रो, व्यूहनिर्माणकुशलो, बलहर्षणकोविद्, इङ्गिताकारतत्वज्ञः, शत्रून् उद्दिश्य यात्राज्ञानविशारदो, हस्तिशिक्षासु तत्वज्ञो, निरहंकारी, निर्भीकः, उदारः, संयमी, युक्तकारी, शुद्धः, शुद्धजनाकीर्णः, प्रसन्नमुखः, प्रियदर्शणः, नेता, नीतिकुशलो, गुणचेष्टासमन्वित, उदण्डतारहितो, विनयशीलः, स्नेही, मृदुभाषी, धीरः, शूर-वीरो, महदैश्वर्यसम्पन्नो, देशकालोपपादकश्च।[२३] यो राजा एतेषां गुणानामाकरभुतं यं योग्यं पुरुषं सचिवपदे नियुक्तवान् तस्य राज्यमिन्दोः ज्योत्स्नया कान्तिं विच्छूरयति- *"सचिवं यः प्रकुरुते न चैनमवमन्यते। तस्य विस्तीर्यते राज्यं ज्योतस्ना ग्रहपतेरिव।।"* [२४]

पुनो त्र्यशीतितमे अध्याये *"अमात्याः कीदृशाः स्युः पितामह !"* [२५] प्रश्नस्यास्य पृच्छन्तं युधिष्ठिरं भीष्मो मन्त्रिणामावश्यकान् गुणान् वर्णितवान्। भीष्म-मतानुसारेण मन्त्रिणः स्युः कुलीनाः, शीलसम्पन्नाः, इङ्गितज्ञानाः, निष्ठुराः, देशकालविधानज्ञाः, भर्तृकार्यहितैषिणश्च। अधिकन्तु ते

पर्याप्तवचनाः, वीराः, प्रतिपत्तिविशारदाः, सत्त्वसम्पन्नाश्च भवेयुः।[२६]

किञ्च शान्तिपर्वणि पञ्चाशीतितमे अध्याये यत्र भीष्मेण सप्तत्रिंशत्संख्यकैः ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र-सूतमन्त्रिभिः समन्वितस्य मन्त्रिमण्डलस्यावश्यकता उपन्यस्ता तत्र तेन प्रतिवर्णानां मन्त्रिणां गुणाः अपि व्याख्याताः। सप्तत्रिंशत्संख्यकेषु मन्त्रिषु चत्वारो ब्रह्मणाः मन्त्रिणो वैदज्ञाः, प्रगल्भाः, स्नातकाः, शुद्धाश्च भवेयुः; अष्ट क्षत्रियाः भवेयुः वलिणः, शस्त्रधारिणश्च; एकविंशतिसंख्यकाः वैश्याः वित्तसम्पन्नाः स्युः; शूद्रत्रयं भवेत् विनीतम्, शुद्धं च; अष्टाभिः गुणैः युक्तः सूतः एको भवेत् पौराणिकः, प्रगल्भः, श्रुति-स्मृति-ज्ञानसम्पन्नो, विनयी, समदर्शी, विवदमानानां कार्ये शक्यो, निर्लोभी, व्यसनवर्जितश्च। किञ्च स सूतवर्णस्य मन्त्री खलु पञ्चाशद्वर्षवयसोऽपि स्यात्।[२७]

अशीतितमे अध्यायेऽपि अमात्यगुणाः वर्णिताः भीष्मेण। तत्र तेनोक्तम् – अमात्यः भवेत्-

मेधावी स्मृतिमान् दक्षः प्रकत्या चानृशंस्यवान्।
यो मानितोऽमानितो वा न च दुष्येत् कदाचन।।[२८]

अपि च यः खलु कुलीनः, शीलसम्पन्नः, सहनशीलो, निरहङ्कारी, शूरवीरः, श्रेष्ठो, विद्वान्, प्रतिपत्तिविशारदश्च भवेत् स अमात्यपदयोग्यः स्यात्।[२९]

यद्यपि महाभारते अमात्यो मन्त्री सचिवश्चेति पदत्रयस्य भिन्नं भिन्नं गुणं प्रदर्शितं तथापि तेषु गुणेषु सादृश्यं प्राप्तम्। अतोऽमात्यादि-पदत्रयं पर्यायवाचि भवति, अत्र नास्ति कोऽपि संशयः।

परीक्षाप्रणाली- महाभारतानुसारेण न परीक्ष्य कस्यचित् सचिवपदे नियोजनं न समीचीनम्। शान्तिपर्वणि भीष्मवचनेन मतमिदं प्रकटीयते – *"न परीक्ष्य महीपाल सचिवं कर्तुमर्हति।"* [३०] उद्योगपर्वणि विदुरेणापि सचिवनियोगं परीक्षया कर्तव्यमित्युक्तम्, यतः *"अमात्ये ह्यर्थलिप्सा च मन्त्ररक्षणमेव च"* [३१] अर्थात् धनप्राप्तिः मन्त्ररक्षणं चेति भारद्वयं न्यस्तम्। भीष्ममतानुसारतः *"स ते मन्त्रसहायः स्यात् सर्वावस्थापरीक्षितुम्"* [३२] अर्थात् सर्वावस्थायां यस्य परीक्षा स्यात् स खलु राज्ञो मन्त्रसहायो भवेत्।

अन्वयप्राप्तं साचिव्यम्- महाभारते अन्वयप्राप्तस्य मन्त्रित्वस्य उल्लेखः प्राप्यते। भीष्ममतानुसारेण राजा तमेव मन्त्रिपदे नियोजयेत् यस्य कुले मन्त्रिपदं पारम्परिकम् – *"पितृपैतामहो यः स्यात् स मन्त्रं श्रोतुमर्हति ।"*[३३] आश्रमवासिकपर्वणि अपि धृतराष्ट्रेणोपदिशता युधिष्ठिरः कथितः –

अमात्यानुपधातीतान् पितृपैतामहाञ्छुचीन्।
दान्तात् कर्मसु पुन्यांश्च सर्वेषु योजयेः।।[३४]

अर्थात् यः पितामहकालतोऽमात्यकर्म पश्यति स खलु मन्त्रीपदस्य योग्यो भवेत्। सभापर्वणि अपि अस्याः योग्यतायाः आवश्यकता प्रदर्शिता। तत्र नारदेन युधिष्ठिरः पृष्टः –

अमात्यानुपधातीतान् पितृपैतामहाञ्छुचीन्।

श्रेष्ठाञ्छ्रेष्ठेषु कश्चित् त्वं नियोजयसि कर्मसु।।[३५]

परन्तु भीष्मेण मन्त्रिणां योग्यता यथेष्टं समाद्रियते। तन्मतानुसारतो मन्त्रिकुले निर्गुणिनं मन्त्रिपदे न प्रतिष्ठापयेत्।

वर्णम्- मन्त्रिणां वर्णविषयकप्रश्ने महाभारतस्य विचारोऽत्यन्तम् उदारः आसीत्। शान्तिपर्वानुसारेण विद्वांसः क्षत्रियाः वैश्याश्च किञ्च बहुशास्त्रज्ञ-ब्रह्मणापि यदि दण्डनीत्यां निपुणाश्चेत् ते खलु मन्त्रिपदस्य अधिकारिणो भवेयुः -

विद्वांसः क्षत्रिया वैश्या ब्राह्मणाश्च बहुश्रुताः।
दण्डनीतौ तु निष्पन्ना मन्त्रिणः पृथ्वीपते।।[३६]

अत्र शूद्रमन्त्रिणामुल्लेखो न प्राप्यते परन्तु अन्यत्र शूद्रमन्त्रिणामुपस्थिति परिदृश्यते। शान्तिपर्वणि भीष्मेण सप्तत्रिंशत्संख्यकैः मन्त्रिभिः गठित-मन्त्रिसभायाः आवश्यकता उपदिष्टा, तस्मिन् परिषदि चत्वारो ब्रह्मणाः, अष्ट क्षत्रियाः, एकविंशतिसंख्यकाः वैश्याः, त्रयच्छूद्राः सूतश्च एको विद्यन्ते।[३७] अतएव भीष्मेण मन्त्रिणां नियुक्तिश्चतूर्णां वर्णानां प्रतिनिधित्वेन अक्रियत। परन्तु ब्राह्मण-मन्त्रिणामुल्लेखः बहुषु प्राप्यते। आश्रमवासिकपर्वणि धृतराष्ट्रेण युधिष्ठितः कथितः।

मन्त्रिणश्चैव कुर्वीथा द्विजान् विद्याविशारदान्।।
विनीतांश्च कुलीनांश्च धर्मार्थकुशलानृजुन्।
तैः सार्धं मन्त्रयेथास्त्वं नात्यर्थं बहुभिः सह।। [३८]

अत्र विद्वान्, प्रवीणो, विनयशीलः, कुलीनो, धर्मार्थकुशलश्चेति गुणसम्पन्नब्राह्मणस्य मन्त्रणायोग्यता प्रतिपादिता।

मन्त्रिणां कार्यम्- यद्यपि मन्त्रणादानं हि मन्त्रिणो मुख्यकार्यमासीत् तथापि तत्व्यतिरिक्ते विभिन्नप्रशासकीयविभागेऽपि तेषां कार्तकारिता परिलक्षिता। महाभारतमपि नास्य नियमस्य व्यतिक्रमम्।

शान्तिपर्वणि भीष्मेण युधिष्ठिरो राज्ञः प्रधानकर्तव्यविषये उपदिष्टः - *"अमात्यैः सह सम्मन्त्र्य कुर्यात् सन्धि वलीयसा।"*[३९] एवमाश्रमवासिकपर्वण्यपि धृतराष्ट्रो युधिष्ठिरमुपादिशत् - शत्रुणा सह सन्धिस्थापनकाले मन्त्रिभिः सह राजा गच्छेदिति।[४०] उद्योगपर्वणि दुर्योधनं प्रति कृष्णस्य वचनम् - तव पित्रे अमात्येन सह सम्मन्त्र्य पाण्डवैः सह सन्धिं रोचते इति।[४१] एतैः उदाहरणैः व्याख्याता सन्धिकार्ये मन्त्रिणो मुख्यभूमिका। न केवलं सन्धिकार्येषु शत्रोपरि आक्रमणमपि मन्त्रिभिः सह परामर्शेण निर्णीतम्। शान्तिपर्वणि बृहस्पतिः इन्द्रमुक्तवान् - राजा मन्त्रविद्भिः अमात्यैः सह सम्प्रधार्य शत्रोपरि प्रहरेत्।[४२] एवं कालकवृक्षीयो मुनिः कोशल-राजकुमारं क्षेमदर्शीमादिष्टवान् -

ततः सुहृद्बलं लब्ध्वा मन्त्रयित्वा सुमन्त्रिभिः।
आन्तरैर्भेदयित्वारीन् विल्वं विल्वेन भेदय।।[४३]

अर्थात् मन्त्रिभिः सह सम्मन्त्र्य शत्रुपक्षे भेदमुत्पादयेत्।

मन्त्रिणो न केवलं सन्धि-विग्रह-कार्येषु प्रवीणाः आसन्, युद्धविषयेऽपि ते खलु भागं नयन्ति। यथा द्रोणपर्वणि अभिमन्युः षट्शूरान् सचिवान् युद्धभूमौ जघान -

अथ कर्णस्य सचिवान् षट्शूरांश्चित्रयोधिनः।
साश्वसूतध्वजरथान् सौभद्रो निजघान ह।।[४४]

पुनः मन्त्री यदा कदा युद्धस्य स्थगितमपि अकारयत्। अस्योल्लेखः आश्वमेधिकपर्वणि प्राप्यते। यत्र अर्जुनेन गान्धारराज्यमाक्रान्ते सति गन्धार-राजमाता वृद्धमन्त्रिणा सह रणभूमौ समागत्य युद्धस्य स्थगितं कृतवती।[४५] विपत्संकुलो राजापि आपदतो मुच्यते मन्त्रिभिः साहचर्येण। वनपर्वणि गन्धर्वेण दुर्योधने वन्दिनि भूते सति तस्य अमात्याः खलु पाण्डवानां सहायतया कौरवममुच्यन्त।[४६]

एतत्व्यतिरिक्तशासनव्यवस्थायामपि मन्त्रिणामधिकारो विस्त्रतः आसीत्। उद्योगपर्वणि स्पष्टतया उल्लिखितमस्ति अर्थव्यवस्था अमात्यानामुपरि निर्भरासीत्- *"अमात्ये ह्यर्थलिप्सा च मन्त्ररक्षणमेव च।"* [४७] करसंग्रहकार्यस्य भारोऽपि मन्त्रिणामुपरि न्यस्तः आसीत्। शान्तिपर्वणि अमात्यान् शुल्कसंग्रहकार्ये नियोजनस्य उपदेशः प्रदर्शितः।

आकरे लवने शुल्के तरे नागवले तथा।
न्यसेदमात्यान् नृपतिः स्वाप्तान् वा पुरुषान् हिरान्।।[४८]

आश्रमवासिकपर्वतः एतत्खलु विज्ञाप्यते कृषिकार्यादयो मन्त्रिणामधीनाः आसीत् *"मन्त्रिप्रधानाश्च गुणाः षष्टिर्द्वावादश च प्रभो।"*[४९] किञ्च कूटनैतिक-कार्येऽपि तेषां भूमिकासीत्, यथा शान्तिपर्वणि "गणानां भेदेन योगमीप्सेथाः सह मन्त्रिभिः।"[५०] न्यायकार्योऽपि मन्त्रिणामुपरि न्यस्तः आसीत्-*"अथ योऽधर्मतः पाति राजामात्योऽथवाऽत्मजः। धर्मासने संनियुक्तो धर्ममूले नरर्षभः।।"*[५१]

मन्त्रिणां कार्यं केवलं राजनीतिक-प्रशासकीयक्षेत्रेषु न सीमाबद्धमासीत्, राज्ञो धार्मिककार्येषु स्वकीयकार्येषु चापि तेषां भूमिका दृश्यते। यथा आदिपर्वणि जनमेजये समर्थे भूते सति तेषां मन्त्रिणो राज्ञः पत्नीरूपेण काशीराज- सुवर्णवर्मणः कन्यां निर्धारितवन्तः।[५२] राजा-नलस्य मन्त्रिणोऽपि राजपुत्रं रक्षणार्थं विदर्भनगरीं प्रेषितवन्तः।[५३]

राजा राजसभायां सदैव मन्त्रिभिः सह उपविशन्, अपि च तैः सह परामृश्य आवश्यक-कार्यं निर्धारितवान्। वनपर्वणि अंगराज-लोमपादः मन्त्रकुशलानाममात्यानां मतं गृहीत्वा मुनिकुमारं ऋष्यशृङ्गमामन्त्रितवान्।[५४] आश्वमेधिकपर्वतः एतत्खलु विज्ञापितम् - युधिष्ठिरः स्वयमेव राजसूययज्ञार्थं मन्त्रिभिः सह मन्त्रयामास।[५५]

अधिकन्तु अन्यस्मिन् महत्त्वपूर्णकार्येऽपि मन्त्रिणां पूर्णमधिकारः आसीत्। यथा युवराजस्य नियुक्तिः मन्त्रिणां परामर्शेण निर्णीता अभवत्। यथा आदिपर्वणि परीक्षितस्य मृत्योरनन्तरं पुरोहितो मन्त्रिणः पुरवासिनश्च सम्मिलित्य शिशुपुत्रं जनमेजयं राजपदे अभिषिक्तवन्तः।[५६] वनपर्वणि राजा

दशरथः रामचन्द्रस्याभिषेकाय सचिवैः सह मन्त्रयामास।[५७] किञ्च विषम-परिस्थितौ अपि अर्थात् राज्ञः अस्वस्थदशायां किंवा आपदि मन्त्री राज्यस्य शासनभारमपि स्वस्कन्धे वहति स्म । वनपर्वणि कोशलनरेशो भगीरथो यदा तपस्तप्तुं हिमवत्पार्श्वं जगाम तदा स राज्यं सचिवे न्यस्तवान्।[५८] एवम् आदिपर्वणि अपि वशिष्टेणानिज्ञातो नरर्षभः संवरणः यदा भार्यया सह गिरौ विहर्तुमकामयत तदा महीपालेन सचिवः उपरि राज्यस्य दायित्वं समर्पितः -

ततः पुरे च राष्ट्रे च वनेषु पवनेषु च।
आदिदेश महीपालस्तमेव सचिवं तदा।।[५९]

अतएव महाभारतेन एतदेव ज्ञायते यत् मन्त्रिणां कार्यस्य परिधिः नासीत्। ते खलु राजनीतिक-धार्मिक-वैयक्तिकादयश्चेति सर्वेषु कार्येषु भागं नीतवन्तः।

मन्त्रगुप्तिः- *"गूढमन्त्रस्य नृपतेस्तस्य सिद्धिरसंशयः"* [६०] - उद्योगपर्वतः प्राप्तोऽयं श्लोकः प्रमाणीक्रियते मन्त्रगुप्तेः माहात्म्यम्। गुह्यमन्त्रस्य नृपतेः एव समस्तपृथ्वीं शासितुं शक्यम्। राष्ट्रस्य समृद्धये मन्त्रगुप्तिः महत्त्वपूर्णा आसीत्। अतो विदुरेण युधिष्ठिरः उपदिष्टः -

यस्य मन्त्रं न जानन्ति वाह्याश्चाभ्यन्तराश्च ये।
स राजा सर्वतश्चक्षुश्चिरमैश्वर्यमश्नुते।।[६१]

अस्याः मन्त्रगुप्तेः गुरुदायित्वं रक्षणभारं च अमात्यस्योपरि निर्भरमासीत् - *"अमात्ये ह्यर्थलिप्सा च मन्त्ररक्षणमेव च।"* [६२] अथवा *"मन्त्रगूढा हि राज्यस्य मन्त्रिणो ये मनीषिणः।"* [६३] एतद्यर्थम् आचार्याः राजानमुपदिशति न परीक्ष्य महीपालः आत्मनः सचिवान् न नियोजयेत्।

अतएव प्रश्नमुत्थापितं मन्त्रश्रवणस्य के अमात्याः खलु अधिकारिणोऽनधिकारिणश्च भवेयुः। अस्मिन् प्रसङ्गे महाभारते विस्तृत-विवरणं प्राप्तम्। शान्तिपरावानुसारेण यः खलु ज्ञानविज्ञानसम्पन्नो, मेधावी, सर्वकर्मसु यः शुद्धः, राज्ञः सुहृदसमः, शत्रोः आत्मनश्च प्रकृतिज्ञः, सत्यवाक्, शीलवान्, गम्भीरो, लज्जाशीलो, मृदुस्वभावसम्पन्नः, पित्र-पितामहकालतो राजसेवकः, यः सन्तोषी, सत्पुरुषेण सम्मानितः, शूरवीरः, यः पापं द्विषति, मन्त्रविद्, कालज्ञश्च स मन्त्री हि मन्त्रं श्रोतुमर्हति। अपि च *"पौरजानपदाः यस्मिन् विश्वासं धर्मतो गताः,"* यः *"सर्वलोकमिमं शक्तः स्वान्तेन कुरुते वशे,"* यः खलु योद्धा, नीतिशास्त्रज्ञः स एव राज्ञो मन्त्रसहायो भवेत्।[६४] तत्र एतदपि उपदिश्यते- राजानं प्रति योऽननुरक्तः, अऋजुः, पुरा यस्य पिता विधर्मतो विप्रकृतः, यः स्वल्पेनापि कारणेन दण्डितः, यः शत्रुसेवी, क्रोधी, विकत्थनः, असुहृद्, लुब्धश्च स अमात्यः खलु मन्त्रश्रवणस्यानधिकारी भवेत्।[६५]

मन्त्ररक्षणार्थं महाभारतकारेण बहुभिः मन्त्रिभिः सह राज्ञः गुप्तमन्त्रणा निषिद्धा। आश्रमवासिकपर्वणि धृतराष्ट्रेण युधिष्ठिरः उपदिष्टः -

विणीतांश्च कुलीनांश्च धर्मार्थकुशलान्नृजुन्।
तैः सार्धं मन्त्रयेथास्त्वं नान्तर्थे बहुभिः सह।।[६६]

कति मन्त्रिभिः सह मन्त्रयेत्, तस्य निर्देशोऽपि परिदृश्यते शान्तिपर्वणि। तत्र भीष्मेणोपदिष्टम्–

तेषां त्रयानां विविधं विमर्शं विबुद्ध्य चित्तं विनिवेश्य तत्र।
सनिश्चयं तं परनिश्चयं च निवेदयेदुत्तरमन्त्रकाले।।[६७]

अर्थात् राजा प्रथमतो मन्त्रित्रयेन सह पृथक् पृथक् रूपेण मन्त्रयेत्, तत्परं निजविचार्यितं मन्त्रिभिर्विचार्यितं च मन्त्रणं राजगुरोः सम्मुखे प्रस्तूयेत्।

मन्त्ररक्षणस्याभिप्रायेण मन्त्रणास्थानमपि निर्दिश्यते – शान्तिपर्वाणुसारेण संवृत्त– मन्त्रगृहे, राजप्रासादोपरि, निर्जने स्थाने, पर्वतशिखरे, कुशकाशहीने शून्ये स्थाने वा मन्त्रयेत्। किञ्च मन्त्रणागृहे वामनः, कुब्जकृशः, खञ्जः, अन्धः, जडः, स्त्री, नपुंसकं चेति मनुष्यानां प्रवेशो निषिद्धः आसीत्।[६८] आश्रमवासिकपर्वाणुसारेण मनुष्यानुसारिणो वानराः पक्षिणश्चेत्यादयानां प्राणीनामपि प्रवेशो निषिद्धाः आसन्।[६९] मन्त्रणाकालविषयेऽपि निर्देशः प्राप्यते। आश्रमवासिकपर्वाणुसारेण रात्रौ मन्त्रणा वर्जिता आसीत्।[७०]

यद्भवतु महाभारते मन्त्ररक्षणार्थं मन्त्रणार्थं वा अमात्याणां भूमिका प्रधानासीत्। तदर्थं महाभारते उच्यते– *''मन्त्रिणां मन्त्रमूलं हि राज्ञो राष्ट्रं विवर्धते।''*[७१]

मन्त्रिपरिषद्–महाभारतकारो नृपाय मन्त्रणाविषये स्वतन्त्रतां दत्तवान्। राजा काङ्खति चेत् सर्वैः मन्त्रिभिः सह अथवा कतिपयेन सहामन्त्रयत्। अतोऽस्मिन् प्रसङ्गे प्रश्नमुत्थाप्यते यत् प्राचीनभारते मन्त्रिणः किं संगठितरूपेण असंगठितरूपेण वा कार्यं कृतवन्तः। महाभारतं पर्यालोच्य एतद्खलु वक्तुं शक्यते यत् मन्त्रिणः संगठितरूपेण राष्ट्रस्य राज्ञश्च हितं साधितवन्तः। एषा संस्था खलु मन्त्रिमण्डलं मन्त्रिपरिषद् चेति नाम्नाभिधीयते। महाभारतस्य आश्रमवासिकपर्वणि मन्त्रिमण्डलस्य स्पष्टमुल्लेखः प्राप्यते। किञ्च वनपर्वणि एषा संस्था अमात्यपर्षदिति नाम्ना निर्देशिता।[७२]

राज्ञः सहायतायै वृहत् मन्त्रिमण्डलमासीत्, यत्र सप्तत्रिंशत्संख्यकाः मन्त्रिणः आसन्। ते सर्वे सर्वानां वर्णानां प्रतिनिधित्वमकुर्वन्। परन्तु राजा सर्वैः सह न अमन्त्रयत्, तेषु अष्टसंख्यकैः मन्त्रिभिः सह मन्त्रितवान्। भीष्मानुसारेण बहुसंख्यकैः मन्त्रिभिः सह मन्त्रणया मन्त्रभेदस्य सम्भावना जायते। किञ्च भीष्मेन अन्यत्र मन्त्रस्य गोपनीयता रक्षणार्थं मन्त्रित्रयेन सह मन्त्रणं परामृष्टम्। तस्मिन् पर्वणि अन्यत्र अमात्पञ्चकैः सह मन्त्रणस्योल्लेखः प्राप्यते। एतेन वुध्यते राज्ञः एका अन्तरङ्गसमितिः आसीत्, यत्र सदस्यसंख्या त्रूना अष्टाधिका वा न स्यात्।[७३] एषा समितिः खलु वर्तमानसमये 'केविनेट्' इत्यनेन सह तुल्यते।

प्रधानमन्त्री– प्रधानमन्त्री मन्त्रिमण्डलस्य नेतासीत्। महाभारते शान्तिपर्वणि प्रधानमन्त्रिणः आवश्यकाः गुणाः व्याख्याताः–

रूपवर्णस्वरोपेतस्तितिक्षुरनसूयकः।
कुलीनः शीलसम्पन्नः स ते स्यात् प्रत्यननतरम्।। [७४]

अर्थात् यः सुन्दरः, क्षमाशीलः, मधुरः कण्ठः यस्य, यः कुलीनः, शीलवांश्च स तस्य प्रधानसचिवो भवेत्। किञ्च अन्यत्र कथ्यते – यस्तु कीर्तिप्रधानो स्यात्, यश्च समये स्थितः स्यात्, यः समर्थान् न द्वेष्टि, अनर्थान् यश्च न कुरुते, यः कामात् भयात् क्रोधात् लोभात् वा धर्मं नोत्सृजेत्, यश्च दक्षः पर्याप्तवचनः स्यात् तं राजा प्रधानमन्त्रिपदे नियोजयेत्।[७५]

अर्थमन्त्री- शान्तिपर्वणि अर्थमन्त्रिणोऽपि उल्लेखः परिदृश्यते। भीष्मो युधिष्ठिराय मन्त्रिमण्डलेषु राजकार्ये प्रौढान् धुरन्धरान् मन्त्रिपञ्चकान् परीक्ष्य अर्थमन्त्रिपदे नियोगस्योपदेशं प्रदत्तवान्। तेषां राजार्थकारिणां गुणाः अपि उपदिष्टाः भीष्मेण –

येषां वैनयिकी बुद्धिः प्रकृतिश्चैव शोभना।
तेजो धैर्यं क्षमा शौचमनुरागः स्थितिर्धृतिः।।[७६]

अर्थात् येषां मन्त्रिणां विनययुक्ता बुद्धिः, सुन्दरः स्वभावः, तेजः, वीरता, क्षमा, पवित्रता, अनुरागः, स्थिरता धैर्यश्चासन् तेषामर्थमन्त्रिपदे नियोजयेत्।

मन्त्रिणः राज्ञश्च पारस्परिकः सम्बन्धः- महाभारते नृपामात्ययोः सम्बन्धो निविडः आसीत्। सर्वत्र तेषां सहावस्थानं परिदृश्यते।[७७] न केवलं मन्त्रणागृहे राजसभायां वा परन्तु राज्ञो धार्मिक-आर्थिक-वैयक्तिकादये सर्वस्मिन् कार्ये मन्त्रिणः उपस्थितिः परिदृष्टा। अपर-शासकाय सन्देशप्रेषणे, किंवा प्रेरित-सन्देश-श्रवणे अथवा मुनीणां कृते स्वागत-सम्भाषणे प्रत्येकेऽवसरे मन्त्रिणो राज्ञः पार्श्वे अवस्थितवन्तः। किञ्च द्युतक्रीडायां युद्धभूमौ प्रतिक्षणं राजसहितमवस्थानं तेषां बहुनि पर्वणि प्राप्तम्।[७८] एतत्खलु प्रमाणीक्रियते मन्त्री न केवलं राज्यस्य वरिष्ठ-पदाधिकारी आसीत् वरं राज्ञोऽन्तरङ्गमित्रत्वेनापि तेषां भूमिका परिदृष्टा।

राजा यथा सुयोग्यं मन्त्रिणं नियुक्तवान् तथा अयोग्यममात्यपदतः निष्कासितवान्।[७९] अन्यत्र एवमपि उपदिश्यते – राजा मन्त्रिणं प्रति विरुद्धारोपकारिणो वचनं शृणुयात्। अपि च मन्त्रिणः कोपतः तान् रक्षेत्। शान्तिपर्वणि कालकवृक्षीयमुनेः सम्बादेन प्रकाशितोऽयमुपदेशः।[८०] शान्तिपर्वणि अन्यत्र वामदेवो राजानमुपदिष्टवान्- राजादेशेन निगृहीतादमात्याद् राजा आत्मानं रक्षेत्।[८१]

महाभारतकारेण राजादिष्टः – राजा सर्वदा तस्य मन्त्रिणं समाद्रियन्ताम् – *"मन्त्रिणं पूजयेन्नृपः।"*[८२] भीष्मेणोक्तम् – अमात्यानां यथोचित-सत्कारेण, तेषां सुख-सुविधयोः व्यवस्थानात् राज्ञः सुसहायः सिद्धो भवति- *"पूजिता संविभक्ताश्च सुसहायाः स्वनुष्ठिताः।"* [८३] राजा कदापि मन्त्रिणो नावजानीतां वरं तेषां पितृतुल्यं गुरुतुल्यं वा सम्मानं विधदेत्।[८४] भीष्मस्य मतानुसारेण राजा मन्त्रिणां कार्यमनुमोदयेत्। परन्तु सर्वे समानाः न भवन्ति। अतो राजा सुयोग्यमन्त्रिणां मतं गृह्णीयात् अपि च दुष्टमन्त्रीतः सतर्कः भवेत्, गुप्तचरेण मन्त्रिणां मनोभावं बोद्धुं यतेत्। एवमस्मिन् ग्रन्थे आदिश्यते – मन्त्री राजानं समुचितं परामृशेत् सर्वदा च राज्ञो हितं कामयेत्। किञ्च योग्यो मन्त्री आपदि राज्ञः सहायतां कुर्य्याद् – *"ददात्यस्मद्विधोऽमात्यो बुद्धिसाहय्यमापदि।"*[८५] मन्त्री राजानं कुमार्गात् प्रतिहन्यात्। प्रसङ्गेऽस्मिन् राज्ञो नलस्य मन्त्रिणामुदाहरणं प्रणिधानयोग्यम्।[८६] मन्त्री राज्ञो

दुःखेन दुःखी सुखेन च सुखी भवेत्।[८७] वस्तुतस्तु एतानि मन्त्रिणः आदर्शः आसन्। यो मन्त्री बलात् राजानं निजाधीनं कृतवान् स अचिरेन विनष्टो भविष्यति –

अमात्योहि बलाद्भोक्तुं राजान् प्रार्थयेत् यः।
न स तिष्ठेच्चिरं स्थानं गच्छेच्च प्राणसंशयम्।।[८८]

तथा यो राजा चित्तं न जित्वा अमात्यं जेतुं चेष्टते अथवा मन्त्रिणं निजाधीनं न कृत्वा शत्रुं जेतुं यतते स राजा साफल्यं न प्राप्नोति। शासनतन्त्रं तदा सफलतमायाति यदा राजामात्यौ एकीभूय कार्यं कुरुतः।[८९] एतदर्थं राजोपदिष्टः – तेन राज्ञा तस्य मन्त्रिणां सुरक्षायै यतितव्यम् भेदाद्युपायेन तेषां रक्षितव्यम्।

महाभारते बहूणां मन्त्रिणामुल्लेखः प्राप्यते। न केवलं पार्थिव–नरेशस्य देवतुस्तथा पशुराज–सिंहस्यापि अमात्यः आसीत् । प्रायः एते मन्त्रिणो मन्त्रि–गुणसम्पन्नाः स्वामिभक्ताश्चासन्। परन्तु ग्रन्थेऽस्मिन् कुमन्त्रिणामपि उदाहरणं प्राप्तम्। यथा शकुनिः, यस्य दुर्नीति–कारणात् महाभारतस्य युद्धः अपि च कौरवाणां विनाशो भूतः। अपरमेकमुदारणम् – मगधनरेश– अम्बुवीचस्य मन्त्री महाकर्णिः राजानमवहेलितवान् राज्यं चात्मनः कर्तुमिष्टवान्। कुमन्त्रिणां संख्या स्वल्पमासीत् महाभारते। अतएव महाभारतात् एतदेव प्रकाशितम् यत् साधारणतया मन्त्रिणः स्वराष्ट्रस्य राज्ञश्च हितसाधने सदामात्मनो नियोजितवन्तः।

अतएव उपर्युक्तानि विषयानि शासनव्यवस्थायां मन्त्रिणां प्रयोजनानि उद्घोषितानि। पञ्चविधेषु वलेषु राज्ञः अमात्यलाभो द्वितीयंबलमुच्यते।[९०] अतः सुयोग्यामात्यानां प्राप्तिः राष्ट्रस्य समृद्धये अपरिहार्यासीत्। अतो भीष्म उवाच –

मन्त्रिणो यस्य कुलजा असंहार्याः सहोषिताः।
नृपतेर्मतिदाः सन्तः सम्बन्धज्ञानकोविदाः।।
अनागतविधातारः कालज्ञानविशारदाः।
अतिक्रान्तमशोचन्तः स राज्यफलमश्नुते।।[९१]

सन्दर्भाः

१. आदिपर्व, ६२.५३
२. मनुस्मृति, ७.५५
३. अर्थशास्त्र, १.७.३
४. शान्तिपर्व, १०६.११
५. शान्तिपर्व, ८०.१
६. उद्योगपर्व, १२५.२०
७. शान्तिपर्व, १२१.४५
८. शल्यपर्व, २.५२

९. शान्तिपर्व, १११.२२
१०. शान्तिपर्व, ८३.४८
११. शुक्रनीति, २.९४-१०६
१२. अर्थशास्त्र, १.१०
१३. आदिपर्व, ४३.३२-३४
१४. आदिपर्व, १७२.२-४
१५. वनपर्व, ११०.४१
१६. वनपर्व, १२७.८-१०
१७. वनपर्व, २७७.७-८
१८. वनपर्व, ११०.५०
१९. शान्तिपर्व, ८५.७-९
२०. शान्तिपर्व, ८५.११
२१. शान्तिपर्व, ८३.५३
२२. शान्तिपर्व, ११८.४
२३. शान्ति, ११८.७-१४
२४. शान्तिपर्व, ११८.१५
२५. शान्तिपर्व, ८३.१
२६. शान्तिपर्व, ८३.८-९,८३.२३-२४
२७. शान्तिपर्व, ८५.७-११
२८. शान्तिपर्व, ८०.२३
२९. शान्तिपर्व, ८०.२८
३०. शान्तिपर्व, ११८.४
३१. उद्योगपर्व, ३८.१९
३२. शान्तिपर्व, ८३.१५
३३. शान्तिपर्व, ८३.४३
३४. आश्रमवासिकपर्व, ४.१४
३५. सभापर्व, ५.४४
३६. शान्तिपर्व, ६९. पृ. ४६०२
३७. शान्तिपर्व, ६५.३-९
३८. आश्रमवासिकपर्व, ५.२०-२१
३९. शान्तिपर्व, ६९.१४
४०. आश्रमवासिकपर्व, ६.१९ "अशक्नुवंश्च युद्धाय निष्पतेत् सह मन्त्रिभिः। कोशेन पौर्वैदण्डेन ये चास्य प्रियकारिणः।।"
४१. उद्योग, १२४.२१ " रोचते ते पितुस्तात पाण्डवैः सह संगमः। सामान्यस्य कुरुश्रेष्ठ तत् तुभ्यं रोचताम् ।।"

४२. शान्तिपर्व, १०३.१४–१५
४३. शान्तिपर्व, १०५.१०
४४. द्रोणपर्व, ४८.५
४५. आश्वमेधिकपर्व, ८४.१९
४६. वनपर्व, २४२.११–१३
४७. उद्योगपर्व, ३८.१९
४८. शान्तिपर्व, ६९.२९
४९. आश्रमवासिकपर्व, ६.४
५०. शान्तिपर्व, ६.१६
५१. शान्तिपर्व, ८५.१६
५२. आदिपर्व, ४४.८
५३. वनपर्व, ६०.२२
५४. वनपर्व, ११०.५१
५५. आश्वमेधिकपर्व, १०.३७
५६. आदिपर्व, ४४.५–६
५७. वनपर्व, २७७.७–८
५८. वनपर्व, १०८.२–३
५९. आदिपर्व, १७२.३५
६०. उद्योगपर्व, ३८.२१
६१. उद्योगपर्व, ३८.१५
६२. उद्योगपर्व, ३८.१९
६३. शान्तिपर्व, ८३.५०
६४. शान्तिपर्व, ८३.४१–४६
६५. शान्तिपर्व, ८३.३०–४०
६६. आश्रमवासिकपर्व, ५.२१
६७. शान्तिपर्व, ८३.५३
६८. शान्तिपर्व, ८३.५६–५७
६९. आश्रमवासिकपर्व, ५.२३
७०. आश्रमवासिकपर्व, ५.२३
७१. शान्तिपर्व, ८३.४८
७२. आश्रमवासिक, ५.२५, वनपर्व, १२७.८
७३. शान्तिपर्व, ८५.७–९, ८५.११, शान्तिपर्व, ८३.५२–५३
७४. शान्तिपर्व, ८०.२१
७५. शान्तिपर्व, ८०.२६–२७

७६. शान्तिपर्व, ८३.२१
७७. अनुशासनपर्व, १६७.२१
७८. वनपर्व, १.१, विराटपर्व, १.२६
७९. अनुशासनपर्व, १४५, पृ. ५९४८
८०. शान्तिपर्व, ८२.५०
८१. शान्तिपर्व, ९३.३१
८२. शान्तिपर्व, ६८.५६
८३. शान्तिपर्व, ८०.२९
८४. शान्तिपर्व, ११८.२४
८५. शान्तिपर्व, ८२.३२-३३
८६. शान्तिपर्व, ५९.११
८७. शान्तिपर्व, ५९.२७
८८. शान्तिपर्व, ४.४२
८९. उद्योगपर्व, ९५.२७
९०. उद्योगपर्व, ३७.५३
९१. शान्तिपर्व, ११५.१६-१७

BIBLIOGRAPHY

- *Mahābhāratam* (by Vyāsa) (1965). Ed. Pandit Ramanarayana Shastri Pandeya 'Ram'. Vol. 1-5. Gorakhpur : Gitapress.
- *Manusanhitā (Saptamodhyāya)* (1917) . Ed. Sri Ashok kumar bandyopadyaya. Kolkata: Sadesh.
- Bandyopādhyāya, D. (2009). *Saṃskṛta Sāhityer Itihāsa.* 2nd edition. Kolkata: West Bengal State Book Board.
- Miśra, K.K. (2004). *The Study Of Ancient Indian Political Traditions.* Indian Political Science Association.
- Bhaṭṭācārya, S. (1966). *Mahābhāratakālīna Samājabyabasthā.* Allahabad: Lokobharatiya Prakashan.

Shodh Navneet (International Peer-Reviewed Research Journal)
ISSN : 2321-6581, Vol. XXII, January - June 2024

वायुपुराणानुसारं गयातीर्थस्य वैशिष्ट्यम्

डॉ. पारमिता पण्डा*

'पुराणमित्येव न साधु सर्वम्' इति कालिदासेषु सूक्त्यनुसारं पुराणेषु ये विषयाः आलोचिताः ते सर्वे विषयाः पुरातनं भूत्वापि अन्तः नूतनत्वं प्रतिभान्ति। तथैव पुराणेष्वपि गयातीर्थस्य विषये महती चर्चा कृता। तत्र तावत् विशिष्य वायुपुराणेगयातीर्थस्य विषये विस्तृतरूपेण आलोचितम्।

तदिरिच्य गरुड, पद्म, वराह, अग्नि, नारदादि पुराणेषु गयातीर्थस्य उत्पत्तिः पिण्डदानं गदागदाधरयोः आविर्भावः, गयातीर्थस्य यात्राकरणस्य फलं, शिलायाः उत्पत्ति, गयाश्राद्धस्य माहात्म्यं, इत्यादिषु विषयेषु आलोचना कृता अस्ति।

तत्र तावत् गरुडपुराणे गयाश्राद्धविषयेषु कथं पितृणां कृते श्राद्धः करणीयाः इत्यस्मिन् विषये उक्तम् वर्तते। तत् यथा–

कुर्यात् संवत्सरादूर्ध्वं श्राद्धे पिण्डत्रयं सदा।
एकोद्दिष्टं न कर्तव्यं तेन स्यात्पितृघातकः।।[१]

यदि कस्यापि पुत्रः पितृणां उद्देश्येन गयां गत्वा श्राद्धं करोति तेन श्राद्धेन सः सप्त पुरुषान् मोचयति तथा गदाधरस्य अनुग्रहेण मोक्षं प्राप्नोति इति गरुड़पुराणे उक्तम् अस्ति–

यदा पुत्रेण वै कार्यं गया श्राद्धं खगेश्वर।
तदा संवत्सरादूर्ध्वं कर्तव्यं पितृभक्तितः।।[२]

गयायां ये पितृणामुद्दिश्य पञ्च यागान् आचरति ते समेषां कुलानां मङ्गलं कारयन्ति इति वराहपुराणे उक्तम् अस्ति। यथा–

ब्रह्मणा तु पुरा सृष्टा ओषधयः सर्ववीरुधः।
यज्ञार्थं तत्तु भूतानां भक्ष्यमित्येव वे श्रुतिः।।
दिव्यो भौमस्तथा पैत्रो मानुषो ब्राह्म एव च।
एते पञ्च महायज्ञा ब्रह्मणा निर्मिताः पुरा।।[३]

नारदपुराणे गयातीर्थस्य प्रसक्ति विषये उक्तम् अस्ति तत्र तावत् वसु नारदम् अपृच्छत्– भो द्विजोत्तम! कथं गयातीर्थम् इदम् अतीव प्रख्यातं तद् विषये अहं श्रोतुमिच्छामि कृपया कथयतु।

गयातीर्थं तु विख्यातं कथं लोके द्विजोत्तम।
तदहं श्रोतुमिच्छामि कृपां कृत्वाधुना वद।।[४]

---

* उपाचार्या, पुराणेतिहास विभागः, राष्ट्रियसंस्कृतविश्वविद्यालयः, तिरुपतिः, आन्ध्रप्रदेशः

पद्मपुराणे स्वर्गखण्डे गयातीर्थस्य श्राद्धप्रसङ्गे अनेके श्लोकाः उक्ताः। तत्र तावत् पितृः उद्देश्येन तर्पणकरणे कथं अक्षयकीर्तिः लभ्यते। तद् विषये उल्लिखितम् अस्ति।

यात्राक्षय्यवटोनाम त्रिषु लोकेषु विश्रुतः।
पितृणां तन्त्र वै दत्तमक्षयं भवति प्रभो।।[५]

अग्निपुराणेऽपि सर्वेष्वपि तीर्थेषु गयातीर्थम् अत्युत्तमं तीर्थमिति उक्तम् अस्ति। तस्मिन् तीर्थे गयासुरः तपस्यां कृतवान् इति कारणात् तस्य तीर्थस्य नाम गयातीर्थम् इत्यभूत्। तद्यथा–

गयामाहात्म्याख्यास्ये गयातीर्थोत्तमोत्तमम्।
गयासुरस्तपस्तेपे तत्तपस्तापि सुरैः।।[६]

गयातीर्थस्य नामकरणम्– संस्कृतवाङ्मये नैकानि शास्त्राणि परिदृश्यन्ते तेषु दरीदृश्यमानेषु शास्त्रेषु पुराणशास्त्रमिदं नितरां प्रथते।

पुराणेषु नैके विषयाः अस्माकम् ऋषिभिः समचर्चिताः। तेषु चर्चितांशेषु गयामाहात्म्यं मुख्यस्थानमावहति। गयामाहात्म्यविषये गरुडवायुमत्स्यपुराणेषु चर्चा कृता विद्यते। तत्र गरुडवायुमत्स्यपुराणेषु या च वर्णना कृता विद्यते सा च वर्णना अत्यल्पा एव। किन्तु वायुपुराणे यद्वर्णनं विद्यते तच्च वर्णनं विस्तृतं भवति। अस्माद्धेतोः वायुपुराणोक्तगयातीर्थस्य माहात्म्यं नितरां श्लाघनीयम्। यथा–

वक्ष्ये तीर्थवरं पुण्यं श्राद्धादौ सर्वतारकम्।
गयातीर्थे सर्वदेशे तीर्थेभ्योऽप्यधिकं श्रुणु।।[७]

गदाधरस्य माहात्म्यम्– नारदमहर्षिः सनत्कुमारम् अपृच्छत्। भो महर्षिन्! गदाधरो भगवान् कथं व्यक्तस्वरूपे अवतिष्ठते। व्यक्ताव्यक्तस्वरूपेण यः प्रागेव आसीत् सः कथं व्यक्तस्वरूपे अवतिष्ठते। सा च गदा कथम् उत्पन्ना? यया गदया तस्य नाम आदिगदाधरोऽभूत्। सर्वपापविनिष्ठायाः चाञ्चल्यता कथं जाता? नारद उवाच–

कथं व्यक्तस्वरूपेण स्थितश्चादिगदाधरः।
कथं व्यक्तस्वरूपेण व्यक्ताव्यक्तात्मना स्थितः।।[८]
कथं गदा समुत्पन्ना यथा ह्यादिगदाधरः।
गदालोलं कथं चासीत् सर्वपापक्षयङ्करम्।।[९]

सनत्कुमार उवाच – प्राचीनकाले परमकठोरगदनामक एकः असुरः आसीत्। ब्रह्मणि प्रार्थिते सति सः स्वास्थिनि तस्मै ब्रह्मणे समार्पयत्। अस्थीनां दानं तु सरलंकार्य न भवति। ब्रह्मणः कथनानुसारेण विश्वकर्मा अस्थिभिः एकां गदां निर्मापयामास। तां गदां वज्रोऽपि भेत्तुं न शक्नोति। परन्तु तया गदया वज्रः भेत्तुं शक्यः इति हेतोः विश्वकर्मणा सा च गदा स्वर्गे स्थापिता। बहुषु दिवसेषु व्यतितेषु सत्सु एकदास्वायम्भुवमन्वन्तरे ब्रह्मनन्दनाहेतिनाम्ना राक्षसेन परमतपस्या कृता। एकलक्षवर्षाणि यावत् स च राक्षसः आहाररूपेण वायुं भक्षितवान्। पादस्य एकया अङ्गुल्या

स्थितवान् सन् मुखं तथा बाहुद्वयम् उपरि कृत्वा शान्तचित्तेन सः तपः आचचार। अत्रान्तरे जीर्णानि पक्वशुष्कपर्णानि वायुरित्यादीनि च भुक्त्वा समयं यापयामास। अनया कठोरतपस्यया सुप्रसन्नस्सन् ब्रह्माप्रभृतिभिः देवगणान् सः इत्थं वरम् अयाचत – यद् अहं देव, दैत्य, अस्त्रशस्त्र, मनुष्य कृष्ण, शिवः, सुदर्शनचक्रादिभिः यथा न मरिष्यामि। तथैव वरं प्रदेहि। मत्सदृशः कोऽपि महाबलवान् न भवतु। देवगणाः हेतिराक्षसस्य प्रार्थनामङ्गीकृत्य ततः अन्तर्दधिरे। तदुपरान्तं स देवान्पराजित्य इन्द्रस्य पदवीं निनाय। ब्रह्मामहादेवादयः सर्वे तत् कर्मणः भीताः सन्तः भगवन्तं विष्णुं प्रति समाजग्मुः। तत्र गत्वा हेतिराक्षसस्य हननार्थं प्रार्थनामकारयन्। हरः देवगणान् अकथयत्। भो सुरवृन्दा ! हेतिराक्षसोऽयं समस्तदेवाऽसुरादिभिः द्वाराहन्तुं न शक्यते। अतः मह्यं किमपि महदस्त्रं प्रयच्छन्तु? येन अहं हेतिराक्षसं मारयितुं प्रभविष्यं यदा विष्णोः इत्थमगादीत् तदा देवाः तामेव गदां तस्मै विष्णवे प्रायच्छन्। देवानाम् अनुरोधेन आदौ एव हरिः तामेव गदाम् अधरत्। तया गदया हेतिराक्षसं हत्वा सुरगणैः साकं स्वर्गलोकं प्रतस्थे। गयासुरं निश्चलीकर्तुं तामेव गदां भगवान्विष्णुः गयासुरस्योपरि स्थापयामास। अस्मात् कारणात् तस्य विष्णोः नामान्तरम् आदिगदाधरः इत्यभूत्। शिलापर्वतस्वरूपेण भगवान् आदिगदाधरः तस्मिन् गयाक्षेत्रे प्रकटितोऽभूत्। शिलाम् अतिरिच्य मुण्डपृष्ठाद्रि, प्रभास, उद्यन्त, गीतनाद, भस्मकूट, इत्यादि पञ्चगिरयः गृध्रकूट, प्रेतकूट, आदिपाल, अरविन्दक, पञ्चलोक, सप्तलोक, वैकुण्ठ, लोहदण्डक, क्रौञ्चपाद, अक्षयवट, फल्गुतीर्थ, मधुस्रावा, दधीकुल्या मधूकुल्या, देवीक, महानदी, वैतरणी, इत्यादिषु रूपेषु आदिगदाधरो व्यक्तोऽभूत्। विष्णुपदा, ऋद्रपदा, ब्रह्मपदा, दिव्यगुणयुक्त कश्यपपदाः अत्र दृश्यन्ते। पञ्चाग्नेः पदा इन्द्रागस्त्यौ सूर्यः, कार्तिकेय क्रौञ्चः, मातङ्गः, तदान्यलिङ्गाः व्यक्ताव्यक्तरूपेण तत्र विद्यन्ते। आदि गदाधरो भगवान् स्वयमेव अस्मिन् स्वरूपे व्यक्तरूपे विराजितः। गायत्री, सावित्री, सन्ध्या, सरस्वती, गयादित्य, उत्तरार्कः, दक्षिणार्कः, नैमिशः, श्वेतार्क, गणनाथ, अष्टवसवः। मुनीन्द्रगणाः, एकादशरुद्राः, सप्तर्षयः, सोमनाथ, सिद्धेश, कपोतेशः, नारायणमहालक्ष्मी, ब्रह्म, श्रीपुरुषोत्तम, मार्कण्डेयः, कोटिशः, अङ्गिरस्, पितामहः, जनार्दनः, मङ्गला, पुण्डरीकाक्ष इत्यादिभिः स्वरूपैः आदिगदाधरः विराजते। सोऽपि हेतिराक्षसः मृत्योः उपरान्तं भगवतः विष्णुलोकं प्राप्तवान्। गयासुरस्य निश्चलकरणात् परब्रह्म समेत रुद्रादिदेवगणाः हर्षिताः अभूवन्। तथा आदिगदाधराय स्तुतिमकुर्वन्। ब्रह्मोवाच–

गदाधरं व्यपगतकालकल्मषं गयागतं विदितगुणं गुणातिगम्।
गुहागतं गिरिवरगौरगेहगं गणार्चितं वरदृश्यमहं नमामि।।[१०]

ब्रह्मादयो देवगणाः विष्णुरूपधारिणं गदाधरं नमस्कृतवन्तः ब्रह्मादीनां देवगणानां स्तुतेः अनन्तरं विष्णुः अवोचत्। भो देवा ! भवन्तः वरं याचयन्तु? तत्क्षणे ब्रह्मणा वरयाचना कृता यत् अस्यां देवस्वरूपिण्यां शिलायां भवन्तं विना वयम् अत्र न स्थास्यामः। आदिगदाधरः तेषां वचनं निशम्य एवं भवतु इत्यवोचत्। इत्थमुक्त्वा लक्ष्म्या सह आदिगदाधरोऽपि तत्र अवतरथे। सर्वेषां लोकानां रक्षार्थं जगती विद्यमानानां जीवानां मुक्त्यर्थं च भगवान् आदिगदाधरः जनार्दननाम्ना

व्यक्तस्वरूपं च धृत्वा अवतस्थे इति काचित् वार्ता श्रूयते। श्वेतकल्पे यः आदिभूतसनातनः भगवान् व्यक्तमूर्तिस्वरूपो आसीत् स एव भगवान् भविष्ये वराहकल्पे आगते सति अव्यक्तो भवति। प्राचीनकालेऽपि सः भगवान् आसीत्। लोकानाम् उद्धरणार्थं तथा देवानां सुरक्षार्थ च। स एव भगवान् गयाशिरसि व्यक्तो भविष्यति नास्ति अत्र कश्चन सन्देहः। ये जनाः सर्वदा भक्तिपूर्वकं भगवतः गदाधरस्य दर्शनं करिष्यन्ति ते महत्कष्टेभ्यः विमुक्ताः सन्तः विष्णुलोकमधिगच्छन्ति। ये आदिगदाधरे भक्ति प्रदर्शयन्ति सर्वदा तस्य दर्शनं च कुर्वन्ति ते विपुलधनं, धान्यम् आयुः, आरोग्यादीनि च लभ्यन्ते। ते सकलत्रपुत्रं पौत्रं, गुणं कीर्ति, सुखानि च प्राप्यन्ति। ये श्रद्धया आदिगदाधरं नमस्यन्ति ते राज्यं तथा ब्रह्मपुरं च आसादयन्ति। तेष्वेव मनुष्याः निखिलपुण्यकर्मणा विपुलफलं भुक्त्वा अन्ते ब्रह्मपुरं यान्ति। ये सुगन्धितद्रव्याणि प्रयच्छन्ति ते विपुलद्रव्याणि प्राप्नुवन्ति। पुष्पदानेन सौभाग्यस्य वृद्धिर्जायते। धूपदानेन राज्यप्राप्तिर्भविष्यति। दीपदानेन विपुलकान्तिः मिलिष्यन्ति। द्विपदानेन पापानि विनश्यन्ति। तत्र ये यात्रां कुर्वन्ति तत्र ब्रह्मलोकस्य अधिकारिणः भवन्ति। ये श्राद्धपिण्डादीनि च प्रयच्छन्ति, ते पितृन् स्वर्गलोकं गमयन्ति। ये जनाः स्तोत्रेण गदाधरं स्तुवन्ति श्रद्धया प्रणामं च कुर्वन्ति ते पितृन् माधवं प्रति प्रचोदयन्ति। शिवोऽपि परमभक्त्या आदिगदाधरस्य स्तुतिम् अकरोत्। सनत्कुमार उवाच–

शिलायां देवरूपिण्यां न तिष्ठामस्त्वया विना।
स्थास्यामोऽत्र त्वया सार्द्धं नित्यं व्यक्तादिरूपिणा।।[११]
एवमस्तु श्रिया सार्द्धं स्थितश्चादिगदाधरः।
लोकानां रक्षणार्थाय जगतां मुक्तिहेतवे।
सुव्यक्तः पुण्डरीकाक्षो जनार्दन इति श्रुतः।।[१२]
वेदैरगम्या या मूर्तिरादिभूता सनातनी।
सुव्यक्ता श्वेतकल्पे सा भविष्यति तथा पुनः।
वाराहकल्पे ह्यव्यक्ता व्यक्तिमप्यगमत्पुरा।।[१३]
सन्तारणाय लोकानां देवानां रक्षणाय च।
गयाशिरसि सुव्यक्तो भविष्यति न संशयः।।[१४]

शिवः आदिगदाधरस्य स्तुतिं नानाप्रकारेण अकरोत्। तदनु सनत्कुमारः नारदम् उक्तवान् – महेश्वरेण या स्तुतिः कृता तया स्तुत्या भगवान् आदिगदाधरः ब्रह्माप्रभृतिभिः देवगणैः साकं न्यवसत्। मुण्डपृष्टगिरौ अवस्थितादिगदाधरस्य ये जनाः स्तुतिपूजादीन् च कुर्वन्ति। ते जनाः ब्रह्मलोकं प्राप्नुवन्ति। धर्माभिलाषिणः धर्म प्राप्नुवन्ति। अर्थाभिलाषिणः अर्थ प्राप्नुवन्ति। कामाभिलाषिणः कामं प्राप्नुवन्ति। मोक्षाभिलाषिणः मोक्ष प्राप्नुवन्ति। वन्ध्यादयः पुत्रान् प्राप्नुवन्ति। राजानः विजयमाप्नुवन्ति। शूद्राः सुखं प्राप्नुवन्ति। आदिगदाधरस्य विधिवत् पूजां कुर्वाणाः जनाः पुत्रान् प्राप्नुवन्ति। भगवतः विष्णोः पूजनेन मानवाः स्वीय मानसिकाभिलाषं प्राप्नुवन्ति। इति।

एवं स्तुतो महेशेन प्रीतो ह्यादिगदाधरः।
स्थितो देवः शिलायां स ब्रह्माद्यैर्दैवतैः सह।।[१५]
संस्थितं मुण्डपृष्ठाद्रौ देवमादिगदाधरम्।
स्तुवन्ति पूजयन्तीह ब्रह्मलोकं प्रयान्तु ते।।[१६]
धर्मार्थी प्राप्नुयाद्धर्ममर्थार्थी चार्थमाप्नुयात्।
कामानवाप्नुयात्कामी मोक्षार्थी मोक्षमाप्नुयात्।।[१७]
वन्ध्या च लभते पुत्रं वेदवेदाङ्गपारगम्।
राजा विजयमाप्नोति शूद्रश्च सुखमाप्नुयात्।।[१८]
पुत्रार्थी लभते पुत्रानभ्यर्ध्यादिगदाधरम्।
मनसा प्रार्थितं सर्वं पूजाद्यैः प्राप्नुयाद्धरेः।।[१९]

उपसंहारः – निष्कर्षतः एवं वक्तुं शक्यते यत् वायुपुराणं महतीयमेकं पुराणमस्ति। अत्र तीर्थयात्रायाः विशिष्टाः महिमा उक्तं वर्तते। वायुपुराणानुसारं सार्धत्रिकोटिपरिमितानि तीर्थानि सन्ति। महाभारतानुसारं तीर्थाभिगमनं यज्ञादपि श्रेष्ठम्। यतोऽहि दारिद्र्यपीडितो जनः यज्ञं कर्त्तुं न शक्नोति अतः तेषां कृते तीर्थयात्रायाः विधानम् अस्ति। तीर्थयात्रायाः प्रमुखं फलं काम–क्रोध–लोभ–मोह–तृष्णा–द्वेष–असूया–ईर्ष्या प्रभृतीनां दमनमेव। लोकहिताय भारतीयज्ञानपरम्परायां वायुपुराणोक्त गयातीर्थस्य वैशिष्ट्यं विवेचितमत्र। भारतवर्षस्य विशिष्टतीर्थेषु गयातीर्थस्य स्थानं विशिष्टमस्ति। ऋषिकल्पितेषु तीर्थेषु तादृशं विकासमधुनापि महदुपयोगित्वम्।

सन्दर्भाः

१. वायुपुराणम्, १३.१०७
२. गरुडपुराणम्, १३.१०९
३. वराहपुराणम्, ८.३०,३१
४. नारदपुराणम्, उ.ख., ४४.३
५. पद्मपुराणम्, तृ.स्व.ख., ३७.३
६. अग्निपुराणम्, ११४.१
७. वायुपुराणम्, ४३.४
८. वायुपुराणम्, ४७.१
९. वायुपुराणम्, ४७.२
१०. वायुपुराणम्, ४७.२७
११. वायुपुराणम्, ४७.३३
१२. वायुपुराणम्, ४७.३४
१३. वायुपुराणम्, ४७.३६
१४. वायुपुराणम्, ४७.३५

१५. वायुपुराणम्, ४७.५१
१६. वायुपुराणम्, ४७.५२
१७. वायुपुराणम्, ४७.५३
१८. वायुपुराणम्, ४७.५४
१९. वायुपुराणम्, ४७.५५

सहायकग्रन्थसूची

- वायुपुराणम्, गीताप्रेस, गोरखपुर।
- वायुपुराणम्, चौखम्बासुरभारतीप्रकाशनम्, वारणासी, १९८६
- वायुपुराणम्, मोतीलाल बनारसीदास, वारणासी, १९७०
- वायुपुराणम्, नागपब्लिकेसन, दिल्ली।
- वायुपुराणम्, शिवजीत सिंह, चौखम्बाविद्याभवनम्, वाराणसी, २०१३

Shodh Navneet (International Peer-Reviewed Research Journal)
ISSN : 2321-6581, Vol. XXII, January - June 2024

प्राचीन-भारतीयायुर्वेदशास्त्रे महामारीरूपे तक्मा यक्ष्मा च

डॉ. सुजय दासः*

शोधसारः- वेदः एव आयुर्वेदस्य मूलमिति। ऋग्वेदः अथर्ववेदश्च रोगारोग्यसम्पर्कितैः बहुभिः तथ्यैः सुसमृद्धः। ऋग्वेदे ज्वरविषये कतिपयाः मन्त्राः विद्यन्ते। तत्र अस्मिन् विषये बहूनि तथ्यानि उपलभ्यन्ते। अथर्ववेदे एवम् उक्तं यदा मानवदेहे ज्वरस्योत्पत्तिः भवति तदा शरीरे प्रदाहः जायते। अनेन कारणेन तापवृद्ध्या सह आक्रान्तो जनः प्रलापं करोति। अतः प्रबन्धेऽस्मिन् इमं विषयद्वयमधिकृत्य आलोचनं कृतम्।

कुञ्जीशब्दाः- कृमिः, राक्षसः, यातुधानः, अमीवा, राजयक्ष्मा, तक्मा, ज्वरः, छिक्का, काशः, कफः, यक्ष्मा, जङ्गिडमणिः, आञ्जनमणिः, चिपुद्रुः।

प्रस्तावना- वेदे आयुर्वेदस्य बीजं निहितमस्ति। आयुषः अर्थात् जीवनसम्पर्कितानां विभिन्नानां विषयाणां वर्णनं वैदिकसाहित्ये विक्षिप्तरूपेण उपलभ्यते। आयुर्वेदः अथर्ववेदस्योपाङ्गमिति उच्यते। महर्षिः चरकः आयुषः लक्षणप्रसङ्गे अवदत्- ''**आयुर्हिताहितं व्यध्येर्निदानं शमनं तथा। विद्यते यत्र विद्वद्भि सः आयुर्वेदः उच्यते**'' इति।[१]

सुस्थव्यक्तेः स्वास्थ्यरक्षणं, रुग्नव्यक्तेः प्रशमनं च आयुर्वेदस्य उद्देश्यम्। वेदे आयुर्वेदस्य विविधानि तथ्यानि उपलभ्यन्ते। चिकित्साविषये अनेकेषां तथ्यानां सन्धानम् अत्र प्राप्यते। प्राचीनकाले रोगचिकित्सार्थम् मूले प्रकृतिजातानि द्रव्याणि व्यवहृयन्ते स्म्। इदं वा वक्तुं शक्यते वैदिकयुगे चिकित्सापद्धतिः प्रकृतेः उपरि निर्भरासीत्। यथा- विभिन्नैः ओषधिमूलैः चिकित्सा, जलचिकित्सा, वायुचिकित्सा, सूर्यकिरणैः चिकित्सा च। ऋग्वेदः अथर्ववेदश्च आयुर्वेदसम्पर्कितैः बहुभिः तथ्यैः सुसमृद्धः। अतः वेदः एव आयुर्वेदस्य मूलमिति मन्ये। तेषां मध्ये आयुर्वेदस्य अनेकाः मौलिकसिद्धान्ताः लभ्यन्ते। भिन्नानां रोगाणां वर्णनं प्राप्यते। रोगनिरामयाय अनेकेषां ओषधिद्रव्याणां अधिकपरिमाणेन व्यवहारः दृश्यते। संहिताग्रन्थे ब्राह्मणग्रन्थे च रोगस्य द्विविधं कारणं शारीरिकम् आगन्तुकं च स्वीकृतम्। शारीरिकः कायिकः वा रोगः शरीरस्य मध्ये जातः रोगः। आगन्तुकरोगः जीवाणुसंक्रमणेन कोऽपि उत्पन्नरोगः। अयं बहिः आगत्य शरीरस्य मध्ये प्रवेशं कृत्वा रोगसृष्टिं करोति। शारीरिकरोगस्य वोधनार्थं '**अमिवा**' इति शब्दस्य प्रयोगः वेदे दृश्यते। आगन्तुकरोगस्य क्षेत्रे कृमिः राक्षसः यातुधानः प्रभृतयः शब्दाः व्यवहृताः। '**तक्मा**' इति शब्दस्य

* भूतपूर्वः शोधच्छात्रः, संस्कृत-पालि-प्राकृत-विभागः, विश्वभारती विश्वविद्यालयः, शान्तिनिकेतनम्, पश्चिमबङ्गः

साधारणार्थः '**जरः**' तथा '**यक्ष्मा**' इति शब्दस्य व्यवहारः यस्य कस्यापि रोगस्य साधारणार्थे प्रयोगाय भवति। कठोरव्याधेः वा महाव्याधे क्षेत्रे '**राजयक्ष्मा**' इति शब्दस्य प्रयोगः दृश्यते।

ज्वरः ऋग्वेदे अथर्ववेदे च- ऋग्वेदचिकित्सायाः एकं मूलं साधनमासीत् देवतां निकषा प्रार्थना स्तुतिः वा। वरुणः इन्द्रः रुद्रः अश्विनौ इत्यादीन् देवताः प्रति प्रार्थना निवेदिता। ऋग्वेदे द्वयोः ओषधयोः वा ततोधिक ओषधिद्रव्याणां मिश्रितरूपेण चिकित्साकर्मणि प्रयोगस्य उल्लेखः न वर्तते। अनेन कारणेन इदं वक्तुं शक्यते आरोग्यविज्ञानं प्रारम्भिकावस्थायामासीत्। परवर्तिनिकाले आयुर्वेदग्रन्थेषु ओषधिद्रव्याणां व्यवहारसमये द्वयोः द्रव्ययोः ततोधिकानां द्रव्याणां वा मिश्रितरूपेण प्रयोगः लभ्यते। वेदे उल्लेखः अस्ति यत् विभिन्नानां जीवाणुसंक्रमणानां कारणेन बहोः रोगव्याधेः सृष्टिर्भवति। ज्वरः भवति। तेषां रोगाणां मध्ये ज्वरः अन्यतमः। अथर्ववेदे उक्तं यदा मानवदेहे ज्वरस्योत्पत्तिः भवति तदा शरीरे सर्वेषु अङ्गेषु प्रदाहः भवति। अनेन कारणेन तापवृद्ध्या सह आक्रान्तो जनः प्रलापं करोति।

अग्नेरिवास्य दहत एति शुष्मिण उतेव मत्तो विलपन्नपायति।
अन्यमस्मदिच्छतु कं चिदव्रतस्तपुर्वधाय नमो अस्तु तक्मने।।

(अथर्ववेदः, ६.२०.१)

अन्यस्मिन् मन्त्रे ज्वरस्य दूरीकरणाय रुद्रदेवतां, वरुणदेवतां, पृथिवीं, द्युलोकं, पृथिव्यां उत्पन्नान् ब्रीहीन् अन्यानि ओषधिद्रव्याणि च प्रति नमस्कारः निवेदितः। यथा-

नमो रुद्राय नमो अस्तु तक्मने नमो राज्ञे वरुणाय त्विषीमते।
नमो दिवे नमः पृथिव्यै नम ओषधीभ्यः।।

(अथर्ववेदः, ६.२०.२)

अपि च संहितायां पित्तज्वरस्य उल्लेखः वर्तते। अयं ज्वरः मानवशरीरस्य सर्वान् वर्णान् रूपान् शोणितान् च दुषितां करोति अपि च शरीरं पीतवर्णेन व्याप्तं करोति। अस्मै ज्वराय अपि नमस्कारः दृश्यते-

अयं यो अभिशोचयिष्णुर्विश्वा रूपाणि हरिता कृणोषि।
तस्मै तेऽरुणाय बभ्रवे नमः कृणोमि वन्याय तक्मने।।

(अथर्ववेदः, ६.२०.३)

ऋग्वेद ज्वरविषये कतिपयाः मन्त्राः विद्यन्ते। यत्र अस्मिन् विषये बहूनि तथ्यानि लभ्यन्ते। अपरस्मिन् मन्त्रे ज्वरस्य शत्रुरूपेण वर्णनं कृत्वा अग्निं, सोमं, वरुणदेवं च निकषा प्रार्थना क्रियते। यथा वर्हिषा, समिधा च प्रदीप्तः भूत्वा ज्वरं वाधितं कुरु, यज्ञेन हवनेन वा ज्वररूपस्य शत्रोः दूरं कुरु। ज्वरनाशस्य उपायानां मध्ये अयं मुख्यः उपायः आसीत् इति वक्तुं शक्यते। तथा हि उक्तम्-

अग्निस्तकनामप वाधतामितः सोमा ग्रावा वरुणः पुतदक्षा।
वेदिर्वर्हिः समिधः शोशूचाना अप देवषांसामुया भवन्तु।।

(अथर्ववेदः, ५.२२.१)

अपि च ज्वरः मानवं शुष्कं, क्षीणं, अग्नितुल्यं सन्तप्तं च करोति इति उल्लेखः अपि प्राप्यते। यथा–

अयं यो विश्वान्हरितान् कृणोष्युच्छोचयन्नग्निरिवाभिदुन्वन्।
अधा हि तक्मन्नरसो हि भूया अधा न्यङ्ङधराङ् वा परेहि।।

(अथर्ववेदः, ५.२२.२)

कस्मिंश्चित् मन्त्रे इमं क्लेशदायकं ज्वरं गान्धारे, मुजवाति अङ्गेषु मगधेषु च देशेषु प्रेरयित्वा मानवेभ्यः सुखप्रदानस्य वार्तां प्रददाति–

गन्धारिभ्यो मुजवद्भ्योऽङ्गेभ्यो मगधेभ्यः।
प्रैष्यन् जनमिव शेवधिं तक्मानं परि ददमसि।।

(अथर्ववेदः, ५.२२.१४)

इति मन्त्रे शीतज्वरस्य नाम प्राप्यते। अस्य ज्वरस्य लक्षणप्रसङ्गे एवम् उक्तं अस्मिन् ज्वरे काशः, कम्पनं च भवतः। अस्य ज्वरस्य दूरीकरणस्य उपायः इति मन्त्रे विहितः। यथा–

यत् त्वं शीतोश्यो रूरःसह कासावेपयः।
भीमास्ते तक्मन् हेतयस्ताभिः स्म परि वृङग्धि नः।।

(अथर्ववेदः, ५.२२.१०)

ग्रीष्मे, वर्षासु, शरदि च ऋतुषु ऋतुपरिवर्तनस्य कारणेन यः ज्वरः भवति तस्य दूरीकरणस्य उल्लेखः इति मन्त्रे प्राप्यते। यथा–

तृतीयकं वितृतीयं सदन्दिमुत शारदम्।
तक्मानं शीतं रूरं ग्रैष्मं नाशय वार्षिकम्।।

(अथर्ववेदः, ५.२२.१३)

ज्वरचिकित्साविषये द्वयोः ओषधेः नाम प्राप्यते। यथा – जङ्गिडमणिः आञ्जनमणिः च। जङ्गिडमणेः साहाय्येन क्लेशकरस्य तक्मरोगस्य दूरीकरणस्य उपायः इति अस्मिन् मन्त्रे वर्णितः। यथा–

आशरीकं विशरीकं बलासं पृष्टयामयम्।
तक्मानं विश्वशारदमरसां जङ्गिडस्करत्।।

(अथर्ववेदः, १९.३४.१०)

आञ्जननामकस्य ओषधेः उल्लेखः प्राप्यते। अनया ओषधया ज्वररोगस्य नाशः भवति इति मन्त्रे उक्तः–

त्रयो दासा आञ्जनस्य तक्मा वलास आदहिः।
वर्षिष्ठः पर्वतानां त्रिककुन्नाम ते पिता।।

(अथर्ववेदः, ४.९.८)

अपि च अन्यत्र उक्तं प्राणनाशकाः रोगाः आञ्जनस्य प्रभावेन विनष्टाः भवन्ति। अथर्ववेदस्य एकस्मिन् मन्त्रे वलासः इति पदस्य अर्थः श्लेष्मरोगः कृतः। अपि च उक्तं ज्वरेण सह काशेः श्लेष्मणः च निविडः सम्पर्कः विद्यते-

अस्थिस्त्रंसं परुस्त्रंसमास्थितं हृदयामयम्।
बलासं सर्वं नाशयाङ्गेष्ठा यश्च पर्वसु।।

(अथर्ववेदः, ६.१४.१)

ऋग्वेदे अथर्ववेदे च यक्ष्मप्रसङ्गः- ऋग्वेदस्य दशममण्डलस्य एकषष्ट्यधिके शततमसंख्यके सूक्ते राजयक्ष्मा अज्ञातयक्ष्मा च इति रोगद्वयस्य वर्णनं प्राप्यते। केन उपायेन द्वयोः रोगयोः दूरीकरणं भवति तस्मिन् विषये वर्णनं प्राप्यते। अनेन रोगेन आक्रान्तं रुग्नजनं केन प्रकारेण मृत्युमुखात् प्रत्यानयति इति विषयेऽपि स्पष्टरूपेण उल्लेखः वर्तते। अस्य सूक्तस्य अस्मिन् मन्त्रे रुग्नव्यक्तिं उद्देश्यं कृत्वा उक्तम्-

मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कम् अज्ञातयक्ष्मात् उत राजयक्ष्मात्।
ग्राहिः जग्राह यदि वा एतत् एनम् तस्याः इन्द्राग्नी प्रमुमुक्तमेनम्।।

(ऋग्वेदः, १०.१६१.१)

मन्त्रेऽस्मिन् भाष्यकारसायणाचार्येन '**हविषा**' इति पदस्य '**हविषा अनेन चरुणा साधनेन होमेन**' इति अर्थः कृतः। तस्माद् हविषा यज्ञसामग्र्या इति। सः यज्ञसामग्री अनयोः द्वयोः रोगयोः निरामयस्य कारणम् इति वदति। अस्य वेदस्य दशममण्डलस्य त्रिषष्ट्यधिके शततमसंख्यके सूक्ते विभिन्नेभ्यः अङ्गेभ्यः यथा - अक्षिभ्यां, नासिकाभ्यां, कर्णाभ्यां, चिवुकात्, मस्तिकात् जिह्वायाः च यक्ष्मरोगस्य दूरीकरणार्थं निर्देशः प्राप्यते-

अक्षीभ्यां ते नासिकाभ्यां कर्णाभ्यां छुबुकादधि।
यक्ष्मं शीर्ष्यण्यं मस्तिष्काज्जिह्वाया वि वृहामि ते।।

(ऋग्वेदः, १०.१६३.१) इति।

अपि च ग्रीवायाः, धमन्याः, स्नायोः, अस्थ्नः, स्कन्धात्, बाहुभ्यां यक्ष्मरोगस्य निर्मूलार्थम् उपायः उल्लिखितः -

ग्रीवाभ्यः ते उष्णिहाभ्यः कीकसाभ्यो अनुकयात्।।
यक्ष्मं दोषण्य मंसाभ्यां बाहुभ्यां वि वृहामि ते।।

(ऋग्वेदः, १०.१६३.२)

शरीरस्य सर्वेभ्यः अङ्गेभ्यः सन्धिस्थानात् यक्ष्मरोगनिर्मूलस्योपाय उपलभ्यते। ऋग्वेदस्य दशममण्डलस्य त्रिषष्ट्यधिके शततमे मन्त्रेऽस्मिन् विद्यते। अस्य वेदस्य दशममण्डलस्य द्विषष्ट्यधिकस्य सूक्तस्य देवता विषयः वा '**रक्षोहा**' इति विशेषणेन विभूषितः। अस्मिन् सूक्ते

जीवाणुभ्यः रक्षणस्य उपायः वर्णितः। अथर्ववेदस्य द्वितीये काण्डे त्रयस्त्रिंशे सूक्ते सप्तसु मन्त्रेषु यक्ष्मरोगविनाशस्य वर्णनं प्राप्यते। अस्य वेदस्य तृतीये काण्डे एकादशसूक्तस्य प्रथमे मन्त्रे हवनेन क्षयरोगं दूरं कृत्वा दीर्घजीवनदानस्य वार्ता वर्तते–

मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कम् अज्ञातयक्ष्मात् उत राजयक्ष्मात्।
ग्राहिः जग्राह यदि वा एतत् एनम् तस्याः इन्द्राग्नी प्रमुमुक्तमेनम्।।

(अथर्ववे, ३.११.१)

अस्मिन् मन्त्रे यक्ष्मा राजयक्ष्मा च शब्दद्वयं भिन्नयोः अर्थयो प्रयुज्यते। शरीरमध्ये यत् विषम् अस्ति तत् अपि यक्ष्मा इति शब्देन अभिधीयते–

विसल्पस्य विद्रधस्य वातीकारस्य वालजेः।
यक्ष्माणां सर्वेषां विषं निरवोचमहम् त्वत्।।

(अथर्ववेदः, ९.८.२०) इति।।

गुग्गुलस्य धूमेण यक्ष्मनाशः भवति। अयं उल्लेखः अथर्ववेदस्य ऊनविंशकाण्डे पञ्चत्रिंशसूक्ते प्रथमेषु त्रिषु मन्त्रेषु वर्तते। सुश्रुतसंहितायां सूत्रस्थानस्य पञ्चमे अध्याये चतुर्दशश्लोके धूपनद्रव्येषु गुग्गुलस्य नाम प्राप्यते। चरकसंहिताग्रन्थे[२] अत्रिपुत्रः आत्रेयः राजयक्ष्मणः रोगस्य चिकित्सायां यज्ञस्य निर्देशम् अकरोत्। यज्ञेन वायोः शुद्धिकरणं भवति। यत्र किमपि वस्तु न सहसा गन्तुं शक्यते तत्र धूमः सरलतया एव गन्तुं शक्नोति। धूमः एवं किञ्चिद् वस्तु यत् सूक्ष्मात् अपि सूक्ष्मतरस्रोतसि गन्तुं शक्यते।[३] यज्ञेन वायोः शुद्धिकरणं तथा च अनेन कारणेन रोगस्य निरामयं कथं सम्भवति तस्य वर्णनं मैत्रायणीसंहितायां उल्लिखितः अस्ति।[४] अत्र रेखाचित्रेण यज्ञेन सह रोगनिर्मूलस्य सम्बन्धः बोधनार्थं प्रचेष्टा क्रियते–

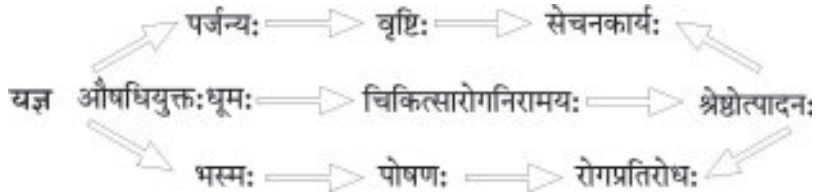

तैत्तिरीयसंहितायाम् उक्तं चन्द्रमा अनेन रोगेन सर्वप्रथमः आक्रान्तः अभवत्। अतः अनेन कारणेन अयं रोगः **'राजयक्ष्मा'** इति उच्यते।[५] सायणाचार्येण उक्तं राजयक्ष्मा एव वर्तमानकालस्य क्षयरोगः इति। राजयक्ष्मरोगस्य तुलनाप्रसङ्गे सुश्रुतसंहितायाम् उक्तम् – **'राज्ञश्चन्द्रमसो यक्ष्माभूदैष'**। यजुर्वेदेऽपि यक्ष्मरोगस्य उत्पत्तेः वर्णनप्रसङ्गे भेदत्रयं स्वीक्रियते। यथा– राजयक्ष्मा, पापयक्ष्मा जायान्यं च। अत्र जायान्यशब्दस्य अर्थः स्पष्टरूपेण न लभ्यते। विभिन्नाः विद्वांसः अस्मिन् विषये भिन्नानि मतानि पुष्णन्ति। अपि च काठकसंहितायां, मैत्रायणीसंहितायां शतपथब्राह्मणे च कतिपयेषु मन्त्रेषु यक्ष्मरोगस्य उल्लेखः उपलभ्यते।[६] राजयक्ष्मणा सह अज्ञातयक्ष्मा इति शब्दस्य

अपि उल्लेखः प्राप्यते। अज्ञातयक्ष्मा शब्दस्यार्थः '**अज्ञातरोगः**' इति। चरकसंहितायां महर्षिः चरकः आलङ्कारिक इव राजयक्ष्मरोगस्य उत्पत्तेः विषये वर्णनम् अकरोत्।[७]

ज्वरेण भोजने अनिच्छा क्षुधामान्द्यं च दृश्यते। मलिनस्य हेतोः अयं रोगः अधिकः भवति। अधिकमेधस्य कारणेन अपि अयं रोगः भवति। ज्वरेण शरीरे अजीर्णरोगः भवति। अयं रोगः कस्मिन् स्थाने अधिकः भवति तस्मिन् विषये वेदे उक्तं यस्मिन् स्थाने पर्याप्तपरिमाणः घासः अस्ति, जङ्गले, वर्षायुक्तस्थाने भवति। सूर्यकिरणं शुद्धवायुः च यत्र न गन्तुं शक्नोति तत्र अस्य रोगस्य प्रकोपः अतीव दृश्यते। अस्य रोगस्य कारणेन किं परिवर्तनं भवति तस्मिन् विषये वेदे अवदत् येन कारणेन शरीरस्य शक्तेः क्षीणं भवति, मुखं रक्तवर्णं भवति, जिह्वायाः स्वादानुभवशक्तिः नष्टा च भवति। अथर्ववेदे उक्तं ज्वरेण सह कास-कफ रोगयोः वृद्धी भवतः। अतः कासः कफः च ज्वरस्य मित्रे इति उच्यते। ज्वररोग न केवलं कतिपयेषु अङ्गेषु भवति परन्तु समग्रशरीरे एव भवति।

वेदे ज्वरशब्दस्य स्थाने तक्मन् इति शब्दस्य प्रयोगः भवति। ज्वर इति शब्दः न प्राप्यते। ज्वरः वरुणस्य पुत्रः इत्युच्यते। वरुणः जलस्य देवता। अतः इदं वक्तुं शक्यते यत् जलात् ज्वररोगस्य सृष्टिः भवति। महर्षिः चरकः अवदत् ज्वररोगः सर्वेषां रोगाणां मुख्यम्। अपि चरकेन ज्वररोगस्य लक्षणप्रसङ्गे एवम् उक्तं ज्वरः सर्वेषां प्राणिनां प्राणानां हरणं करोति, देहं इन्द्रियं मनः च क्लिष्टं करोति शरीरं सन्तप्तं करोति च। शरीरे वात-पित-कफस्य दूषणाय विभिन्नानां ज्वराणां उत्पत्तिर्भवति। ऋतुपरिवर्तनस्य कारणाद् अपि ज्वरः भवति। अतः एषां ऋतुणां नामानुसारेण ज्वराणां नामकरणं भवति यथा- शरद् ज्वरः, ग्रीष्मः ज्वरः, वर्षा ज्वरः शीतः ज्वरः च इति कथ्यते।

कुष्टौषधिसेवनेन तक्मरोगस्य विनाशः भवति। अथर्ववेदे उक्तं इयमोषधिः सर्वेषां रोगाणां नाशका इति। विषमज्वरे अस्याः ओषधेः धूमेन उपकारः भवति। अपि च शतवारमणिना अस्य रोगस्य नाशः भवति। विषमज्वरः सन्निपातज्वरः इत्युच्यते। अष्टाङ्गहृदयग्रन्थे वाग्भटाचार्य वदति- वातपित्तकफानां मिश्रणैः अयं सन्निपातरोगः भवति इति। मानवाः अजीर्णभोजनेन, दूषितेन अन्नसेवनेन दूषितेन जलसेवनेन अनेन रोगेण आक्रान्ताः भवन्ति। अस्य ज्वरस्य लक्षणप्रसङ्गे वाग्भटाचार्येन उक्तं आक्रान्ताः शरीरे पुनः पुनः प्रदाहः भवति, शरीरस्य विभिन्नेषु अङ्गेषु वेदना जायते, चक्षुषः जलं निपतति दिवानिद्रा च भवति। अथर्ववेदे उक्तं वैश्वानरः अग्निः यक्ष्मरोगस्य विनाशकः इति। अथर्ववेदेन कथितम् अज्ञातयक्ष्मरोगस्य चिकित्सायां चिपुद्रुना ओषध्या मानवानां उपकारः प्राप्यते।

उपसंहारः- उपर्युक्तात् आलोचनात् साधारणतया अयं बोध्यते यत् यक्ष्मा राजयक्ष्मा च इमौ द्वौ शब्दौ समानार्था इति मन्यते परन्तु उभययोः मध्ये यथेष्टं पार्थक्यं परिलक्षते। जनेषु तक्मा, यक्ष्मा राजयक्ष्मा च एषां रोगाणां प्रादुर्भावः भवति। अनेन कारणेन वेदे एषां रोगाणां उल्लेखाः आलोचनानि च विभिन्नेषु मन्त्रेषु उपलभ्यन्ते। यद्यपि एभ्यः रोगेभ्यः आरोग्यलाभस्य उपायाः अत्र स्पष्टतया न

वर्तन्ते तथापि वेदात् संगृह्य परवर्तिनि काले आयुर्वेदस्य युगे चरकसंहितायां सुश्रुतसंहितायां च विशेषं विधानं दृश्यते। अतः इदं वक्तुं शक्यते चिकित्साविज्ञानस्य अकस्मात् प्रादुर्भावः न भवति। मानवस्य शरीर-स्वास्थ्यविषये अनुशीलनस्य एकः दीर्घः इतिहासः वर्तते। ऋग्वेदस्य अथर्ववेदस्य च अनुशीलनेन इदं परिस्फुटं भवति। अस्याम् दृष्टौ वेदः केवलं न **'अखिलधर्ममूलम्' 'बहुविज्ञानमूलम्'** अपि इति वक्तुं शक्यते।

तथ्यसूत्रानि

१. चरकसंहिता, सूत्रस्थानम्, प्रथमाध्यायः।
२. चरकसंहिता, चिकित्सास्थानम्, ४.१८९
३. लीनश्चेद् दोषशेषः स्या धूमैस्तं निर्हरेद्। चरकसंहिता, चिकित्सास्थानम्, १७.७७
४. 'अग्निमारुत-काम्ययोग।' मैत्रायणीसंहिता, २.५.७, ४.१४.१२
५. तैत्तिरीयसंहिता, २.५.६
६. काठकसंहिता, १३.३, मैत्रायणीसंहिता, २.२७, शतपथब्राह्मणम्, ४.१.३९
७. चरकसंहिता, चिकित्सास्थानम्, ८.३-१०

सन्दर्भग्रन्थाः

- *अथर्ववेदः* (सायण-भाष्य-सहिता), सम्पादकः रामस्वरूपः शर्मा गौडः, वाराणसी : चौखम्बा विद्याभवन, २००३
- *अथर्ववेदः* (सुबोध-भाष्य-सहिता), सम्पादकः श्रीपाद-दामोदर-सातवलेकरः । किल्ला-पारडी, जिला-बलसाड़, गुजरात : स्वाध्याय-मण्डल, १९९०
- *ऋग्वेदः* (सायण-भाष्य-सहिता), अनुवादः सम्पादकः च रामगोविन्दः त्रिवेदी। वाराणसी : चौखम्बा विद्याभवन, २००७
- *ऋग्वेदः* (सुबोध-भाष्य-सहिता), सम्पादकः श्रीपाद-दामोदर-सातवलेकरः, किल्ला-पारडी, जिला-बलसाड़, गुजरात : स्वाध्याय-मण्डल, १९८३
- *ऋग्वेदः* (स्वामी-दयानन्द-सरस्वती-भाष्य-सहिता), सम्पादकः स्वामी-दयानन्द-सरस्वतीः, दयानन्द आश्रम, केसरगंज, अजमेर : वैदिक पुस्तकालय।
- *काठकसंहिता,* सम्पादकः श्रीपाद-दामोदर-सातवलेकरः, किल्ला-पारडी, जिला-बलसाड़, गुजरात : स्वाध्याय-मण्डल, १९८३
- *जैमिनीयब्राह्मणः,* सम्पादकौ रघुवीरः लोकेशचन्द्रः च। नागपुर : इण्टरनेशनल एकेडमी ऑफ इण्डियन कल्चर, १९५४
- *तैत्तिरीयसंहिता,* सम्पादकः श्रीपाद-दामोदर-सातवलेकरः, किल्ला-पारडी, जिला-बलसाड़, गुजरात : स्वाध्याय-मण्डल, १९८३
- *निरुक्तम्,* यास्ककृत, सम्पादकः मुकुन्दः झा, वाराणसी : चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, १९८९
- *वाजसनेयीसंहिता,* (माध्यन्दिन शाखा), हिन्दी अनुवादः सम्पादकः च रामकृष्णः शास्त्री, वाराणसी : चौखम्बाविद्याभवन, २००७
- *ताण्ड्यमहाब्राह्मणः* (सायणाचार्य्यविरचित-वेदार्थप्रकाश-भाष्य-सहिता), सम्पादकः वेदान्तवागीषः,

आनन्दचन्द्रः, कलिकाता राजधन्या, सं. १९३०, सन्. १८७४

- *मैत्रायणीसंहिता,* सम्पादकः श्रीपाद-दामोदर-सातवलेकरः, किल्ला-पारडी, जिला-बलसाड़, गुजरात : स्वाध्याय-मण्डल, १९८३
- *शतपथब्राह्मणम्,* (हिन्दी-अनुवादः सहिता) सम्पादकौ गंगाप्रसादः उपाध्यायः गोविन्दरामः हासानन्दः च, दिल्ली, २०१०
- *वैदिक इण्डेक्स,* मैकडाँनल, कीथ च (हिन्दी-अनुवादकः रामकुमारः रायः), वाराणसी : चौखम्बा विद्याभवन, १९६२
- *यजुर्वेदः* (सुबोध-भाष्य-सहिता), सम्पादकः श्रीपाद-दामोदर-सातवलेकरः, किल्ला-पारडी, जिला-बलसाड़, गुजरातः स्वाध्याय-मण्डलः, २०१०
- *सुश्रुतसंहिता,* सम्पादकः अनन्तरामः शर्मा। वाराणसी : चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, पुनर्मुद्रण, २०१३
- *सुश्रुतसंहिता,* सम्पादकौ कालीकिङ्करः सेनशर्मा सत्यशेखरः भट्टाचार्यः च। कलकाता : दीपायण, तृतीयसंस्करणः, २०१३

Shodh Navneet (International Peer-Reviewed Research Journal)
ISSN : 2321-6581, Vol. XXII, January - June 2024

नीलमतपुराणे वर्णितः वैष्णवसम्प्रदायः

डॉ. विवेक शर्मा,* रमन कुमार शर्मा**

शोधसारः- कल्हणस्य राजतरङ्गिणी इतिहासस्य ज्ञानस्य स्त्रोत अस्ति। नीलमतपुराणे कश्मीरस्य इतिहास भूगोलश्च प्रतिपादितः। नीलमतपुराणे वर्णितं यत् विष्णुः जगतः नाथः, सर्वे देवाः यस्य अर्चनां कुर्वन्ति । जगतः मूले विष्णु एव अस्ति। सः अस्याः सृष्टयाः कारणभूतः अस्ति। तथा समस्त गुणानां स्वामी च वर्तते। जरा मृत्युरहितः सः विष्णुः सम्पूर्णमनोरथानां पूरकः अस्ति। सः भक्तान् वरं प्रददाति तथा तान् सन्मार्गे नयति। सः राक्षसानां घातकः अस्ति।

प्रमुख शब्दाः- नीलमतपुराण, विष्णु, हरि, सम्प्रदाय, केशव, कश्मीर, राजतरङ्गिणी।

वैष्णव सम्प्रदाय- नीलमते विष्णुं परमसनातनी तथा त्रयलोक्य नाथे यस्य स्मकणम् आदररूपेण ब्रह्माशिवः इत्यादयाः देवताः कुर्वन्ति, विष्णुः जगतः मूलकारणम् अस्ति तथा अखिलविश्वे व्यापतम् अस्ति। सः अस्याः श्रिष्टयाः कारणं भूतः अस्ति तथा समस्त गुणानाम् स्वामी च वर्तते। जरा मृत्युरहितः सः विष्णुः सम्पूर्णमनोरथानां पूरकः अस्ति सः भक्तान् वरं प्रददाति तथा तान् सन्मार्गे नयति सः राक्षसानां घातकः अस्ति।

नमोऽस्तु ते लोकहिते रताय।
नमोऽस्तु ते वासवनन्दनाय।
नमोऽस्तु ते भक्तवर प्रदाय।
नमोऽस्तु ते सत्यपथदर्शनाय।।[१]

विष्णुः सर्वोत्तम् महान्, पूर्ववर्ति सनातनी, आदि देवः अस्ति। नीलमतपुराणे परशुरामः स्वयमेव विष्णुं नमस कुर्वन्ति।

नीलमतपुराणे विष्णुं चतुर्मुखः, पुण्डरीकाक्षः, चतुर्बाहु तथा नीलकमलस्य घुतिनायुक्तः उच्यते। तेषाम् वस्त्राणां विषये उच्यते यत् श्वेतवर्णीयाः तथा सुवर्णवत् पीतवस्त्राणि उक्तानि सन्ति। तेषां कर्णयोः कुण्डलो स्तः अतः तेषां रूपम् अतीव रमणीयम् उक्तम् अस्ति।

उन्निद्रनीलनलिनघुतिचारुवर्ण।
सन्तप्तहाटकनिभे वसने वसानम्।।[२]

---

* सहायकाचार्य, संस्कृत विभाग, हिमाचल प्रदेश केन्द्रीय विश्वविद्यालय, धर्मशाला, हिमाचल प्रदेश
** शोधार्थी, संस्कृत विभाग, हिमाचल प्रदेश केन्द्रीय विश्वविद्यालय, धर्मशाला, हिमाचल प्रदेश

विष्णोः चत्वारः आयुधाः शंख, चक्रः, गदा तथा पद्म एतेषाम् उल्लेखाः वर्तते एतेः आयुधः शरीरे धारणयोग्यः इति उक्तं वर्तते।

चतुर्मुखं चतुर्बाहु चतुर्वेदाश्रयान्वितम्।
शरीरधारिभिः शस्त्रै रुदीरितजयस्वनम्।।[३]

नीलमतपुराणे विष्णोः प्रतिमा सम्दर्भे अपि उक्तम् आसीत् यत् कथं विष्णोः प्रतिमा पूजनीया तथा फलदायिनी अस्ति।

आषाढमासि प्रतिमां केशवस्य च कारयेत,
सुप्तां तु शेषपर्यङ्के शैलमृद्धेमदारुभि ।
ताम्रारकूटरजतैश्चित्रे वापि निवेषयेत्,
लक्ष्म्युत्सङ्ग्गतौ पादौ तदा तस्य तुकारयेत।।[४]

आषाढमासे मनुष्याः पाषाणः, सुवर्णः, काष्ठाः तथा रजतेन निर्मितं शय्यायुक्ता मूर्त्याः निर्माणं करणीयम् भवति तथा प्रतिमायां पादे लक्ष्म्याः अञ्चले भवेताम् एतादृशी प्रतिमायाः निर्माणम् करणीया भवति।

अत्यन्त क्रुद्धः, सर्पनाशकः, गरुडः भगवतः विष्णोः वाहनम् अस्ति। अस्मिन् विषये स्पष्टीकरणं तदा भवति यदा वासुकि सर्पं गरुडेन् अभयदानं समये श्री हरिः वदति यत् –

सतिदेशे कृतस्थानं तिष्ठन्तमकुतोभयय।
न हनिष्यति नागेन्द्र नागारि मर्म वाहनाः।।[५]

अर्थात् हे! नागेन्द्र सतिदेशे निवासवान, सर्वत्र भयरहितः नागशत्रुं कोऽपि नैवास्ति।

भ्रमणसमये कश्यपमुनिः नीलनागात् पृच्छति यत् मद्रप्रदेशः रिक्ता कथं जातः। यतोहि मद्रप्रदेशे तु जनसंख्या विस्तृतं क्षेत्रं प्रतीयते स्म्। अत्र तु धनवान् पुरुषा निवसन्ति स्म्। इदं क्षेत्रं फलैः तथा कृषिभिकार्यैः परिपूर्णम् आसीत्। अत्र समृद्धि कुशलता शान्ति च निवसन्ति स्म्, अयं प्रदेशः कथं शून्यः जातः। तदोपरान्तः नीलनागः वदति हे! प्रभु भवन्तः तु जानन्ति एव यत् जलसंग्रहस्य पुत्रः जलेदभवः तस्य पालनपोषणं च मया एव कृतः आसीत्। जलोदभवस्य भरणं मया व पुत्रवत् एव कृतः आसीत्। परञ्च राक्षस प्रवृतिकारणात् सः स्व गुणानाम् अनुशरणं कृतवान् तथा च दृढ संकल्पेन् तपसा ब्रह्मणः उपासनां कृत्वा वरप्राप्ति कृतवान्। ब्रह्मणः वरं प्राप्ये सः मम् आज्ञानुपाललनं न करोति स्म तथा च तस्य नरभक्षिणा एव एतत् मद्रक्षेत्रं रिक्ता अथवा शून्यः कृतास्ति।

तेन दाभ्रविसारः, गन्धारः, जुहुण्डरः, वहिर्गिरि, शकः, खशः, तङ्ग्णः, तथा माण्डवप्रदेशः अपि जनशून्यः कृतः। अधुना इत्यास्मात् रक्षणं कथं भविष्यति इति सन्दर्भे वदन्तु। जटिलसमस्यायाः समाधानार्थ उभावति ब्रह्मलोकं जगमतुः। यत्र वासुदेव तथा अन्यदेवा अपि विद्यमानस्ति अपि च अनन्तदेवोऽपि उपस्थितः आसीत्। सर्वैः देवैः सहित नारायणं नमस्कृत्यः

लप्रसङ्गेण जलोदभव वृतान्तं अकथयताम्। ब्रह्मणः वचनं दतं यत् वयम् अस्य समाधानार्थं नौबन्धन गमिष्यामः। तदा नारायणोऽपि वैनतेयोपरि भूत्वा एति तदनु पार्वतीशंङ्करौ अपि वृषभोपरि भूत्वा चलन्ति।

यतोहि राक्षसं जले अवधः इति वरमस्ति अतः सः राक्षसः सरोवरात् वहिः न निर्गच्छति। तदा मधूसूदनः नौबन्धे प्रविशति स्म्। नौबन्ध शिखरे रुद्रः, दक्षिणेशिखरे हरिः, उत्तरशिखरे ब्रह्मा स्थितः आसीत्। तदा भगवतः विष्णुना राक्षसं हन्तुम् उद्देश्यात् अन्नतं वदति स्म् यद् स्वहलेन् सरोवरस्य जलं वहिः निष्काशितुं पर्वत विदीर्ण कुर्वन्तु।[६]

तदा नीलवस्त्रयुक्तः तथा स्वर्णमुकुटेन् युक्तः देवताः पूजनीयः अन्नतदेवः पृथिव्यां श्रेष्ठ हिमालयं स्व हलेन् जघाम्। पर्वतराज्ञः विदीर्णे सति सरोवरस्य जलं कोलाहलेन् वहिः आगच्छन्ति स्म्। तदा भगवान् विष्णुः तेन् राक्षसेन यद्धं कृतवतः उभयो मध्ये उग्र यद्धः अभूत। वर्षान्ते श्री हरिणा राक्षसस्य वधं स्व सुदर्शनचक्रेण कृतवान् तदा ब्रह्मसहितं सर्वाभिः, देवताभिः, सन्तोषः अनुभूतः। त्रिषु शिखरेषु ब्रह्मा, विष्णु, शिवः एते स्थितः सञ्जातः तत्र गत्वा सरोवरे यः स्नानं करोति सः निश्चयेन स्वर्गं प्राप्नोति।

क्रमसारे यः विष्णुपदं प्रसिद्धोसति तस्य उत्तरे ब्रह्म तथा तस्य पश्चिमे कश्यपमुनिः आश्रमस्य निर्माणम् अकरोत्। यस्य स्थाने विष्णुना विजयप्राप्तम् असीत्। तस्य स्थाने शिवेनाश्रमस्य निर्माणं अकरोत्। महादेवाश्रमात् पादोन-एकयोजन् दूरतः हरिणा अपि आश्रमस्य निर्माणः कृतास्ति। यः नरसिंहश्रमः नाम्ना विख्यातः अस्ति।

सुश्रवानागस्य समीपे एकः आश्रमासीत्। अधुना नारपुरा इति नाम्ना ज्ञायते। सुश्रवानागेन् यदा नगरीम् अजवलत् तदा लम्बोदरी क्षेत्रे शुश्रन् नाम्ना निवासं कृतवान्। सुश्रवा नागस्य सुश्रन नाग अपि कथ्यते।

भगवान् विष्णोः आज्ञानुसारेण अन्यदेवानाम् अपि आश्रमस्य निर्माणम् अकुर्वन्। जलोद्भवस्य वधोपरान्त भ्रमणभूत्वा सुदर्शनस्य महादेवेन् परिहासे अकथितं यत् मह्यम् एतत् तु दैवयोगेन प्राप्तम् अस्ति। अतः सुदर्शनस्य स्थाने किम् अपि देयं तदानीम् अहं सुदर्शनं दास्यामि। तथास्तु इति उक्त्वा श्रीहरिणा परिहासपूर्णमूर्तिं निर्माणम् अकरोति। यस्यां मुद्रायां पार्वतीपरमेश्वरयोः मूर्तिनिर्माण अपि कारीतवान्। जलोद्भवस्य उपरिभागे हरिणा स्वस्थानं स्थापितं यत्र सर्वेषां दुःखानां हारकाः शिवकेशवौ सार्धं निवस्ति स्म्।[७] राक्षासानां भयकारणात् कश्यपवंशे उत्पन्नः चन्द्रदेवः नीलनागस्य स्तुतिं करोति तथा च भक्तानां कृते सुखं यच्छति। यथा कृष्णस्य भक्तः सन्ति तथैव जनार्दनं वासुकि नागः प्रियास्ति। तदवद् एव नीलनागः अपि तेषां प्रियास्ति। नीलनागः अपि तेषां प्रियास्ति। नीलनागः विष्णोः भक्तः आसीत्।[८]

यदा नीलनागः चन्द्रदेवं कथां श्रावयति तदा सः आदौ भगवता विष्णोः स्तुतिं करोति तथा कश्मीरस्य आचारव्यवहारविषयोः वार्ता प्रस्तोति।[९]

शुक्लपक्षस्य एकादश्याः रात्रिकाले वाद्ययन्त्रैः भगवतः विष्णोः जागरणं करणीया भवेत्।

तस्मिन् दिने उपवासः आचरणीयः भवति। (हरिप्रबोधिनी)।[१०]

कार्तिकपक्षस्य अन्ते रात्रिकाले वाद्ययन्त्रैः सह पुराणकथाश्रवणं तथा कीर्तनं कृत्वा भगवतः जागरण भवति।[११] नीलनागः पंचरात्रि पूजायां विधानम् चन्द्रदेवं व्रवीति तथा वदति यत् भगवानविष्णोः तथा अग्निहोत्रब्रह्मणानां पूजा अस्माभिः करणीया भवेत्। मांसभक्षणं त्याज्यं भवेत्।[१२] भगवतः केशवस्य पूजाफलं प्राप्य जनानाम् इच्छानां पूर्तिः भवति।[१३]

उत्तरायणे विष्णुं घृतं स्नानेन् पोषयते।[१४] त्रेतायुगे विष्णुः दशरथस्य पुत्ररूपेण उत्पन्नः भविष्यति।[१५] वैसाखमासस्य शुक्लपक्षस्य तृतीया तिथौ विष्णोः यवैः पूजनं भवेत्।[१६] चन्द्रदेवं कथयति यत् कलियुगे वैशाखमासे पुष्यनक्षत्रे चन्दमसाः युक्तैः अस्ति जगन्नाथः, विष्णोदेवः, बुद्धा नामभिः प्रसिद्धाः भविष्यन्ति। बुद्धः भगवतः विष्णो अपर रूपं मन्यते तथा बौद्धभिक्षुभ्यः अपि वस्त्रदानं करणीया भवेत्। यः मनुष्यः देवशयनी एकादशी देवप्रबोधिनी एकादशीं सम्पूर्ण विधानैः करोति तदर्थं हिंसात्मकं बलिप्रदानस्य आवश्यका न भवति। अनेन् नीलमतपुराणे वैष्णवमतस्य प्रतीतिः भवति।[१७]

नीलनागः कश्यपवंशीय ब्रहामणचन्द्रदेवं वदति यत् अष्टाविशतिः द्वापरान्ते श्रावणस्य पूर्णिमायां जन्माष्टमी तिथौ भूमण्डले धर्मस्थापनार्थं विष्णोः मानव रूपेण अवतरन्ति। तस्मिन् दिने कृष्णस्य पूजा भवेत्। वितस्ता उत्सवमध्य शुक्लद्वादशी तिथौ उपवासं कृत्य विष्णोः पूजार्चनां भवेत्। अस्याः द्वादश्याः पूजनम् अधिक फलदायी भवति।[१८]

यदा यथा नागः गरुङस्य भयकारणात् तथा स्व गृहजनानां रक्षार्थं मम् समीपम् आगतवान् तदा मया उक्तं यत् कश्मीरेः नागाधिकार्य अस्ति परञ्च षडोंगली परिमितं स्थानम् अस्मिन् समय रिक्तास्ति तदा सुन्दर स्थानं मया प्रदत्तः।

गोनन्दः पृच्छति यत् अहम् विष्णोः स्थानविषये ज्ञातुं इच्छामि तदा वृहदश्वः व्रवीति यत् कश्मीरे चक्रधारी विजविहारा समीपे एतत् स्थानं प्राचीनकाले बहु प्रसिद्धाः आसीत्। वितस्तया वामभागे अस्य स्थानस्य खन्ननम् आभूत् तथा विष्णोः मूर्तिः तत्र प्राप्तः जाता।[१९] अस्याः मूर्त्याः दर्शनात् सम्पूर्णा- अनघा भवन्ति तथा च दशगोभ्यः दानतुल्य फलं मिलति। भगवान् जनार्दनः नरसिंहस्य रूपे निवासं करोति। तेषां दर्शनात् अश्वमेघ यज्ञतुल्यं फलं लभते। विष्णुः तत्र वहुसरे तथा देवसरे सदैव निवसति महापद्म सरोवरस्य उत्तर भागे नृसिहुमुर्ति अस्ति।[२०]

पूर्वकाले वेनस्य पुत्रः पृथुना मग्घे प्रतिष्ठायः प्रतिभायाः दर्शनमात्रेण पुण्डरीक यज्ञस्य आशीषः प्राप्यते। गृद्धकूटपर्वतो भृगुना निर्मिता आश्रमस्वामिनाम्ना मूर्ति तस्य दर्शनात् मनुष्य सर्वेभ्यः पापेभ्य- मुक्ताभवति।[२१]

परशुरामेण कृत एकविशंति आघातेहिः रक्षयत्वा क्षत्रियाः कशमीरस्य दुर्गे प्राप्तवन्ता तदा तत्र परशुरामः तान् हतवान्। केचनं क्षत्रियः मधूमति नघाः तथा राजनिर्मला नघाः तीरे मृत्यु प्राप्तवन्ता। तदा परशुरामेण केशवस्य मूर्तिः स्थापना कृता, सा मूर्ति रौद्ररूपे स्थितास्ति।[२२] तदन्तरं पितृशान्त्यार्थं कुरुक्षेत्रम् अगच्छत्। पितृगणानां प्रसन्नेसति परशुरामः तपस्यायाः अनुग्रहं प्राप्तवान्

तस्मात् परशुराम आनघः भविष्यति।

तदा परशुरामः कश्मीरतीर्थेषु स्नात्वा गृद्धकूटपर्वते गतवान् तथा अनन्तनागस्य निवास स्थाने तपस्यां कृतवान् तथा शंखधनुर्धारी भगवतः विष्णोः प्रतिमायाः निर्माण कृतः।

एकः ब्राह्मणः आश्रमस्वामी मूर्त्याः दर्शनार्थं गवा सह गच्छति स्म। तदा गृद्धकूटपर्वतस्य दुर्गमार्गे गौः प्राणं त्यक्तवति तदा ब्राह्मण परशुरामस्य उपसमीपं गच्छति। तथा सम्पूर्णं वृतान्त ज्ञायत्वा परशुरामेण उक्तं यत् भो– ब्राह्मणः भवान् गौहत्या पापत् विमुक्तास्ति।[२३] परशुरामः स्व दृढ़तपस्यायाः विष्णोः दर्शनं प्राप्तवान् तथा आश्रमस्वामि मूर्तिं नेयतुं वरः अयच्छत। यतोहि तत्र दर्शनार्थम् आगतानां जनानां कृते समस्या भवति स्म। अतः एव भृगुवंशीय परशुराम अनन्तनाग तथा गृद्धकूटस्य मध्ये मूर्तिः स्थापना कृतवान्। तस्मात् गवाम् अपि समस्या न भवति।

प्राचीनकाले कश्मीर वैदिकवैष्णवमतस्य अनुयायिनः आसन्। तस्मात् एव विष्णोः पूजार्चनं भवति स्म ततः परं बौद्धधर्मस्य तृतीयाशताब्दयां पटलाधिक्यं जातं तदा पञ्चाशत् प्रतिशतो अधिकः जनाः बौद्धधर्मस्य अनुशरणं कृतवन्तः। तदपश्चात् अष्टमी शताब्दयां आरम्भेः वसुगुप्तेन् सम्पूर्ण बलेन् प्रचारः कृतः। अष्टमशताब्दयाः अन्तकाले बौधमतस्य कश्मीरे विध्वंसां जातः।

सन्दर्भाः

१. नीलमतपुराणम्, ६३
२. नीलमतपुराणम्।
३. नीलमतपुराणम्, १२५२
४. नीलमतपुराणम्।
५. नीलमतपुराणम्, ७१
६. नीलमतपुराणम्, १७२
७. केशवश्च शिवश्चैव सर्वकल्मषनाशनौ।
कृतदेवप्रतिष्ठानं देवदेव जनार्दन ।। नीलमतपुराणम्, २५७, वेद कुमारी घेई २०३।
८. भक्तानुकम्पी भक्तश्च देवदेवे जनार्दने।
तस्यातिदयितश्चासि यथा नागः स वासुकि।। नीलमतपुराणम्, ४५८
९. क आचारश्च नीलेन चन्द्रदेवाय भार्गव।
पुरा प्रोक्तश्च तान् मह्यं कथयस्व महामते।। नीलमतपुराणम्, ४८०
१०. एकादश्यां ततो रात्रौ शुक्लपक्षस्य मानवः।
सोपवासो हरिं देवं नृतगीतै विर्बोधयेत्।। नीलमतपुराणम्, ५१६
११. वीणापचहशब्दैश्च पुराणानां च वाचनैः।
तत्कथा श्रवणैश्चान्यैस्तथा स्तोत्रप्रकीर्तनैः।। नीलमतपुराणम्, ४२६
प्रेक्षणीयप्रदानैश्च भूमिशोभाभिरेव च।
पुष्पधूपप्रदानैश्च नैवेधैविर्विधैस्तथा ।। नीलमतपुराणम्, ४२७
१२. पूजनीया हरिद्रेवो ब्राह्माणः स हुताशनाः।

वर्जनीयं तदामासं प्रयत्नादपि काश्यप ।। नीलमतपुराणम्, ४६१

१३. एवं सम्पूज्य देवेशं सर्वकामसमन्वितम्।
आयुषः परमासाघ विष्णुलोको महीयते।। नीलमतपुराणम्, ४६३

१४. घृतेन स्नाप्येद् देवं स्वशक्त्या मधुसूदनम्।
स्नानमेवं विधानेन कर्तव्यं पापनाशनम् ।। नीलमतपुराणम्, ४९४

१५. चतुविर्शतिसंख्यां त्रेतायां रघुनन्दनः।
हरिर्मनुष्यो भविता रामो दशरथात्मजाः।। नीलमतपुराणम्, ५१८

१६. यवैः सम्पूजयेद विष्णुं भोक्तव्याश्च तथा यवाः।
गङ्गासम्पूजनं कार्यं तस्मिन्नहनि काश्यप ।। नीलमतपुराणम्, ७०५

१७. पञ्चरात्रविधानेन् वेधामावाह्या तां बुधः।
आसनस्थां यथाशक्त्या स्नापयेत्स यथाविधि।। नीलमतपुराणम्, ४३३

१८. द्वदशी बुधयुक्ता सा महत्यपि च कीर्त्तिता।
तस्यां जपं तथा स्नानं दान् श्रद्धादिकं तथा।। नीलमतपुराणम्, ७९८

१९. नीलमतपुराणम्, पृथ्वीनाथ भट्ट, पृ. २९२

२०. वारहं च नृसिहं च बहुरूपं वरप्रदम्।
सुतर्षीणां तथैवाचार्याः सुमुखस्य समीपगाः।। नीलमतपुराणम्, १२०४

२१. स्वदेशपार्श्वे रामेण भार्गवेण महात्मना।
दृष्टैव सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः।। नीलमतपुराणम्, १२१०

२२. रौद्रभावेन रामेण यदी चार्चा विनिर्मिता।
रौद्रभावमथास्थाय तस्यां सन्निहितो हरिः।। नीलमतपुराणम्, १२१९

२३. मोक्षिता सा त्वया शापान्न तेऽस्ति द्विज पातकम्।
गोदानफलसंयुक्तो मत्प्रसादाद् भविष्यति।। नीलमतपुराणम्, १२४५

२४. प्रायशो धेनुदानेन लोकोऽर्चयति तं हरिम्।
पर्वतारोहणे क्लेशो महान् विप्रं गवां तथा।। नीलमतपुराणम्, १२४८

सन्दर्भ-ग्रन्थसूची

- कल्हणकृतराजतरङ्गिणी– राम तेजस् पाण्डेय, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, वाराणसी, पुनर्मुद्रित संस्करण २०१९
- जोनराजकृतराजतरङ्गिणी, डॉ. रघुनाथ सिंह, चौखम्बा संस्कृत सीरीज् ऑफिस, वाराणसी, संस्करण प्रथम, वि. संवत् २०२८
- नीलमतपुराण– पृथ्वी नाथ भट्ट– VERILY- Publisher LLB. New Delhi, First Edition २०१७
- कश्मीर इतिहास और संस्कृति, कुसुम भुरिया दत्ता, ऋषन् भारद्वाज, प्रतिभा प्रकाशन दिल्ली, प्रथम संस्करण २००८
- नीलमतपुराण, प्रो. वेद कुमारी घई, क्लासिक प्रिन्टर्श, बाडी ब्राह्मणा, जम्मू संस्करण २०१६

Shodh Navneet (International Peer-Reviewed Research Journal)
ISSN : 2321-6581, Vol. XXII, January - June 2024

कालिदासस्य रूपकेषु शिवोपासना

डॉ. नरेन्द्रकुमारपाण्डेयः*

वाग्देव्याः सरस्वत्याः वरदपुत्रो महाकविः कालिदासः संस्कृतसाहित्यजगतः सर्वश्रेष्ठा विभूतिः। सः भारतीयसंस्कृतेः अनन्योपासकः भारतवर्षस्य उज्ज्वलकीर्तेः अमरगायकः उन्नायकश्च। भारतीयसंस्कृतेः काश्चिद् अद्वितीयविशेषताः, याभिर्विश्वसंस्कृतौ तदीयं स्वीयं विशिष्टस्थानं विद्यते। भारतं धर्मप्राणराष्ट्रम्। भारतीयसंस्कृतिः धार्मिकभावनाभिः पूर्णतया सम्मिलिता। भारतीयधर्मस्य आधारः सर्वशक्तिमतः ईश्वरस्य सत्तायां दृढविश्वासः। भारतीयसंस्कृतौ प्राणिमात्राय सुख-कल्याण-रूप-कामनायाः संकल्पना विद्यमाना। भारतीयचिन्तने तु निखिलब्रह्माण्डस्य जीवनधारिणां कल्याणाय मङ्गलकामनायाः भावो निहितः-

सर्वे हि सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्।।[१]

महाकवेः कालिदासस्य कृतिषु प्राणिमात्रं प्रति उदात्तभावना व्यक्तीभवति। सममेव तदीयरचनासु प्रकृते कणं-कणं च प्रत्यपि आत्मीयताभावः मुखरतया दृश्यते। कालिदासस्य कृतिषु अभिव्यक्ता इयमेव सर्वव्यापकमङ्गलकामना तदीया अभीष्टशिवाराधना विद्यते। शिवस्तु जगतः मङ्गलकारकतत्त्वस्य पर्यायभूतः। महाकविकालिदासः एतदर्थमेव शिवोपासनां कुरुते। चराचरं प्रति अस्याः एव व्यापक-सर्वकल्याण-भावनायाः उद्भावकरूपेण महाकवेः कालिदासस्य स्वीयं स्वतन्त्रस्थानम् अस्ति। कालिदासः उदारचेता, सहिष्णुः परमश्च आस्थावान्। यथोक्तमपि तेन -

सर्वस्तरतु दुर्गाणि सर्वो भद्राणि पश्यतु।
सर्वः कामानवाप्नोतु सर्वः सर्वत्र नन्दतु।।[२]

एतन्नाम सर्वे स्वीयकाठिन्येभ्यो मुक्तिं लभेरन्, सर्वे आनन्दिता भवेयुः, सर्वेषां कामनाः पूर्णाः स्युः सर्वत्र जनाः हर्षञ्चानुभवेयुः।

बलमार्त्तभयोपशान्तये।[३]
आर्त्तत्राणाय वः शस्त्रं न प्रहर्त्तुमनागसि।[४]

बलस्य शस्त्रस्य च प्रयोगः निर्दोषाणां निष्पापानां च जनानां कृते न अपितु जगद्रक्षायै सेवायै च करणीयः।

---

* सहायकाचार्यः, संस्कृतविभागः, हिमाचलप्रदेशकेन्द्रीयविश्वविद्यालयः, धर्मशाला, हिमाचलप्रदेशः

कालिदासाय स्वीयः आराध्यो भगवाञ्शिवः परमप्रियः। समस्तानां तदीयग्रन्थानां प्रारम्भः, मङ्गलं वा आनन्दमूर्तेः भगवच्छिवस्य स्तुत्या जायते। तदीया शिवभक्तिः तस्य काव्यानां नाटकानां च मङ्गलाचरणेषु काव्यगतेषु च विभिन्नस्थलेषु अन्तर्भावेन स्पष्टा भवति। महाकाव्येषु 'रघुवंशं' तदीया सर्वश्रेष्ठरचना । यस्यां कृतौ महाकविना प्रतापिरघुवंशिनां राज्ञां धवलकीर्तेः गानं कृतम् अस्ति, किन्तु अस्मिन् महाकाव्ये कविः सर्वप्रथमं स्वीयं प्रणामाञ्जलिं भगवतश्शिवस्य मातुः पार्वत्याश्च चरणेषु अर्पयति–

वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थ प्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ।।[५]

विशुद्धशब्दार्थयोः परिज्ञानाय शब्दार्थौ इव परस्परं संश्लिष्टौ सम्पूर्णविश्वस्य मातापितरौ अर्धनारीश्वररूपौ भगवन्तौ शिवपार्वत्यौ अहं वन्दे।

अनेन महाकवेः भगवन्तम् आशुतोषं प्रति अनन्यभक्तेः सङ्केतो लभ्यते। तदीयकृतेः वर्ण्यविषयो भवतु ऐतिहासिकः पौराणिकः, रामायणाद्गृहीतः महाभारताद्वा उद्धृतः, किन्तु तत्र प्रारम्भन्तु भगवच्छिवस्तुत्यैव कुरुते। अभिज्ञानशाकुन्तलनाटकस्य मङ्गलाचरणे सः शिवस्य अष्टमूर्तीनां वन्दनां कुर्वन् ब्रूते–

या सृष्टिः स्त्रष्टुराद्या वहति विधिहुतं या हविर्या च होत्री,
ये द्वे कालं विधत्तः श्रुतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्य विश्वम्।
यमाहुः सर्वबीजप्रकृतिरिति यया प्राणिनः प्राणवन्तः,
प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः।।[६]

एतन्नाम सृष्टिकर्तुः प्रजापतेः प्रथमसृष्टिः तन्नाम जलमूर्तिः, विधिपूर्वकम् आहुतीनां वाहिका अग्निमूर्तिः हविप्रदात्री यजमानमूर्तिः, अहो–रात्रमिति समयद्वयस्य निर्मात्री सूर्यचन्द्रमूर्तिः, यः श्रोत्रजन्यो विषयः देवता वा विद्यते। तथाभूता सम्पूर्णविश्वे व्याप्ता आकाशमूर्तिः, सम्पूर्णचराचरस्य प्राणिनां बीजभूता धरित्री देवी अथ च या समस्तप्राणिनां प्राण–सञ्चारयित्री वायुमूर्तिः – आभिः प्रत्यक्षाभिरष्टमूर्तिभिः व्याप्तो भगवान् सर्वेश्वरश्शिवः सर्वेषामपि भवतां रक्षां कुर्यात्।

तदीयं तु महाकाव्यं कुमारसम्भवं भगवच्छिवमहिम्ना अभिलषितम्। सम्पूर्णं कुमारसम्भवं शिवमहिममयैः पद्यैः परिपूर्णम्। स्वीयेऽस्मिन् ग्रन्थे कालिदासोऽन्तर्दृष्ट्या शिव–तत्त्वस्य साक्षात्कारात्परं बाह्यस्थूलदृष्ट्या द्रष्टॄन् जनान् अभिलक्ष्य कथयति यत्– **न सन्ति यथार्थ्याविदः पिनाकिनः।**[७]

एतन्नाम शिवं यथार्थरूपेण ये जानन्ति तादृशज्ञातारोऽनुभवकर्तारः मनुष्याः स्वल्पाः। किन्तावच्छिवस्य पिनाकाभिधानं धनुः, तेन विहितं मदनदहनेन सम्बद्धरहस्यम् ? को वृषः? का गङ्गा कश्चन्द्रमाः? 'भृगुपतिः' कः उच्यते, कैलाशे तत्रस्थितं मणितटं किम् ? इत्येषां प्रश्नानां समाधानमेव शिवस्वरूपस्य यथार्थं निरूपणं विद्यते। कालिदासः स्वीयरचनासु शिवस्वरूपं

निरूपयितुं प्रयत्नम् अकरोत्। अत्र तु प्रतीकरूपेण शिवरहस्यैस्सम्बद्धान् कांश्चन प्रङ्गगान्विचारयेम। कविः अस्मिन् ग्रन्थे एतत्तथ्यमपि उद्धरति यद्विना तपस्यया प्रेम कदापि परिनिष्ठितं नैव भवति। कुमारसम्भवस्य पञ्चमसर्गे पार्वत्या विहिता कठोरतपस्या अत्यन्तम् उदात्तरूपेण वर्णिता। तत्तपोबलेनैव पार्वत्या भगवाञ्शिवः प्राप्तः। विना स्वं शरीरं प्रतप्य धर्मभावना नोत्पद्यते। जगज्जननी पार्वती अपि घोरतपस्यां समाचर्य स्वीयम् अभीष्टं प्राप्नोत्। समग्रलोकस्य मङ्गलभावोऽस्मिन् तपसि समाहितः।

पार्वत्याः प्रेमपरीक्षायै ब्रह्मचारिवेशेन (कूटरूपेण आत्मस्वरूपपरिचयं यच्छन्) शिवः पार्वतीं ब्रूते – पश्य! शिवः कियान् कुरूपः, तन्नेत्रे वानरस्य इव, सः चिताभस्मालेपः, सर्पभूषिताङ्गः, तदीयं कुलं, खाद्यपाद्यं, मातापितरौ, पितामहः, जातिः, गोत्रं चैतत्सर्व तु अज्ञातमेव। कृषेः, व्यापारादन्नाद्धनाद्गृहाच्चापि शून्यः। एकस्यापि दिनस्य भोजनादिव्यवस्था तदीयसकाशे किञ्चिन्मात्रमपि नैव विद्यते, त्वया एतादृशजनेन सह विवाहं कर्तुं तपः आरब्धव्यम्। त्वदपेक्षया संसारे काऽन्या मूर्खा स्यात्?

वपुर्विरूपाक्षमलक्ष्यजन्मता दिगम्बरत्वेन निवेदितं वसु।
वरेषु यद् बालमृगाक्षि ! मृग्यते तदस्ति किं व्यस्तमपि त्रिलोचने।।[८]

पार्वती उत्तरति–

अकिञ्चनः सन् प्रभवः स सम्पदां त्रिलोकनाथः पितृसद्मगोचरः।
स भीमरूपः शिव इत्युदीर्यते न सन्ति यथार्थ्याविदः पिनाकिनः।।[९]

एतन्नाम 'सः स्वयम् अकिञ्चनः किन्तु ब्रह्माण्डस्य सर्वसम्पत्तयः तस्मादेवोत्पन्नाः। श्मशानवासी किन्तु त्रिलोकस्वामी। भीमरूपोऽपि शिवकारी कल्याणकारी सौम्यमूर्तिः सः उच्यते। शिवस्य वास्तविकतत्त्वम् अवगन्तुं नान्यः कश्चित्समर्थः।'

विभूषणोद्भासि पिनद्धभोगि वा गजाजिनालम्बि दुकूलधारि वा।
कपालि वा स्यादथवेन्दुशेखरं न विश्वमूर्तेरवधार्यते वपुः।।[१०]

एतन्नाम सम्पूर्णविश्वस्य स्वामी शिवः। तस्मै कृषिः व्यापारः, आजीविका इत्येषाम् आवश्यकता का। सः भवतु दिगम्बरः गजचर्मधारी कौषेयवसनैः सुसज्जितो वा। सर्पाङ्गभूषितः दिव्यरत्नजटिताभूषणधृतो वा। सस्त्रिशूलं, खप्परं धारयेल्ललाटे चन्द्रमाः सुशोभेत वा। इत्येतैस्तदीयतात्त्विकं स्वरूपं नैव किञ्चित परिवर्तते नैव तदीयविश्वविग्रहतायां विश्वस्वामितायां च किञ्चन परिवर्तनं समागमिष्यति। वास्तवरूपेण तु त्यागमूर्तिः शिवः एव सम्पूर्णज्ञानिभिर्योगिभिः, सद्भिः महात्मभिः ऋषिभिर्मुनिभिश्च ध्येयो ज्ञेयः आदर्शरूपः।

विश्वब्रह्माण्डस्य समस्तजीवानां सर्वविधतपसः फलं यस्य इच्छामात्रेण पूर्णं भवति सः एव श्रीमहादेवः हिमालये किमर्थं तपस्कुरुते? एतदुत्तरन् कालिदासः कुमारसम्भवे ब्रूते–

तत्राग्निमाधाय समित्समिद्धं स्वमेव मूर्त्यन्तरमष्टमूर्तिः।
स्वयं विधाता तपसः फलानां केनापि कामेन तपश्चचार।।[११]

एतन्नाम तस्मिन्नैव स्थाने यथाविधि प्रज्वलितम् अग्निम् आश्रित्य अग्निस्तदीयभूमिप्रभृतिषु अष्टमूर्तिषु एकं प्रधानं मूर्तिम् अग्निम् आश्रित्य भगवान् महादेवः स्वयमेव समस्ततपः फलदाता सन्नपि न जाने कया कामनया कस्यै च सिद्धये स्वयं तपस्तप्तुं प्रारभते।

भक्तानां कल्पवृक्षः शङ्करः आप्तकामः सन्नपि भक्तिस्वरूपायाः प्रेममूर्तिपार्वत्याः मनः कामनां पूर्णीकर्तुम् इमां मनोहारिणीलीलां प्रारभते नास्त्यत्र सन्देहः।

मदनदहनलीलारहस्ये कविस्तु स्वविचारान् कुमारसम्भवे लिपिबद्धान् कृतवान्। महादेवेन पार्वतीं मेलयितुं, भगवता सहप्रेमभक्तिमूर्तेः पार्वत्याः चिरकाङ्क्षिताय समागमाय मध्यस्थत्वेन कामदेवस्समागत्य वासनाराज्यं स्रष्टुं प्रवृत्तः। परम् एतत्कामजन्यराज्यं न तु प्रेम्णा। तन्नाम निष्कामस्य अनुरागस्य राज्यं नासीत्। अस्मिन् राज्ये किङ्क्वचित् भक्तेन भगवन्मेलनं न जातं स्यात्? कामेन सम्पृक्तं प्रेम कलुषितम्, हृदयं भोगेन आसक्तं, प्रेम रुक्षं, भक्तस्तु कामुकश्च जायते। इत्यस्याम् अवस्थायां तु भक्तेन सह भगवन्मेलनं कदाचिदपि न भवितुं शक्यम्। अनेन कारणेन महादेवस्य तृतीयनेत्रं प्रज्वलितम्। तेन विवेकवैराग्यस्वरूपो ज्योतिःपुञ्जः निसृतः। तेन कामो भस्मीभूतः। फलस्वरूपेण पार्वत्याः प्रेमरूपभक्तिः पूर्णताङ्गता। इयमेव महादेवस्य मदनदहनलीला।

देवताः प्रति ब्रह्ममुखात् कालिदासो भगवच्छिवमहिमा निम्नलिखितेषु श्लोकेषुपरिलक्ष्यते–

स हि देवः परं ज्योतिस्तमः पारे व्यवस्थितम्।
परिच्छिन्नप्रभावर्द्धिर्न मया न च विष्णुना।।[१२]

एतन्नाम महादेवस्तमोगुणातीतः परात्परज्योतिःस्वरूपः , परमात्मा , तदीयमहिमातिशयं तु न विष्णुर्जानीते नाहं च।

महाकविना कालिदासेन कृतस्य 'मेघदूतस्य' गीतिकाव्यरूपेण भारतीयसाहित्ये विशिष्टस्थानम्। एतद्गीतिकाव्यं धनपतिकुबेरेण दण्डितस्य स्वीभृत्यस्य यक्षस्य वर्षपर्यन्ताय निर्वासितजीवनाभिलेखमात्रमेव न, प्रत्युत एत्तु भगवतश्चन्द्रशेखरस्य महिम्ना अभिभूतगीतिमयी काव्यरचना अस्ति। अस्मिन् गीतिकाव्ये महाकविर्भगवच्छिवमहिम्नः पुष्कलगानम् अकरोत्। इत्थं तं प्रति स्वीयप्रणतिभावं व्यक्तीकृतवान्।

मेघूदते मेघमाध्यमेन कालिदासः भगवच्छिवचरणेषु स्वीयां सम्पूर्णश्रद्धां प्रकटीकृतवान्। उज्जयिन्यां भगवतो महाकालस्य सन्ध्यार्चनाकाले स्वीयसेवाञ्जलिं अर्पयितुं सः मेघम् अनुरुन्धते। अत्र मेघमाध्यमेन भगवन्तं शिवं प्रति कविः स्वीयमेव श्रद्धान्वितभक्तिभावं व्यक्तीकरोति।

भगवतस्त्रिलोचनस्य वाहनं वृषः। वृषः कामरूपः। तेन कविः सङ्केतयति यत् 'कामः' भगवतश्शिवस्य वशीभूतः। अतः मेघदूते कामः शिवप्रदेशे प्रवेष्टुं नैव समुत्सहते। स तत्र चापं सन्धातुमपि बिभेति।

मत्वा देवं धनपतिसखं यत्र साक्षाद् वसन्तं
प्रायश्चापं न वहति भयान्मन्मथः षट्पदज्यम्।[१३]

इच्छाचारी मेघः आकाशे स्वेच्छया विचरति। अतः कालिदासेन मेघः कामरूपः प्रकृतिपुरुषः उदीरितः–

जानामि त्वां प्रकृतिपुरुषं कामरूपं मघोनः।[१४]

अतः यक्षः कामरूपमेघं ताम् अलकानगरीं गन्तुम् अनुरुन्धते, यस्याः प्रासादाद्बाह्योद्याने विराजमानस्य भगवश्चन्द्रमौलेर्मस्तके सुशोभितचन्द्रमसो विच्छन्ना चन्द्रिका धवलिता विद्यते। अत्र महाकविस्सङ्केतयति यत् कामतत्त्वस्य स्वकल्याणाय शिवसान्निध्ये निगृहीतभावेन वासश्श्रेयस्करः। मेघदूतं काव्यं शिवात्मकचैतन्यं प्राप्तुं सङ्केतयति। अनेन प्रकारेण महाकविः 'मेघदूतस्य' समग्रपरिवेशं भगवतश्शिवस्य महिम्ना सम्पृक्तं निरूपयति।

अभिज्ञानशाकुन्तलम् इति नाटके महाकविः कालिदासः वासनाजन्यं प्रेम अपेक्षते केवलं तस्मै प्रेम्णे स्वीकृतिं प्रददाति यत् अनुतापाग्नौ निरन्तरं प्रतप्य अन्ते कुन्दनमिव विशुद्धं, पवित्रं दिव्यं च प्रमाणितं भवति। भगवतश्शिवस्य महिम्नो गानं नाटकप्रारम्भे एव महाकविना कृतम्। यस्योल्लेखस्तु पूर्वमेव जातम्–

या सृष्टिः स्रष्टुराद्या वहति विधिहुतं या हविर्या च होत्री।[१५]

अनेन प्रकारेण कालिदासः नाटकस्य नान्द्यां (आरम्भे) भगवतोऽष्टमूर्तीनाम् उल्लेखम् अकरोत्। इमाश्च मूर्तयः– सूर्यः, चन्द्रः, यजमानः, पृथ्वी, जलम्, अग्निर्वायुः आकाशश्च। महाकविः एताभ्योऽष्टमूर्तिभ्यः 'प्रत्यक्षाभिः' इत्येतत्पदं प्रयुक्तवान्। तन्नाम अष्टमूर्तयः इमाः संसारे प्रत्यक्षतया दृश्यन्ते। अनेन कालिदासस्सङ्केतयति यत् आसां प्रत्यक्षमूर्तीनां धारकः अस्य जगतो नियामकः शिवः तत्सत्ता सन्देहान्निवृत्ता। अपितु सत्यं त्विदं यद्विश्वस्य प्रत्येकं कणः तदीयसत्तां व्यक्तीकरोति।

तत्त्वज्ञकारणेन तेन भगवच्छिवात्कदाचित् अर्थकामयोर्लालसा न कृता, अपितु शिवसायुज्यं कैवल्यं वा तत्र वाञ्छितम्। सः भगवतो नीललोहितात् सांसारिकवस्तुनो याचनां न कुर्वन् जन्म–मरणचक्रान्मुक्तिं प्रदातुं विनयान्वितः–**ममापि च क्षपयतु नीललोहितः, पुनर्भवं परिगतशक्तिरात्मभूः।**[१६]

एतन्नाम सर्वशक्तिमान् स्वयंभूश्शिवो मदीयपुनर्जन्म निवर्तयतु। मालविकाग्निमित्रनाटकस्य नान्दिपाठे तेन सामाजिकेभ्यो भगवान् प्रार्थितः यत् सः तेषां तामसवृत्तिं शमयेद्येन ते सन्मार्गे स्युः प्रवृत्ताः। **सन्मार्गालोकनाय व्यपनयतु स वस्तामसीं वृत्तिमीशः।।**[१७] अनेक प्रकारेण विक्रमोर्वशीयनाटकस्य नान्द्यां तेन स्थिरभक्तियोगेन सुलभाद्भागवतश्शङ्करात् सर्वेभ्यो निःश्रेयः प्रदातुं प्रार्थना विहिता।

स स्थाणुः स्थिरभक्तियोगसुलभो निःश्रेयसायास्तु वः।।[१८]

महाकवेः इयं विशेषता यत् तदीयायाम् आराधनायां व्यापकलोकमङ्लस्य कामना निहिता। स

तु कविकुलगुरुर्भगवतश्शिवात् सदा जनकल्याणस्यैव याचनां कुरुते इदमेव तदीयशिवस्वरूपस्य यथार्थं ज्ञानं यथार्थं शिवोपासना विद्यते। इदमेव भारतीयधर्मस्य दर्शनस्य च अन्तिमं लक्ष्यमपि।

निष्कर्षतः कालिदासस्य रूपकेषु शिवोपासनाचरणचिह्नानि प्रचुरमात्रायां प्राप्तानि। अध्ययनात् प्रतीयते यन्महाकविः कालिदासः शिवस्य अनन्योपासकः। तदीयं चित्ताकर्षिका भक्तिभावपूर्णवर्णनशैली प्रत्येकं पाठकं मन्त्रमुग्धीकरोति। यथा अभिज्ञानशाकुन्तले कथितं यत्–

काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला।
तत्रापि च चतुर्थोऽङ्कस्तत्र श्लोकचतुष्टयम्।।

उल्लेखनीयं यत् इत्येषां कालिदासरूपकाणां विषयेऽपि कथयितुं शक्यं यद् रूपकेष्वपि कालिदासस्तेषु शिवोपासना विशेषतः।

सन्दर्भाः

१. गरुड़पुराणम्, ३५.५१
२. विक्रमोर्वशीयम्, ५.२५
३. रघुवंशम्, ८.३१
४. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, १.११
५. रघुवंशम्, १.१
६. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, १.१
७. कुमारसम्भवम्, ५.७७
८. कुमारसम्भवम्, ५.७२
९. कुमारसम्भवम्, ५.७७
१०. कुमारसम्भवम्, ५.७८
११. कुमारसम्भवम्, १.५७
१२. कुमारसम्भवम्, २.५८
१३. मेघदूतम्, उत्तरमेघः – १०
१४. मेघदूतम्, पूर्वमेघः – ६
१५. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, १.१
१६. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, ७.३५
१७. मालविकाग्निमित्रम्, १.१
१८. विक्रमोर्वशीयम्, १.१

Shodh Navneet (International Peer-Reviewed Research Journal)
ISSN : 2321-6581, Vol. XXII, January - June 2024

पाणिनिव्याकरणपरम्परायां वैद्यनाथपायगुण्डे : एकमध्ययनम्

शंखशुभ्रः गच्छितः*

उपोद्घातः- पाणिनिव्याकरणपरम्परायां काले काले बहवो विद्वांस आविर्बभूवुः। तैश्च स्वस्वप्रतिभया पाणिनिव्याकरणमाश्रित्य नैके व्याख्यात्मका ग्रन्था व्यलिख्यन्त। एवमेव परम्परायामस्यां प्राय ऊनविंशशतके समागतो वैद्यनाथपायगुण्डे इत्याख्यः कश्चन मूर्धन्यो विद्वान्। अद्यत्वे व्याकरणजिज्ञासवो बहवो प्रायो न जानन्ति यदयं वैद्यनाथः पायगुण्डे-महोदयः कः, कालस्तस्य कः, कं देशमयमलञ्चकार, अनेन विरचिता ग्रन्थाः के, अयं व्याकरणसम्प्रदाये कीदृशं स्थानं बिभर्तीति। अत एतेषां विषयाणां परिज्ञानाय प्राप्ततथ्यानुसारं शोधप्रबन्धेऽस्मिन् आचार्यस्यास्य परिचयात्मकं विवरणं प्रस्तोष्यते।

वैद्यनाथाचार्यस्य परिचयः- वैद्यनाथाचार्यप्रणीतविविधग्रन्थानां पुष्पिकायां स्वनामोल्लेखादस्य परिचयविषये-किञ्चित् ज्ञातुं शक्यते। तद्यथा- शब्दकौस्तुभप्रभाव्याख्यायाः पुष्पिकायाम् "इति श्रीमन्महादेवसुतवेणी-गर्भजपायगुण्डोपाख्यवैद्यनाथ-विरचितकौस्तुभव्याख्यायां प्रभाख्यायां प्रथमाह्निकं समाप्तम्" इति पाठ उपलभ्यते। एवं शब्दकौस्तुभप्रभादिग्रन्थगतपुष्पिकातः, न्यू कॉटलागस् काटलोगोरुम"[१]-ग्रन्थात् च महादेवभट्टः अस्य पिता, वेणी च माता इति विज्ञायते। "A Contribution Towards an Index to The Bibliography of The Indian Philosophical Systems" इत्यस्मिन् ग्रन्थे वैद्यनाथाचार्यस्य पिता रामभट्ट इति फिट्ज-एडवार्डमहोदया उल्लिलिखुः।[२] अतो रामभट्टमहादेवभट्टसुतौ द्वौ वैद्यनाथौ आस्तामिति विज्ञायते। एवं रामभट्टसुतमहादेवभट्टसून्वोः कतरः पाणिनिव्याकरणमालोकयामास इति संशीतिरुपजायते। तत्र एको वैद्यनाथपायगुण्डे अलङ्कारशास्त्रे लब्धप्रतिष्ठो रामभट्टसुनूश्चासीत्। अनेन काव्यप्रकाशस्य उदाहरणचन्द्रिकाव्याख्या, काव्यप्रदीपस्य प्रभाव्याख्या च व्यलेखि।[३] अपरो वैद्यनाथपायगुण्डे इति महादेवभट्टसुतः, व्याकरणशास्त्रनिष्णातः, वैयाकरणचूडामणेर्नागेशभट्टस्य प्रधानशिष्यश्च बभूव। यद्यपि अयं साहित्यशास्त्रसम्बद्धस्य जयदेवप्रणीतचन्द्रालोकग्रन्थस्य रमाख्यां व्याख्यां विरचयामास,[४] तथापि व्याकरणशास्त्रे एव अस्य प्रसिद्धिः परां काष्ठामवाप। अयं व्याकरणशास्त्रे गदा-कला-छाया-भावप्रकाश-

* शोधच्छात्रः, संस्कृत-दर्शनविभागः, रामकृष्णमिशन्-विवेकानन्दशैक्षणिकशोधसंस्थानम्, बेलुड-मठः, हावडा, पश्चिमबङ्गः

चिदस्थिमालेत्यादीनि नैकानि महत्त्वपूर्णानि व्याख्यात्मकग्रन्थकुसुमानि प्रणिनाय।[५] अतोऽलङ्कारशास्त्रे लब्धप्रतिष्ठात् वैद्यनाथाचार्यात् वैयाकरणसम्प्रदायप्रसिद्धोऽयं पायगुण्डे-वैद्यनाथः प्रायो भिन्न आसीदिति प्रतीयते। एवमेव विविधमातृकाणां मङ्गलश्लोकतः, पुष्पिकायाः किञ्च "न्यू काटलागस् काटलोगोरुम्",[६] "संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास",[७] "संस्कृत-वाङ्मय का बृहद् इतिहास,"[८] "A Dictionary of Sanskrit Grammar"[9], "काशी की पाण्डित्य परम्परा"[१०] इत्यादिभ्यो ग्रन्थेभ्यः प्राप्ततथ्यानुसारमिदं निर्णीयते यदयं महादेवभट्टसुतो व्याकरणशास्त्रनदीष्णो वैद्यनाथपायगुण्डे इति।

वैयाकरणकेसरिणो महामहोपाध्यायस्य नागोजिभट्टस्य प्रधानशिष्यः पायगुण्डेवैद्यनाथः। दृढ़तरगुरुभक्तेन पायगुण्डेमहाभागेन स्वगुरुविरचितानां प्रायेण सर्वेषामेव व्याकरणग्रन्थानामुपरि वैदुष्यपूर्णाः गुरोर्गभीराणामभिप्रायाणाम् उपदर्शिका विस्तृताः टीका व्यरच्यन्त। एवं स्वगुरुप्रणीतग्रन्थानां निरन्तराध्ययनाध्यापनेन च अयं प्रकाण्डविद्वद्वृन्दमहीयस्यां वाराणस्यां भट्टनागेशसिद्धान्तान् सुष्ठु प्रतिष्ठापयामास। वैद्यनाथवैदुष्यमहिम्ना महाराष्ट्रप्रदेशेऽपि नागेशग्रन्थाध्ययनाध्यापनपरम्परायाः प्रचारः प्रसारश्च समजायत। तेन महाराष्ट्रदेशीया बहवो विद्वांसो नागेशप्रणीतग्रन्थानामध्ययनेन, अध्यापनेन च नागेशपरम्पराया विस्तारमकार्षुरित्येवं वैद्यनाथाचार्यस्य अगाधपाण्डित्यमस्माभिः कल्पयितुं शक्यते।

बालम्भट्टः कः इति विचारः- विविधग्रन्थेषु सम्प्राप्यते यद्बालम्भट्ट इति वैद्यनाथाचार्यस्यैव अपराभिधा इति। नैकेषु ग्रन्थेषु इदमपि परिलक्ष्यते यद्बालम्भट्ट इति न तस्य अपरं नाम अपितु तस्य पुत्रनाम। अत्र शोधप्रबन्धेऽस्मिन् बालम्भट्ट इति कस्य नाम इत्यस्मिन् विषये विस्तरेण चर्चा व्यधायि। तत्र को वासीत् पायगुण्डेवैद्यनाथतनुज इत्यस्मिन् विषये विपश्चितो बहुधा विप्रतिपद्यन्ते। वैद्यनाथसूनुरासीत् बालम्भट्ट इति "काशी की पाण्डित्य परम्परा"[११] इत्याख्ये ग्रन्थे आचार्याः बलदेव-उपाध्यायाः उदलिखन्। बालशर्मा आसीत् वैद्यनाथसुत इति "संस्कृत व्याकरण-शास्त्र का इतिहास" इत्याख्ये ग्रन्थे युधिष्ठिरमीमांसकैः न्यरूपि।[१२] India Office Catalogue (pp. 458-59, No. 1507) इत्यत्र "धर्मशास्त्रसंग्रह"- ग्रन्थस्य मातृकायामपि बालशर्मणो वैद्यनाथात्मजत्वेन उल्लेखः प्राप्यते। तथा हि-

श्रीशं नत्वा श्रीनिवासी दाक्षिणात्यो निबन्धकृत्।
नागेशपादनिरतो वैद्यनाथात्मजः सुधीः।।५।।
सुमनः कुलवुरुकसाहेवाल्लब्धजीविकः ।
लक्ष्मीसूनुर्भवान्यम्बो विप्रद्वयविलेखकः।।६।।
धर्मशास्त्रिमहादेवमन्नुदेवसहायकः ।
बालशर्मा बालबुद्धिः पायगुण्डोपनामकः।।७।।[१३]

"व्यवहार-बालम्भट्टी" इत्यभिधे ग्रन्थे भूमिकाभागे बालम्भट्टस्य अपरं नाम बालशर्मा इति तत्र

श्रीगोविन्ददासमहाभागाः स्पष्टमवोचन्।[१४] तस्मिन्नेव ग्रन्थे व्यवहाराध्यायान्तिमभागे विद्यमानायां पुष्पिकायाम् "इति श्रीमन्मिताक्षराव्याख्याने महादेवभट्टात्मजोमाङ्गज-वैद्यनाथार्द्धाङ्गभूत-बालकृष्णजननी-पायगुण्डे-इत्युपाख्यश्रीलक्ष्मीविरचिते लक्ष्म्यभिधे व्यवहारप्रकरणम्।।"[१५] इत्ययं पाठः परिलक्ष्यते। तेन वैद्यनाथाचार्यस्य बालकृष्णाख्यः पुत्रो बभूव इति विज्ञायते। किञ्च बालम्भट्टस्य अपरं नाम बालकृष्ण इति "History of Dharmashastra" इत्यस्मिन् ग्रन्थे समवाप्यते।[१६] अत इदं वक्तुं शक्यते यद्बालशर्मा बालकृष्णश्च बालम्भट्टस्यैव अपराभिधाने आस्ताम्। "न्यू काटलागस् काटलोगोरुम्"[१७], "Notes on Religion and Philosophy"[18], "Bālambhaṭṭi"[19], "A Descriptive Catalogue of Sanskrit Mss. In The Library of The Asiatic Society of Bengal"[20] चेत्यादिषु ग्रन्थेषु वैद्यनाथाचार्यस्य अपरनामधेयत्वेन उपनामत्वेन च बालम्भट्ट इति प्रयोगो दृग्गोचरीभवति। तेन प्रतीयते यद्बालम्भट्ट इति पायगुण्डेवैद्यनाथस्य नामान्तरम् उपनाम वासीत् न तु तस्य पुत्रस्य नाम इति। परन्तु मतमिदं चिन्त्यम्। यतो हि India Office Catalogue (pp. 458-59, No. 1507) इत्यत्र "धर्मशास्त्रसंग्रह"- ग्रन्थस्य मातृकायां प्रारम्भश्लोकेषु वैद्यनाथात्मजत्वेन स्वात्मानं परिचाययामास बालशर्माऽपराभिधो बालम्भट्ट इति पूर्वमेव उपन्यास्यत। किञ्च सम्प्रति उपलभ्यमानेषु वैद्यनाथाचार्यप्रणीतेषु गदा-कला-प्रभा-छाया-भावप्रकाश-चिदस्थिमालेत्यादिषु व्याख्यात्मकग्रन्थेषु ग्रन्थकर्तृत्वसन्दर्भे क्वापि वैद्यनाथापराभिधत्वेन उपनामत्वेन वा बालम्भट्ट इति नामप्रयोगो न दृश्यते। आचार्यश्रीरामप्रसादत्रिपाठिभिः सम्पादितायाः भट्टनागेशविरचितायाः टीकात्रयोपेताया "वैयाकरणसिद्धान्तलघुमञ्जूषायाः" प्रस्तावनायाम्,[२१] डॉ. जयशङ्करलालत्रिपाठिभिः सम्पादितस्य भट्टोजिदीक्षितविरचितस्य टीकात्रयसमेतस्य "प्रौढमनोरमा"- ग्रन्थस्य भूमिकायां च बालम्भट्टस्य पायगुण्डेवैद्यनाथपुत्रत्वेनैव उल्लेखः सम्प्राप्यते।[२२] "Indo-Iranian Journal" इत्यत्र प्रकाशिते 'Kṣatriyas in the Kali Age? Gāgābhaṭṭa & His Opponents'[२३] इत्याख्ये लेखेऽपि वैद्यनाथाचार्यस्य पुत्रो बालम्भट्ट इति माधवदेशपाण्डेमहोदयाः स्पष्टं निजगदुः। एवमेतैः तथ्यप्रमाणैरिदं वक्तुं शक्यते यद्बालम्भट्ट इति प्रायो वैद्यनाथतनूद्भवस्य एव अभिधानं न तु वैद्यनाथाचार्यस्य नामान्तरम् उपनाम वेति। विषयेऽस्मिन्निर्णयस्तु विपश्चिद्भिः चिन्त्यः।

वैद्यनाथाचार्यस्य देशः- अस्य देशविषयेऽपि विप्रतिपद्यन्ते विपश्चितः। कतमं देशमयं स्वजनुषा अनुजग्राह इति निश्चप्रचं वक्तुं न शक्यते। अस्य कृतिष्वपि प्रायो देशस्य उल्लेखो न प्राप्यते। मिथिलादेशीयायाः चन्द्रसिंहमहिष्याः लक्ष्मीदेव्याख्याया आस्थाने आसीदयं वैद्यनाथपायगुण्डे इति "Notes on Religion and Philosophy"[२४] इत्याख्ये ग्रन्थे सम्प्राप्यते। अत अस्य मिथिलावास्तव्यत्वमनुमातुं शक्यते। वाराणस्यां वैयाकरणशिरोमणेः नागेशभट्टादयं कृत्स्नं व्याकरणशास्त्रं समधिजगे इति स वाराणसीनिवासी आसीदित्यपि श्रूयते। परन्तु तस्य जन्म वाराणस्यां जातं न वेति विषये विप्रतिपत्तिर्दृश्यते। वस्तुतस्तु सकलविपश्चितां

विद्यानीडभूत आसीत् वाराणसीप्रदेश इत्यतः क्वस्थोऽयमिति निर्णयस्तु क्लेशकरः। India Office Catalogue (pp. 458-59, No. 1507) इत्यत्र बालशर्मकृत– ''धर्मशास्त्रसंग्रह''– ग्रन्थस्य मातृकायां ''दाक्षिणात्यो निबन्धकृत्'' इति पाठ उपलभ्यते। एतेन बालशर्मा दाक्षिणात्य आसीदिति मन्यते। बालशर्मणः पिता वैद्यनाथपायगुण्डे इत्यतः सोऽपि दाक्षिणात्यब्राह्मणः स्यादिति ऊह्यते। तत्र वाराणस्यां सप्त महाराष्ट्रियद्विजान्ववायाः सुप्रसिद्धा अवर्तिषत, ते यथा– १. शेषः, २. धर्माधिकारी, ३. भट्टः, ४. भारद्वाजः, ५. पायगुण्डे, ६. चतुर्धरः वा चौधुरी, ७. पुंतंकरः चेति।[२५] एवमेतेषां सप्तब्राह्मणान्वयानां समुदाय एव दाक्षिणात्यब्राह्मणत्वेन प्रख्यातिमगात्। एते सर्वे महाराष्ट्रप्रदेशात् वाराणसीं समागत्य स्ववैदुष्यवैदूर्य्यप्रभया तत्रत्यं विद्वत्समाजं चिरं समुद्भासयामासुरिति ऐतिह्यविदः।[२६] तत्र सप्तसु महाराष्ट्रियद्विजान्ववायेषु पायगुण्डे– इत्याख्यान्वाये अयं जन्म लेभे इति "Dakshini Pandits at Benares"[२७] इत्यस्मिन् प्रबन्धे उल्लिख्यते। अयं वैद्यनाथो महाराष्ट्रियो ब्राह्मण आसीदिति जयशङ्करलालत्रिपाठिमहोदयसम्पादितस्य सशब्दरत्नप्रौढमनोरमाग्रन्थस्य भूमिकायामवलोक्यते।[२८] "Presidential Address"[२९] इत्यत्रापि आचार्यवैद्यनाथस्य महाराष्ट्रियब्राह्मणत्वं महामहोपाध्यायहरप्रसादशास्त्रिभिः स्फुटं प्रत्यपादि। अत एताभिः युक्तिभिरयं मूलतो महाराष्ट्राभिजनः, कालान्तरे वाराणसीवास्तव्यो बभूव इति इति कथयितुं शक्यते।

वैद्यनाथाचार्यस्य कालः– भारतीयप्राचीनशास्त्रकाराः स्वकृतिषु स्वदेशकालादिसङ्कीर्तनं प्रायशो नैव कुर्वन्ति स्म। तस्मात् प्राचां कालनिर्णयः अतीव कष्टसाध्यः। अयं वैद्यनाथाचार्योऽपि स्वकृतिषु स्थितिकालविषये साक्षान्न किञ्चिदुल्लिलेख। अतः जीवनकालनिर्णायक दृढतरप्रमाणानुपलम्भात् अस्यापि कालविषये निश्चयो नास्ति। तथापि अस्य कृतिषु उल्लिखितानां पूर्वपूर्ववैयाकरणानाम् इतराचार्याणां स्थित्यनुसारेण पौर्वापर्यविचारेण वा ग्रन्थकर्तुः कालोऽनुमानेन व्यवस्थाप्यते। वैद्यनाथपायगुण्डेमहाभागस्य विविधकृतिषु कैयट–हरदत्त–श्रीहर्ष–माधव–नागेश–पुरुषोत्तमदेव–शेषनारायण–कौण्डभट्ट–कृष्णमिश्रादयो बहव आचार्या अस्मरिषत। पुनश्च अयं महावैयाकरणो भट्टोजिदीक्षितप्रणीतस्य शब्दकौस्तुभग्रन्थस्योपरि प्रभानामिकां व्याख्यां किञ्च हरिदीक्षितविरचितस्य शब्दरत्नाभिःप्रौढमनोरमाव्याख्यां लिलेख। अत एतेषामाचार्याणां कालानुसारेण सम्प्रदायाभिमतेन च पायगुण्डेवैद्यनाथाचार्यस्य कालः प्रायः अष्टादश–ऊनविंशशतकयोः मध्ये स्यादिति अनुमातुं शक्यते।

वैद्यनाथाचार्यस्य कृतयः– आचार्यस्यास्य विद्यन्ते नाना प्रथिताः ग्रन्थकृतयः। अयं पण्डितमण्डलमण्डनो विविधशास्त्रेषु महीयसो ग्रन्थान् संरचय्य स्वसर्वतोमुखप्रज्ञायाः प्रदर्शनमकृत। विशेषतः, वैयाकरणसिद्धान्तप्रदर्शिकान् नैकान् वैदुष्यपूर्णान् व्याख्याग्रन्थान् विरचय्य अयं शाब्दिकनिकाये अमरां प्रतिष्ठां प्राप। ''न्यू काटलागस् काटलोगोरुम् ''[३०] इत्यस्मिन् ग्रन्थे अस्य कृतीनाम् उल्लेखः सम्प्राप्यते। तद्यथा–

१. शब्दरत्नस्य भावप्रकाशः भावप्रकाशिका वा टीका।

२. महाभाष्यप्रदीपोद्योतस्य छायाव्याख्या।

३. लघुशब्देन्दुशेखरग्रन्थस्य चिदस्थिमालाव्याख्या।

४. परिभाषेन्दुशेखरस्य गदा टीका।

५. वैयाकरणसिद्धान्तलघुमञ्जूषायाः कलाख्या व्याख्या।

६. परिभाषेन्दुशेखरसंग्रहः।

७. भक्तितरङ्गिणी।

८. भूषणम्।

९. वृद्धशब्दरत्नशेखरः।

१०. सर्वमङ्गला।

११. चन्द्रालोकरमाव्याख्या।

१२. रप्रत्याहारखण्डनम्।

१३. विवरणम्।

१४. शब्दकौस्तुभव्याख्या प्रभा। इति।

शब्दकौस्तुभप्रभाव्याख्यायां ''स्पष्टं चेदं मत्कृतपाषण्डखण्डने'' इत्युक्तत्वात् पाषण्डखण्डनम् अपि वैद्यनाथाचार्येण रचितमिति ज्ञायते। अत्रोक्तेषु वैद्यनाथकृतिषु छाया–गदा–प्रभा–कला–चिदस्थिमाला–भावप्रकाश–रप्रत्याहारखण्डनमित्यादयो ग्रन्थाः पायगुण्डेवैद्यनाथेनैव विरचिताः इति प्राचीनविविधग्रन्थपरिशीलनेन विज्ञायते। किन्तु भूषण–विवरणादिग्रन्थानां वैद्यनाथकर्तृत्वमस्ति न वेति सन्देहो जायते। एतद्विषये सुधीभिश्चिन्त्यम्।

उपसंहारः– पायगुण्डेवैद्यनाथो नामायं पण्डितमणिः गुरुचरणकृपावशात् स्वगुरुसदृशं प्रौढं पाण्डित्यं, ग्रन्थप्रणयनव्यसनञ्च अवाप्य व्याकरणशास्त्रे परां प्रसिद्धिम् उपाययौ इति पाणिनिव्याकरणपरम्परायाम् अस्य विद्यते किञ्चित् महत् स्थानमिति न परोक्षं विदुषाम्। एवमेव पाणिनिव्याकरणपरम्परायां समागतस्य वैद्यनाथपायगुण्डेमहोदयस्य उपलब्धतथ्यप्रमाणानुसारं यथामति परिचयं प्रदाय देशकालकृत्यादिचिन्तनं च व्यधीयत। अनेन वैद्यनाथपायगुण्डेमहोदयविषये शास्त्रजिज्ञासूनां निश्चप्रचं ज्ञानं सञ्जायेत इति मे मतिः।

सन्दर्भाः

1. https://vmlt.in/ncc/33?page=38
2. A Contribution Towards an Index to The Bibliography of The Indian Philosophical Systems, P. 175
3. History of Dharmashastra, Volume - 1, P. 461
४. चन्द्रालोकः, पृष्ठम्– १
5. Encyclopedia of Indian Philosophies, Volume - 5, P. 357
6. https://vmlt.in/ncc/33?page=38

७. संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास, पृष्ठम्- ४४८
८. संस्कृत-वाङ्मय का बृहद् इतिहास, पृष्ठम्- १८५
9. A Dictionary of Sanskrit Grammar, P. 343
१०. काशी की पाण्डित्य परम्परा, पृष्ठम्- ६५
११. काशी की पाण्डित्य परम्परा, पृष्ठम्- १४७
१२. संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास, पृष्ठम्- ४२८
13. History of Dharmashastra, Volume- 1, P. 461
१४. व्यवहार-बालम्भट्टी, भूमिका, पृष्ठम्- ४७
१५. व्यवहार-बालम्भट्टी, पृष्ठम्- १०५३
16. History of Dharmashastra, Volume- 1, P. 460
17. New Catalogus Catalogorum, Volume- 32, P. 8
18. Notes on Religion and Philosophy, P. 254
19. Bālambhaṭṭi, Vyawahārādhyāya, Preface.
20. A Descriptive Catalogue of Sanskrit Mss. in the Library of The Asiatic Society of Bengal, First Part, P. 15
२१. वैयाकरणसिद्धान्तलघुमञ्जूषा, प्रस्तावना, पृष्ठम्- ९
२२. प्रौढमनोरमा, भूमिकाभागः, पृष्ठम्- २१
23. Indo-Iranian Journal, Vol. 53, No.2 (2010), P. 113
24. Notes on Religion and Philosophy, P. 254
25. The Indian Antiquary, Dakshini Pandits at Benares, P. 11
26. https://en.wikipedia.org/wiki/Puntambekar.
27. The Indian Antiquary, Dakshini Pandits at Benares, P. 11-12
२८. प्रौढमनोरमा, भूमिकाभागः, पृष्ठम्- २६
29. Presidential Address, Mahamahopadhyaya Haraprasad Shastri, P. 2
30. https://vmlt.in/ncc/32?page=3

परिशीलितग्रन्थाः

- मीमांसकः, युधिष्ठिरः, संस्कृत-व्याकरणशास्त्र का इतिहास, प्रथमः भागः, हरियाणा, रामलाल-कपूर-ट्रस्ट, संवत् २०३० (तृ.सं.)।
- याज्ञवल्क्यस्मृतिः, आचाराध्यायः, मिताक्षरा-बालम्भट्टीसहिता, लाल-बाहादुर-शीर्षचन्द्र-विद्यार्णवः (अनुवादकर्ता), इलाहाबाद, पाणिनि-ऑफिस, भुवनेश्वरी-आश्रम, १९१८
- उपाध्यायः, बलदेवः, काशी की पाण्डित्य-परम्परा, वाराणसी, तारा प्रिंटिंग वर्क्स, १९८३
- व्यवहार- बालम्भट्टी। नित्यानन्दपन्तपर्वतीयः (सम्पा.), बनारस, चौखम्बासंस्कृतसीरिज, १९१४
- संस्कृत-वाङ्मय का बृहद् इतिहास, पञ्चदश-खण्ड, बलदेव-उपाध्यायः (प्र. सम्पा.), सम्पा. गोपालदत्त-पाण्डेयः, लखनऊ, उत्तरप्रदेशसंस्कृतसंस्थानम्।
- चन्द्रालोकः, रमाव्याख्योपतः, महादेवगङ्गाधरशर्मा-वाक्रे (संस्कर्ता), मुम्बई गुजराती प्रिंटिंग-प्रेस, १९२३ (द्वि. सं.)।

- वैयाकरणसिद्धान्तलघुमञ्जूषा, प्रथमो भागः, श्रीदुर्बलाचार्यकृता कुञ्जिकाव्याख्यया, श्रीबालम्भट्टकृतया कलाव्याख्यया, सरला-हिन्दीव्याख्यया च विभूषिता, आचार्यश्रीरामप्रसादत्रिपाठी (सम्पा.), वाराणसी, सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयः, १९९०
- प्रौढमनोरमा, अव्ययीभावान्ता, श्रीहरिदीक्षितकृता लघुशब्दरत्नसहिता, भैरवमिश्रविरचिता शब्दरत्नप्रकाशिका-व्याख्यासमन्विता, माधवशास्त्रिकृत-प्रभानामकटिप्पणीयुता, जगन्नाथ-शास्त्रिकृत-शब्दरत्नप्रदीपकव्याख्यासहिता, सदाशिवशास्त्रिकृतविभाटिप्पणीसमेता च, प्रथमो भागः, जयकृष्णदास-हरिदास गुप्तः (प्रकाशकः), वाराणसी, चौखम्बासंस्कृतसीरिज-ऑफिस, १९९२
- Kane, Pandurang Vaman. History of Dharmashastra (Volume- 1, Part- 2) Pune : Bhandarkar Oriental Research Institute. 1975 .
- Descriptive Catalogue of Sanskrit Manuscripts in the Library of The Asiatic Society of Bengal (First Part - Grammar). Rajendralal Mitra (Ed.). Calcutta : Baptist Mission Press. 1877.
- Bālambhatti. Acharadhya. J. R. Gharpure (Ed.). Bombay. 1914 (1st Ed.).
- Abhyankar, Kashinath Vasudev. A Dictionary of Sanskrit Grammar. Baroda : Oriental Institute. 1961 (1st Ed.).
- Kaviraj, Gopinath. Notes on Religion and Philosophy. Gaurinath Shastri (Ed.). Varanasi : Sampurnanand Sanskrit University. 1987.
- Encyclopedia of Indian Philosophies (Vol.- 5). Coward, G. Harold; Raja, K. Kunjunni (Ed.). Delhi : Motilal BanarasidasPublishires Private Limited.
- New Catalogus Catalogorum (Vol. - XXXIII). Dash, Siniruddha (Ed.). Madras : Chennai : University of Madras and National Mission for Manuscripts (New Delhi).
- New Catalogus Catalogorum (Vol. - XIII). Dash, Siniruddha (Ed.). Madras : Chennai: University of Madras and National Mission for Manuscripts (New Delhi).
- Deshpande, Madhav. Kṣatriyas in the Kali Age? Gāgābhaṭṭa & His Opponents, Indo-Iranian Journal, Volume - 53, No. 2, Published by Brill, 2010, P. 95-120.
- Viṣamapadavyākhyā. A Commentary on Bhaṭṭoji Dīkṣita's Śabdakaustubha attributed to Nāgeśabhaṭṭa. James W. Benson (Ed.). New Heaven, Connecticut : American Oriental Society. 2015.
- Hall, Fitzedward. A Contribution Towards an Index to The Bibliography of the Indian Philosophical Systems. Calcutta:

Baptist Mission Press. 1859.

- Shastri, Haraprasad. Dakshini Pandits at Benares. The Indian Antiquary (A Journal of Oriental Research). Vol - XLI. Jointly Edited by Richard Carnac Temple and Devadatta Ramakrishna Bhandarkar. Bombay : British India Press. 1912.
- https://en.wikipedia.org/wiki/Puntambekar retrieved on 12th May 2024 at 11.00 AM.
- https://www.jstor.org/stable/24665176 retrieved on 17th July 2024 at 11.00 AM.
- https://vmlt.in/ncc/32?page=3 retrieved on 14th June 2024 at 11.00 AM.
- https://vmlt.in/ncc/33?page=38 retrieved on 19th June 2024 at 11.00 AM.

———————————

Shodh Navneet (International Peer-Reviewed Research Journal)
ISSN : 2321-6581, Vol. XXII, January - June 2024

केशवाचार्यचरितमहाकाव्यस्य स्वरूपम्

डॉ. विवेकशर्मा*, रवि कुमार**

शोधसारः- शोधपत्रेऽस्मिन् केशवाचार्यस्य सम्पूर्णजीवनस्य तथा मनोहरलालार्यद्वारा तस्योपरि महत्कृतेः विषये वर्णनं वर्णितमस्ति। आचार्यकेशवस्य जीवनोपरि एकादशसर्गात्मके महाकाव्येऽस्मिन् पूर्वजपरम्परातः प्रारम्भ केशवाचार्यस्य अद्यावधिं यावत् विशदवर्णनं वर्णितमस्ति। रचनेयं साहित्यिकजिज्ञासुकेभ्यः व्याकरणमर्मज्ञेभ्यश्च बहूपयोगिनी भविष्यतीति मे आशा। एवं क्रमेण केशवाचार्यचरितस्य स्थूलस्वरूपं मया अस्मिन् शोधलेखे प्रतिपादितं। अभिनवमहाकाव्येषु महाकाव्यमिदं महत्त्वपूर्णं वर्तते यस्यानुशीलनं समाजाय उपकारकं भविष्यति।

प्रमुखशब्दाः- केशवाचार्यचरितम्, मनोहरलालार्यः, महाकाव्यम्, शिबुरामशर्मा, भारतवर्षम्, सर्गः, हिमाचलप्रदेशः, जराशी, बुद्धिदेवी, दिवाकरदत्तशर्मा।

हिमाचलप्रदेशं **'देवभूमिः'** इति सञ्ज्ञयापि विभूषितोऽस्ति। देवभूमिरियं भारतवर्षस्य उत्तरदिशायां स्थितास्ति। अस्यां देवभूम्यां अग्रगण्यः आचार्यो वर्तते - प्रो. केशवाचार्यः। येषां जीवनस्य प्रतिपादकं महाकाव्यं वर्तते- केशवाचार्यचरितम्। केशवाचार्यचरितं महाकाव्यं प्रतिष्ठितसंस्कृतकविना मनोहरलाल-आर्येण लिखितम्। सुप्रेरकस्य केशवाचार्यस्य जीवनं विज्ञातुं महाकाव्यमिदं बहूपकारकं वर्तते।

केशवाचार्यचरितमहाकाव्यमिदमेकादशसर्गेषूपनिबद्धमस्ति। एकादशसर्गेषु वर्ण्यविषयस्य संक्षिप्तरूपेण वर्णनमित्थं विद्यते।

प्रथमसर्गः- पञ्चपञ्चाशत्पद्यात्मके सर्गेऽस्मिन् सर्वादौ भगवद्देवाधिदेवमहादेवं संस्तुत्य महाकाव्यं प्रारब्धमस्ति। ततो भ्रातृतुल्यगुरुवरविजयपालशास्त्रिणोऽभिवादनं कृतमस्ति। सर्गेऽस्मिन् 'हिमाचलकोविदाष्टकम्' तथा च 'हिमाचलनिर्मातृचरितमि'त्यनयोः काव्यकृतयोरपि चर्चा कृतास्ति। आशुकविमनोहरलालार्यद्वारा शीघ्रतयैव महाकाव्यस्यास्य रचनाञ्च कारेति स्वीकृतमस्ति।[१] अत एवात्र शुभकर्मरूपाचार्यकेशवस्य चरित्रमत्यन्तसुचारुकाव्यत्वशैल्यां चित्रितमस्ति।

सज्जनपुरुषाणां चरित्रन्तु सदैव हृदयस्थाह्लादकारकं भवति, यतो हि सज्जनपुरुषाः राष्ट्रस्य गौरवं भवन्ति।[२] अत एव यत्सम्पूर्णहिमाचलप्रदेशो लघुदीर्घरियासतेषु विभक्त आसीत्तेषु विविधजनपदेषु नानारियासतेषु च अनेके नृपाः शासनं कुर्वन्ति स्म। तेषामपि

* सहायकाचार्य, संस्कृत विभाग, हिमाचल प्रदेश केन्द्रीय विश्वविद्यालय, धर्मशाला, हिमाचल प्रदेश
** शोधार्थी, संस्कृत विभाग, हिमाचल प्रदेश केन्द्रीय विश्वविद्यालय, धर्मशाला, हिमाचल प्रदेश

अत्यन्तसङ्क्षिप्तरूपेण वर्णनं कृतमस्ति। एतेषु भीमचन्दभूपचन्दहरिचन्द-शमशेरचन्दपद्मचन्दकरमचन्दसूरतरामकृष्णचन्द्रेत्यादीनां विशदवर्णनं वर्णितमस्ति। हिमाचलप्रदेशस्यात्र दिव्यभूमेरपि प्रशंसा कृता वर्तते। तत आचार्यकेशवरामस्य जन्मभूमेः 'जराशी'त्याख्यग्रामस्य विषयेऽपि चित्रं चित्रितमस्ति।

द्वितीयसर्गः- अत्रैकचत्वारिंशत्पद्यात्मके सर्गेऽस्मिन् हिमाचलप्रदेशीयशिमलाजनपदस्थठियोगोपमण्डलस्य जराशीग्रामस्यास्य शाण्डिल्यगोत्रापत्ययानां, विविधधार्मिककुलानां, कर्मकाण्डनिष्णातऋृणां, स्वधर्मपरायणानां, देवतुल्यविदुषां, कर्त्तव्यपरायणजनानां मातृपितृसेवकानाञ्च चर्चा वर्णिताऽस्ति। यद्यपि प्रायश एते सर्वे अनाक्षरत्वेषु तथा नाधीतशास्त्रनिष्ठत्वेषु सतिष्वपि धर्मशास्त्राणां गूढचिन्तकाः सन्तीत्यपि सूचितमस्तीति।

आचार्यकेशवरामशर्मणः कुले श्रीयोगिनः सधर्मपत्नीतः विस्तरेण वंशानुचरितं वर्णितमस्ति। तयोः एकः पुत्रः 'शिबुरामशर्मा' इत्याख्यो बभूव, येन सम्पूर्णकुलं स्वात्मानं धन्यं मन्यते स्म। यस्य यौवने 'मुशी' इत्याख्यया धर्मपत्न्या सह विवाहो बभूव। अनयोः पुत्ररूपेणैव 'जयवन्तः' इत्याख्यं कुलरत्नं प्राप्तवान्। बालकोऽयं कृषिकर्मनिपुणः, महत्कीर्तिसम्पन्नः, अत्यन्तपरिश्रमी ओजस्वी च बभूव। बालकस्यास्य परिश्रमस्य वर्णनं नानाछन्दसु कृतमस्ति महाकविना। कालान्तरे यस्य विवाहो 'बुद्धिदेवी' नाम्नः कन्यया सहाभवत्। अस्याः गर्भसम्भवादेव सन्ततिसप्तकस्य जन्म बभूव। यस्मिन्नाचार्यकेशवरामोऽप्यायाति। आचार्यकेशवरामसहितसम्पूर्णकुलद्वाराऽत्यन्तनिर्धनजीवनं यापित्वा बाल्यकालीनघटनानां विशदरूपेण वर्णनमत्र कृतमस्तीत्यस्य सर्गस्य सार इति।

तृतीयसर्गः- चतुश्चत्वारिंशत्पद्यात्मके सर्गेऽस्मिन् बालकस्य जन्मकथा वर्णिताऽस्ति। तथा विविधाचार्यैः सम्प्राप्तादेशद्वारा स्वपुत्रस्य जातकर्मसंस्कारः सम्पादित इत्यस्य, पुत्रस्य नामकरणसंस्कारोत्सवेनाह्लादितजयवन्तस्य मनोगतभावानाम्, 'केशवरामशर्मे'ति नाम सर्वोत्कृष्टं मत्वा बालकस्य नामकरणस्य, भयाकुलबालकस्य पितृभ्यां मनोभावावगमनं कथमभवत् इत्यस्य, बाल्यकालनिर्धनत्वस्य, अन्नप्राशनसंस्कारस्य, बालककेशवरामस्य बाल्यक्रीडानां, चौलकर्मसंस्कारस्य बालकस्य प्रबलबौद्धिकक्षमतायाः वर्णनमतिविस्तरेण वर्णितमस्ति।

चतुर्थसर्गः- द्विसप्ततिपद्यात्मके सर्गेऽस्मिन् बौद्धिकविकासस्य संवर्द्धनाय बालकस्य विद्यालये प्रवेशप्रापणस्य, सुदूरविद्यालयस्य सुदुस्तरमार्गस्य, बालकस्य गुरुभक्तेः, बालककेशवस्य सौहार्दभावस्य, उपनयनसंस्कारस्य, वेदपुराणज्योतिषादीनामध्ययनार्थे बालकस्य विद्यालयात्त्यागपत्रं स्वीकृत्य कर्मकाण्डप्रवीणस्य श्रीरतिरामशर्मणो गृहं प्रति गत्वा बालकद्वारा ज्यौतिषादिशास्त्रेष्वध्ययनस्य, फागुः' इत्याख्यक्षेत्रस्य श्रीरतिरामशर्मणो गृहेऽकस्मादेव आचार्यदिवाकरदत्तशर्मणः आगमनस्य, श्रीमद्दिवाकरदत्ताचार्यद्वारा बालके विद्यमानानां विविधदिव्यगुणान्नवलोक्य पुनः विद्यालये प्रवेशाय अनुरोधः प्रकटितः। तदा केशवस्य शिमलानगरस्थराजकीयनेहरुसंस्कृतमहाविद्यालये प्रवेशाय स्वेच्छा प्रकटितवान् तथा केशवः

स्वगृहं प्रति गतवान् इति वर्णितमस्ति ।

पञ्चमसर्गः- द्विषष्टिपद्यात्मके सर्गेऽस्मिन् बालककेशवस्य गृहागमनमभवत्, केशवो गृहे आगत्य स्वपित्रा निवेदनमकरोत् यत् श्रीमद्दिवाकराचार्येण किं-किं कथितमिति सविस्तरेण पितुः पार्श्वे निवेदितम्, पित्रा केशवरामस्य दाम्पत्यजीवने प्रवेशस्येच्छायाः प्रकटनम्, बालविवाहकुप्रथायाः निन्दा, केशवरामद्वारा भविष्यचिन्तायाः वर्णनं तथा श्रीभगतरामस्य कन्यारत्नेन सह बालककेशवरामस्य विवाहवर्णनं वर्णितमस्ति।

षष्ठमसर्गः- सप्तदशोत्तरैकशतकपद्यात्मके सर्गेऽस्मिन् विवाहानन्तरं विविधपारिवारिक-समस्यानां कृते भविष्यचिन्तनम्, संस्कृतभाषायाः अध्ययनार्थं महाविद्यालयं प्रति गमनस्येच्छायाः प्रकटनम्, पितृभ्यां बालकाद् वियोगस्य विषये चिन्तनं तथा पित्रोः मनोदशायाः वर्णनम्, कर्कशताक्ष्वेडं पीत्वा बालकस्य शिमलानगरे प्रवेशार्थं गमनस्यादेशः, शिमलानगरस्य भव्यतायाः वर्णनम्, शिमलानगरस्थसंस्कृतमहाविद्यालये श्रीद्दिवाकरदत्ताचार्यस्य संरक्षणे प्रवेशो गृहीतः, पञ्जाबविश्वविद्यालयात् शास्त्रिकक्षामुत्तीर्णा कृता, ततः स्नातककक्षामुत्तीर्य शिमलानगरस्थसुविश्रुतलेडीइरविननामककन्याविद्यालये अध्यापनकार्यस्य वर्णनम्, पुनः पञ्जाबविश्वविद्यालयाद् दार्शनिकस्नातककक्षायां सर्वप्रथमं स्थानं गृहीतस्य वर्णनम्, एफ.ए., एम.ए.(स्नातकोत्तरम्), एम.फिल्. इत्यादिकक्षाः उत्तीर्य विविधव्याकरणज्योतिषदर्शनादिषु प्रवीणः श्रेष्ठश्च बभूवेत्यादीनां वर्णनं वर्णितमस्तीति।

सप्तमसर्गः- षट्सप्ततिपद्यात्मके सर्गेऽस्मिन् पुनः शिमलानगरस्थसुप्रसिद्धलेडी-इरविननामककन्याविद्यालये अध्यापनकार्यस्य वर्णनम्, मेधावीछात्राणां प्रशंसायाः वर्णनम्, सोलनस्थसंस्कृतमहाविद्यालये अध्यापनकार्यम्, सोलनस्थशूलिनीदेव्याः भव्यतायाः वर्णनम्, कुल्लूस्थराजकीयमहाविद्यालये सर्वकारीयव्यवसायप्राप्तेः वर्णनम्, कुल्लूजनपदस्य दिव्यतायाः वर्णनम्, 'भुवनेश्वरीचरितम्' इति प्रथकृतेः सूत्रपातस्य वर्णनम्, अनेकेषां शोधपत्राणां, 'भारतीयदर्शन- एक अनुशीलन' तथा कविताना्च्च रचनानां वर्णनं तथा च हिमाचलप्रदेशसर्वकारद्वारा प्रदत्तादेशैः सोलनमहाविद्यालये पुनरागमनस्य वर्णनं वर्णितमस्ति।

अष्टमसर्गः- द्वात्रिंशदुत्तरैकशतकपद्यात्मके सर्गेऽस्मिन् विविधसंस्कृतविषयकसङ्गोष्ठिषु राष्ट्रियान्तर्राष्ट्रियभाषणप्रतियोगितापद्यनिर्माणशोधपत्रवाचनादिषु स्वीयभाषणैः सभागाराणां शोभायाः वर्धनेनैव अनेकशैः 'ब्रह्मर्षिः' 'महामहोपाध्यायः' चेत्याद्युपाधिभिः अनेकपुरस्कारैश्च सुशोभितस्य वर्णनम्, राष्ट्रपतिमहोदयद्वारा राष्ट्रस्तरीयसर्वोच्चपुरस्कारस्य प्राप्तेः वर्णनम्, नानाविद्वद्भिः साकमाचार्यकेशवस्य गणनायाः वर्णनम्, हिमाचलप्रदेशस्य मणिरूपस्याचार्यकेशवस्य प्रशंसायाः वर्णनं तथा च विविधसङ्गोष्ठिषु आचार्यकेशवस्य विद्यमानतायाः वर्णनं वर्णितमस्तीति।

नवमसर्गः- शतकपद्यात्मके सर्गेऽस्मिन् नवसर्गात्मकस्य 'भुवनेश्वरीचरितमि'ति महाकाव्यस्य विस्तृतवर्णनम्, 'दिवाकराचार्यचरितमि'ति सप्तसर्गात्मकापरकाव्यस्य वर्णनम्,

'दिव्यज्योतिः' इत्याख्यायाः पत्रिकायाः चर्चा, 'हिमाचलवैभवमि'ति काव्यस्थहिमाचलप्रदेशस्य भव्यतायाः दिव्यतायाः वर्णनम्, शतकचतुष्टयस्य विशदवर्णनम्, 'शालग्रामचरितमि'त्याख्ये महाकाव्ये 'शालिग्रामः' इत्याख्यदार्शनिकमहोदयस्य उत्कृष्टशैल्यां वर्णनम्, 'अभिनवकविताञ्जलिः' इत्याख्यायाः रचनायाः विस्तृतवर्णनम्, 'संस्कृतसरिते'त्याख्याः रचनायाः विस्तरेण वर्णनम्, 'अभिषेकनाटक' इत्याख्यप्रान्तीयपर्वतीयभाषायामनुवादरूपवर्णनञ्च वर्णितमस्तीति।

दशमसर्गः- नवषष्टिपद्यात्मके सर्गेऽस्मिन् शार्दूलविक्रीडतछन्दसा आलोडितायाः 'श्रीमद्भागवतप्रतिच्छाये'ति नामक्याः रचनायाः विशदवर्णनम्, भक्तशिरोमणेः श्रीहरिपादस्य ध्रुवस्य चरित्रं 'ध्रुवचरितमि'ति काव्ये विस्तरेण चित्रितमस्ति, 'श्रीकृष्णप्रीतिपत्रशतकमि'ति ग्रन्थस्थ कृष्णचन्द्रस्य च विशदवर्णनम्, आचार्यकेशवरामस्य कृष्णेन सदृशं गौरवस्य वर्णनम्, विविधकवितारूपमालाभिः सुशोभितायाः 'केशवकाव्यकमलाकरः' इत्याख्यायाः रचनायाः वर्णनम्, दारुणदुःखसागरात्पारं प्राप्तुं भवसागरस्य कलुषितमानवेभ्यः 'परमार्थपन्था' इति कृतेः वर्णनम्, 'गङ्गास्तुतिः' इति भगवतीगङ्गायाः स्तुतिपरकग्रन्थेऽस्मिन् पुण्यप्रदायिन्याः पापविमोचन्याश्च विशदवर्णनम्, ततः 'सोलनशतकमि'त्याख्यायाः अष्टमकृतेः 'दिव्यज्योतिः' इत्याख्यायां पत्रिकायां प्रकाशनपूर्वकसोलनजनपदस्य वर्णनम्, इतोऽपि 'धर्मसाररचना' इति अप्रकाशितकृतेः वर्णनम्, संस्कृतगौरवस्य उज्ज्वलतायाः 'संस्कृतद्वित्रिंशिका' इति रचनायां विस्तारपूर्वकवर्णनं तथा च 'भगवती-चरणौ शतकमि'ति रचनायाः आलङ्कारिकवर्णनं वर्णितमस्ति।

एकादशसर्गः-धिकशतकपद्यात्मके सर्गेऽस्मिन् आचार्यकुमारसिंहसिसोदियामहोदयद्वारा केशवरामस्य कवित्वस्य विद्वतायाश्च वर्णनम्, सोलनस्थे श्रीतारिणीसंस्कृतविद्यालये आचार्यकेशवरामस्य शासनकुशलतायाः, श्रीप्रेमलालगौतमद्वारा केशवरामस्य प्रशंसायाः, हिमाचलप्रदेशस्य ठियोगोपमण्डलस्य कलीण्डनिवासिना आचार्यरामानन्दमहोदयद्वारा आचार्यकेशवस्य उत्कृष्टविद्वतायाः, आचार्यवरेण डॉ. परमानन्दभारद्वाजेन तथा श्रीदिनेशशर्मणा आचार्यकेशवरामस्य अतुलनीयायाः प्रशंसायाः वर्णनं तथा विविधशास्त्रेषु निष्णान्ताचार्यकेशवरामस्य वर्णनमाचार्यमनोहरलालार्यद्वारा कृतमस्ति।

इत्थं महाकाव्येऽस्मिन् आचार्यकेशवरामस्य सम्पूर्णजीवनस्य वर्णनं वर्णितमाचार्यमनोहरलालार्यमहोदयेन।

पात्रसमीक्षणम्- पात्रसमीक्षणं कस्यापि साहित्यस्य महत्त्वपूर्णमङ्गमस्ति। यतो हि तेषामाधारेणैव सम्पूर्णकाव्यस्य रचनायाः निर्माणं भवति। अत एव भागेऽस्मिन् केशवाचार्यचरितमिति महाकाव्यगतपात्राणां विषये सम्पूर्णविषयस्यालोडनं विधास्यते। अत्र पात्रेषु योगी, जयवन्तः, बुद्धिदेवी, केशवाचार्यः, दिवाकरदत्तेत्यादयः सन्ति। येषां सरलतया सङ्क्षेपेणैवात्र विधास्यते, तद्यथा-

योगी- हिमाचलप्रदेशस्य ठियोगोपमण्डलस्य दिव्यभूमौ शाण्डिल्यगोत्रे 'योगी' इत्याख्यस्य महत्पुरुषस्य जन्म बभूव। यस्य जन्मत एव सम्पूर्णजराशीग्रामं स्वं धन्यमनुभूयते स्म।[३] तेन सम्पूर्ण

जीवने संस्कृतेः समुत्थानाय तथा संस्कृतभाषायाः परिपालनं कृतम् । भारतीयसंस्कृतौ कर्मकाण्डस्य बहुमहत्त्वपूर्णं स्थानं विद्यते। ब्राह्मणवर्गीयाः परिवाराः अनेन प्रकारेणैव स्वस्वाजीविकाः अद्यत्वेऽप्यर्जयन्ति स्म। तथैव योगीमहोदयेनापि स्वपरिवारस्य पोषणार्थं परिपालनार्थञ्च मार्गोऽयं चयनीकरोति।

पुराकाले यद्यपि मार्गोऽयं बहुश्रेष्ठं मन्यते स्म, परञ्चाधुनिककालीनसमाजस्य दृष्टिकोणं बहुभिन्नं भूतमस्ति। यद्यपि प्रत्यक्षरूपेण तु अद्यत्वेऽपि समाजे जनाः पण्डितानां कर्मकाण्डप्रतिज्ञानां वा प्रशंसां सम्मानं च कुर्वन्ति। परञ्च परोक्षरूपेण ते निन्दकभाजा भवन्ति। तथापि अद्यत्वे बहवो पण्डितजना भगवतः भक्तेः कृते तथा स्वस्वपरिवारस्य भरणपोषणार्थं कर्मकाण्डं स्वीकुर्वन्ति। परञ्च पुराकाले बहुकठिनपरिश्रमानन्तरमेव कर्मकाण्डं कर्तुं समर्था भवन्ति। तस्मिन् काले योगीमहोदयोऽपि विद्यालयगमनाभावादपि बहुपरिश्रमेण कर्मकाण्डस्य क्षेत्रे न केवलं स्वाजीविकामर्जयति स्म अपितु विविधशास्त्राणां मौखिकज्ञाता अपि आसीत्। तेन श्रुतिपरम्परयैव कर्मकाण्डसहितसंस्कृतशास्त्राणामध्ययनं कृतम्। एतादृशं योगीमहोदयं जराशीग्रामे बहुप्रतिष्ठामप्राप्नोत्।

योगीमहोदयस्य 'शिबुरामः' इत्याख्यः पुत्रः सञ्जातो येन शाण्डिल्यगोत्रो धन्यमनुभूयते स्म। अस्य 'मुशी' इत्याख्यया कन्यकया सह विवाहो बभूव। अनयोः गौरीशङ्करूपिणयोः गृहे श्रीगणेशरूपपुत्ररत्नस्य प्राप्तिरभवत्। सा सन्ततिः 'जयवन्तः' इति नाम्ना लोकप्रसिद्धमभवत्, यथोक्तं मनोहरलालार्यमहाकविना–

मुशीतिनाम्नी शिबुरामभार्या शिवस्य दारा गिरिजेव साक्षात्।
काले गृहेऽसूत सुपुत्रमेकं भव्यं भवानीव गणाधिराजम्।।[४]

जयवन्तः– योगीमहोदयस्यात्मजो जयवन्तः पित्रा सदृशो बहुपरिश्रमी, कृषकवर्गीयः महत्कीर्तियुक्तश्चासीदिति मनोहरलालार्यद्वारापि स्वकीयमहाकाव्ये केशवाचार्यचरिते अङ्गीकृतमस्ति, यथा–

गुरुप्रदत्तं जयवन्तनाम धृत्वा सुतोऽसौ महनीयकीर्तिः।
कृषीवलेषु त्वजनि श्रमिष्ठः श्रमोऽखिलानूर्जयति ध्रुवं हि।।[५]

ब्राह्मणत्वकृषकत्वाभ्यां सह शान्तः, आशावादी, परोपकारी, दीपरूपः, जनतापहारी, सरलः, उदारश्च जयवन्तस्य मूलभूतगुणाः आसन्। एतैः गुणैः सम्पूर्णजराशीग्रामं स्वं धन्यं मन्ये। 'सज्जनैः सह मैत्रीं सार्थकी भवती'ति धिया सर्वे जनाः तेन सह मैत्रीं कर्तुं सर्वदा उत्सुका भवन्ति स्म। बहूद्यमपरायणत्वे सति सर्वे जनाः तस्यानुसरणमकुर्वन्। कालानन्तरं स्वगुणानामाधारेण स्वसदृशी कन्यकया 'बुद्धिदेवी' इत्याख्यया सह विवाहो बभूव।

अधुना द्विगुणं भूत्वा कृषिकर्मणि निरतो बभूव। स्वक्षेत्रेषु भिन्नभिन्नशस्यानामुत्पादनं संरक्षणञ्च कुर्वन् स्वगृहस्थजीवनस्यानन्दमनुभूयते स्म। तत्र शस्यरूपेण गोधूममाषत्रपुषालुसेब–

कूष्माण्डवातामकशृङ्गबेरादयाः समुत्पादयति स्म। यस्य विषये मनोहरलालार्यद्वारेत्थं वर्णितं स्वकीये केशवाचार्यचरितमहाकाव्ये।

गोधूममाषत्रपुषालुसेबकूष्माण्डवातामकशृङ्गबेरैः।
उल्लीक्षुमानीयवकर्वटीभिः सुसिम्बमेथीमरिचादिभिर्वा।।
गोजिह्विकाकर्कटिकापुदीनैर्हरेणुसिंहीकचुकारवेल्लैः।
अरिष्टकालूकचयैर्हरिद्रामकायशाकैर्धनिकादिभिश्च।।[६]

जयवन्तेन स्वधर्मपत्न्या साकं स्वगृहस्थजीवनमतीवानन्देन व्यतीतम्। तस्य सन्ततिसप्तकं बभूव। पितुर्धर्मणः तेन सम्यक्तया निर्वहनमकरोत्। एतादृशो महापुरुषो यद्यपि आधुनिकयुगे बहुविरलं विद्यते। प्रस्तुतमहाकाव्यस्य नायकस्य पितुरप्यमेवास्ति।

प्रत्येकमानवस्य जीवने पितुः स्थानमन्यतममस्ति। जयवन्तोऽपि तादृशः पितैवास्ति। तेन स्वपुत्राणां पालनपोषणादिकम्, शिक्षणम्, स्वकर्त्तव्यानां परिपालनञ्च बहूत्तमरीत्या कृतः। यद्यपि अद्यतनीये युगे नियमसदाचारसंस्काराणां परिपालनं बहुदुस्साध्यकार्यमस्ति। तथापि निर्धनत्वे सत्यपि तेन सम्पूर्णसंस्कारैः स्वपुत्रपुत्रीणां भरणपोषणपालनादिकार्यं सम्यक्तया निर्वहणं कृतमस्ति। धन्योऽस्ति एतादृशी सन्ततिः येषामेतादृशः पिता अद्यतनीये युगे लब्धमस्ति। यद्यपि पितुरभिलाषा चित्तसि स्वपुत्राय विद्यते यत्स कस्मिञ्चित् श्रेष्ठस्थाने स्वप्रतिष्ठामर्जयेदिति। तथापि धन्योऽस्ति स मानवो यस्य एतादृशाः श्रेष्ठाः कन्यकापुत्राः सन्ति। ये स्वमातृपितृणां सम्माने अभिवृद्धिः कुर्वन्ति।

बुद्धिदेवी– 'सौभाग्यमेव स्त्रिणां धनमि'ति समाजे सुविश्रुतमस्ति। पतिव्रतपरायणा स्त्री सदैव स्वदृढ़सङ्कल्पाधारेण समाजे महनीयकीर्तिभाजा बभूव। स्वपत्युः आज्ञां शिरोधार्या कृत्वा स्वपतिव्रतायाः धर्मणः परिपालनं करोति स्म। सा स्वपतिना सह आत्मा तथा बुद्धिं इत्येताभ्यां सदृशमनुचरति स्म। यथा तत्त्वज्ञानाय आत्मना साकं बुद्धेः परमावश्यकता दरीदृश्यते तथैव जयवन्तस्य जीवने बुद्धिदेव्याः स्थानं विद्यते स्म। सा सम्पूर्णजीवने स्वपत्युः अर्धाङ्गिनीरूपेण अद्वितीयमित्ररूपेण च विद्यमानाऽऽसीत्। अत्यन्तनिर्धनतायाः कालेऽपि तया स्वपत्युः सहाय्यं कदापि नैवात्यजत्। सन्ततिसप्तकस्य प्राप्त्यनन्तरं प्रसन्नतायाः अनुभवं करोति स्म।

बुद्धिदेव्याः गर्भाज्जयवन्तस्य सन्ततिसप्तके क्रमात् देवकी, लक्ष्मी कमला च महाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीरूपेण प्रादुर्भूताः बभूवुः। तथा पुत्रेषु क्रमात् मोहनः, केशवरामः, हीरामणिः हेतरामश्च वेदचतुष्टयरूपेण प्रादूर्भूताः बभूवुः। निर्धनकुटुम्बे ते सर्वे धनधान्याभावे विविधशाकादिभिः स्वजीवनं निर्वाहः कुर्वन्ति स्म। महाकविमनोहरलालार्येणापि विषयेऽस्मिन् स्वकीये प्रस्तुतमहाकाव्ये इत्थं वर्णितमस्ति, तद्यथा–

मकायरोटीं क्वथितासहायां तक्रेण शाकेन च सन्धितेन।
भुक्त्वा सदैवातुषतां सपुत्रौ सन्तोषमेवाश्रयते सुखश्रः।।[७]

माता स्वसन्ततेः सर्वदुःखानि हरति। बुद्धिदेवी अपि स्वबालकानां सर्वदुःखान्यपहृत्य सुखानि

प्रददाति स्म। बुद्धिदेव्याः गर्भात् सन्ततिसप्तकमुत्पन्नं बभूव यस्य परिपालनं पूर्णश्रद्धया तया कृता। निष्कर्षरूपेण वयं वक्तुं शक्नुमो यत्सा पूर्णपतिव्रता, सती–साध्वी, प्रियवादिनी चासीत्।

केशवरामशर्मा– प्रस्तुतमहाकाव्यस्य नायकरूपेण यं स्वीकृतः, तन्नामैव 'केशवरामशर्मे'ति अस्ति। नायकोऽयं बुद्धिमान्, गुरुभक्तः, मातृपितृभक्तः, विदुषामग्रगण्यम्, राष्ट्रपतिना पुरस्कृतश्चास्ति। एते बाल्यकाले बहुसुन्दर आसीत्। विषयेऽस्मिन् प्रस्तुतमहाकाव्ये सूचनेत्थं सम्प्राप्यते।

तदमलकमलास्यस्तोकलब्धप्रसूतिधवलतमरदाली व्योम्नि तारावलीव।
व्यलसदथ मनांसि ह्लादयन्ती समेषामखिलमिह शिशूनां कौतुकामोदकारि।।[८]

ठियोगजनपदनिवासी आचार्यकेशवरामशर्मा न केवलं हिमाचलप्रदेशे अपितु भारतवर्षस्य विविधराज्येषु आयोजितासु सङ्गोष्ठीषु तथा च विदुषां मध्ये स्वस्थानमर्जयत्।

नायकस्यास्य पितुर्नाम 'जयवन्तः' तथा माता 'बुद्धिदेवी' आस्ताम्। यादृक्पिता आसीत् तस्मादपि उत्तमः, परिश्रमी, कर्त्तव्यनिष्ठः, पित्राज्ञापालकः, लोकपूजितः, उद्यमी, श्रेष्ठबुद्धियुक्तश्चास्ति। अयं बाल्यकालादेव बहूद्यमी आसीत् एतस्मात्कारणादेव तेन विभिन्नग्रन्थानां रचना कृता।

प्रस्तुतमहाकाव्येऽपि आचार्यमनोहरलालार्यद्वारा बालकस्यास्य विविधकौशलानां सविस्तरेण व्याख्या कृता। तत्र ते विषयेऽस्मिन् यथोक्तम्।

धावन् कदापि पथि जातविलम्ब आप्नोद् विद्यालयं व्यथितधीरभवन्न तावत्।
विद्यैकलक्ष्यमभजत् स दिवानिशं द्रागाचार्यवर्य्यहृदयान्यविशत् तदाऽर्य्यः।।[९]

अर्थात् यदा बालकः स्वविद्यालयं प्रति प्रातःकाले गच्छति स्म तदा मार्गे विलम्बभयाद् धावन् विद्यालयं प्रति गच्छति स्म। तदापि स कदापि स्वलक्ष्याद् नैव विचलति स्म। यतो हि 'विद्याप्राप्तिरिति एकमेव मम लक्ष्यमि'ति निश्चयेन स्वमनसि सन्धार्य निर्दिष्टकाले विद्यालये आयाति स्म। एतादृशैः विविधगुणैः तेन स्वगुरुजनानां मनसि स्वस्थानमर्जितमिति।

बालककेशवरामस्यातीवप्रतिभाशालीं बुद्धिं दृष्ट्वा प्रखरबुद्धिसम्पन्नाः सहपाठिनोऽपि तृष्णां परित्यज्य तेन साकं मित्रतां कर्तुमुद्यताः बभूवुः इति महाकाव्ये सूचितं यथा।

आलोक्य तीक्ष्णधिषणां सहपाठिनोऽस्य त्यक्तात्मधीप्रखरगर्वभरा अभूवन्।
मैत्रीञ्च तेऽकृषत तेन समं प्रगाढां तेजस्विनो हि वशगा निखिला भवन्ति।।[१०]

यद्यपि पित्रा स्वपुत्रं ज्योतिषशास्त्रे प्रखरबुद्धियुक्तः, काण्डप्रकाण्डः वेदपुराणेषु विशारदः इति मत्वा स्वपुत्रं ज्यौतिषशास्त्रविशारदरतिरामशर्म्मणः पार्श्वे विद्याऽध्ययनाय प्रेषितः। एकदा तत्र पठन् श्रीमद्दिवाकरदत्तशर्म्मणा प्रखरबुद्धिसम्पन्नबालको दृश्यत इति। तदा तैः आचार्यैः हिमाचलप्रदेशस्य राजधान्यां शिमलानगर्यां स्थिते राजकीयनेहरुसंस्कृतमहाविद्यालयेऽध्ययनार्थं प्रवेशाय स्वानुग्रहः प्रकटितः। तदा सर्वं विचार्य स बालककेशवरामः स्वगृहे आगत्य स्वपितुः पार्श्वे सविनम्रनिवेदनं गुर्वाज्ञानुसारं निवेदितम्। तदा पित्रोः आज्ञानन्तरमेव स्वाध्ययनार्थं शिमलानगरे आगच्छत्।

तत्र शास्त्रीकक्षायां प्रथमस्थानमर्जित्वा उपाधिं गृहीत्वा तथा पञ्जाबविश्वविद्यालयात्स्नातकोत्तरकक्षायां पुनः स्वर्णपदकसहितं प्रथमं स्थानमर्जितम्। तदनन्तरमेकस्मिन् डी.ए.वी. इत्याख्यया संस्थया प्रचालितविद्यालये संस्कृताध्यापकरूपेण स्वव्यवसायः प्रारब्धः। कालानन्तरं तेनोच्चप्रतिभया कूल्लुनगरे सर्वकारीयसंस्कृतमहाविद्यालये संस्कृतप्राध्यापकपदमलङ्कृतः। एषा सैव भूमिरस्ति यदाचार्यकेशवरामेण स्वजीवनस्य सर्वप्रथमग्रन्थस्य रचनाञ्चकार। प्रथमरचनायाः रूपेण 'भुवनेश्वरीचरितमि'ति स्वजीवनस्याद्यग्रन्थो रचितः। तदनन्तरमुन्नतिपथे गम्यमाने सति 'हिमाचलवैभवम्', 'अभिनवकविताञ्जलिः', 'शतकचतुष्टयम्', 'संस्कृतसरिता', 'श्रीशालीग्रामचरितम्', 'श्रीमद्दिवाकराचार्यचरितम्', 'भारतीय दर्शन : एक अनुशीलन', 'सोलनशतकम्', 'अभिषेकनाटकम्', 'शशिधरशतकम्', अन्यप्रकाशनाधीनारचना अपि सन्ति यासु बहुनि प्रकाशनाधीनाः सन्ति। येषां विषये सविस्तरेण प्रथमाध्याये मया विवेचितः। एतादृशं व्यक्तित्वमाधुनिकजगत्यस्मिन् नैव दृश्यते।

आचार्यकेशवरामशर्मा व्यवहारः सभ्यः, सरलः, सरसश्चास्ति। महाकाव्यस्य नायकः सर्वथा व्यवहारकुशलः, आदर्शः, नेतृत्वशक्तिसम्पन्नः, परिश्रमी, गुणवान्, धैर्यवान्, सत्यनिष्ठः, लोकप्रियः, सरलसरसप्रकृतिसम्पन्नश्च भवनीयः। एतादृशो नायकः सर्वथा समाजायादर्शवान् विद्यते।

दिवाकरदत्तशर्मा–श्रीमद्दिवाकराचार्यः प्रस्तुतमहाकाव्येऽस्मिन् गुरुत्वरूपेण चित्रितोऽस्ति। अस्माकं भारतीयसंस्कृतौ गुरूणां स्थानं सर्वथाग्रगण्यमस्ति। ते गुरवो ब्रह्माविष्णुमहेशतुल्या विद्यन्ते। गुरूणां विषये यद्यपि बहुषु ग्रन्थेषु, रचनासु, कृतिषु वा नानाप्रसङ्गाः सम्प्राप्यन्ते। तेषु उत्तररामचरितनामकग्रन्थे भवभूतिना गुरोः कृपायाः वर्णनमित्थं कृतमस्ति।

वितरति गुरुः प्राज्ञे विद्यां यथैव तथा जड़े
न तु खलु तयोर्ज्ञाने शक्तिं करोत्यपहन्ति वा।
भवति हि पुनर्भूयान् भेदः फलं प्रति तद्यथा
प्रभवति शुचिर्बिम्बग्राहे मणिर्न मृदादयः।।[११]

अर्थात् गुरुः सदैव स्वशिष्यान् समानरूपेण ज्ञानं प्रददाति। तेषु केचन् प्रज्ञावन्तो भवन्ति, तथैव केचन् जड़वन्तो विद्यन्ते। परन्तु गुरुः तेषु समानरूपेणैव भेदभावादीन् परित्यज्य ज्ञानस्य प्रसारः करोति। किन्तु शिष्याः स्वबुद्धिबलेन गुरुप्रदत्तज्ञानस्यार्थाः कुर्वन्ति। गुरोः विषये केनचित्कविनेत्थमुक्तमस्ति।

यथा खनन् खनित्रेण नरो वार्यधिगच्छति।
एवं गुरुगतां विद्यां शुश्रुषुरधिगच्छति।।

अर्थात् यथा खनित्रेण खननकार्यं कृत्वा जलप्राप्तिः निश्चितरूपेण लभते। तथैव गुरुसेवायां रताय मानवायापि ज्ञानस्य प्राप्तिर्भवतीति। एतादृशाः गुरवः सदैव मानवजीवनायातीवश्रेयस्करा भवन्ति। तादृशेषु गुरुषु दिवाकराचार्यस्यापि नामायाति।

स न केवलमेको गुरुरासीत् अपितु बालकानां स्वशिष्यानाञ्च मार्गदर्शकः, निर्देशकः,

जीवनरचयिता, नायकश्चासीत्। तेन स्वकीये ज्ञानाधारेणैव स्वशिष्याणां परिपालनं ज्ञानवर्द्धनकार्यञ्च पूर्णकर्त्तव्यतया कृतमस्ति। एतत्सर्वं विचार्य आचार्यकेशवेन तेषामुपरि एकस्य ग्रन्थस्य रचनाञ्चकार। तत्र ग्रन्थस्यास्य नाम 'श्रीमद्दिवाकराचार्यचरितमि'ति सुनिश्चितम्।

श्रीमद्दिवाकराचार्यचरितमि'ति रचनायां सप्तसर्गाः सन्ति। सप्तसर्गात्मके काव्येऽस्मिन् गुरुशिष्यपरम्परायाः, गुरुशिष्यपरम्परायाः, आदर्शगुणानां, तयोर्मध्ये प्रेमभावस्य सम्मानादीनाञ्च विषये सविस्तरेण व्याख्या विहिताऽस्ति। तत्र चास्माकं प्राचीनभारतीयसंस्कृतेः महत्तां प्रदर्शयति। पर्वतनिवासिनां गार्हस्थ्यजीवनस्य विषयेऽपि व्याख्या लभते।

महाकाव्येऽस्मिन् श्रीमद्दिवाकराचार्येण प्रदत्तस्य बहुविषयकयोगदानस्योल्लेखाः विद्यन्ते। श्रीमद्दिवाकराचार्येण कर्मकाण्डज्योतिषपुराणव्याख्यानसाहित्यनिर्माणराष्ट्रप्रेमभावसंस्कृत-प्रचारप्रसारेभ्यश्च सम्पूर्णस्वजीवनस्याहुतिं दत्त्वा संस्कृतजगतो निर्माणायानुपमं योगदानं प्रदत्तमस्तीति मया निष्कर्षरूपेण वर्णितमिति।

यद्यपि इतोऽपि बहुपात्राणां विषये प्रस्तुतमहाकाव्ये वर्णनं लभते, परञ्च अत्यधिकप्रसङ्गाभावे तेषां विषये किञ्चिद्रूपेण वर्णनं प्राप्यते। परञ्चात्र मया केवलमतीवमहत्त्वपूर्णपात्राणामेव विवेचनं कृतमस्ति।

एवं क्रमेण केशवाचार्यचरितस्य स्थूलस्वरूपं मया अस्मिन् शोधलेखे प्रतिपादितम्। अभिनवमहाकाव्येषु महाकाव्यमिदं महत्त्वपूर्णं वर्तते यस्यानुशीलनं समाजाय उपकारकं भविष्यति।

सन्दर्भाः

१. नो शोभते हि शुभकर्मणि तद्विलम्बः। मनोहरलालार्यः, केशवाचार्यचरितम्, १.१०
२. सन्तो हि देशधरणेः किल गौरवाय। मनोहरलालार्यः, केशवाचार्यचरितम्, १.१४
३. शाण्डिल्यसद्गोत्रविहायसीह साक्षाद्विवस्वानिव योगिनामा।
संहर्तुमज्ञानतमः प्रजज्ञे पुरा जराश्या अभिदीपनाय।। मनोहरलालार्यः, केशवाचार्यचरितम्, २.६
४. मनोहरलालार्यः, केशवाचार्यचरितम्, २.१६
५. मनोहरलालार्यः, केशवाचार्यचरितम्, २.१७
६. मनोहरलालार्यः, केशवाचार्यचरितम्, २.२५-२६
७. मनोहरलालार्यः, केशवाचार्यचरितम्, २.३६
८. मनोहरलालार्यः, केशवाचार्यचरितम्, ३.३३
९. मनोहरलालार्यः, केशवाचार्यचरितम्, ४.५
१०. मनोहरलालार्यः, केशवाचार्यचरितम्, ४.७
११. भवभूतिः, उत्तररामचरितम्, २.४

Shodh Navneet (International Peer-Reviewed Research Journal)
ISSN : 2321-6581, Vol. XXII, January - June 2024

श्रीमद्भगवद्गीता में ज्ञानयोग विमर्श

डॉ. बबलू पाल*

शोध सारांश– श्रीमद्भगवद्गीता न केवल एक धार्मिक ग्रंथ है अपितु मनुष्य का पथ–प्रदर्शक भी है। श्रीमद्भगवद्गीता समस्त मानव जाति के लिए अत्यन्त ही उपादेय है। शरीर की नश्वरता और आत्मा की अनश्वरता के प्रतिपादन के साथ–साथ मानव जीवन के समस्त आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक दुःखों की निवृत्ति का एक उत्तम मार्ग भी प्रशस्त करता है। यह मनुष्य को विषय भोगों में लिप्सा से विमुख करके अनेक मानवीय समस्याओं का समाधान भी प्रस्तुत करती है। श्रीमद्भगवद्गीता सम्पूर्ण जगत् का एकमात्र ऐसा ग्रन्थ है जिसके प्रत्येक श्लोक से प्रत्येक अवस्था वाले मनुष्यों को भिन्न–भिन्न क्षेत्रों में प्रेरणाएँ मिलती हैं। वर्तमान समय में भारत के अधिकांश युवा वर्ग मानसिक दबाव से ग्रस्त हैं जिसके कारण उनके कर्मों में कुशलता नहीं आ पाती है और वे स्वयं के जीवन को असफल मानकर आत्महत्या जैसी घटनाओं के कारण बनते हैं। इसी तरह अन्यान्य घटनाएँ अकर्म के परिणामस्वरूप घटती रहती हैं। श्रीमद्भगवद्गीता मनुष्य को अनासक्तभाव से कर्म करने की प्रेरणा देती है जो वास्तव में मनुष्य के वश में रहता है और यही उसका कर्तव्य कर्म भी है– '**कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन्।**[१]

शब्द कुञ्जिका : श्रीमद्भगवद्गीता, योग, ज्ञानयोग, सांख्ययोग, संन्यासयोग, बुद्धियोग, कर्मयोग, मोक्ष।

प्रस्तावना– श्रीमद्भगवद्गीता में योग को ही सभी फलों की सिद्धि का माध्यम बताया गया है। पुरुषार्थ की सिद्धि ही मानव जीवन का चरम लक्ष्य माना जाता है। इन पुरुषार्थों का चरम लक्ष्य मोक्ष है। मानव जीवन के उद्देश्यों के विषय में यदि गहन चिन्तन किया जाये तो वास्तव में ऐसा प्रतीत होता है कि परम आनन्द की प्राप्ति करना ही जीवन का उद्देश्य और मानव जीवन की सार्थकता है। श्रीमद्भगवद्गीता चरम पुरुषार्थ अर्थात् मोक्ष की साधिका है। इसमें चरम पुरुषार्थ अर्थात् मोक्ष की सिद्धि योग द्वारा ही सम्भव बताया गया है जिसकी प्राप्ति से समस्त दुःखों का निवारण हो जाता है और यह योग के द्वारा ही सम्भव है। श्रीमद्भगवद्गीता में कहा भी गया है– '**योगो भवति दुःखहा**' अर्थात् योग समस्त दुःखों का नाशक है। वैसे तो श्रीमद्भगवद्गीता के प्रत्येक अध्याय के अन्त में '**श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे**' के रूप में उल्लेख किया गया है जिससे यह विदित होता है कि यह ब्रह्मविद्या का बोध कराने वाली योगविद्या नामक ग्रन्थ है जिसका

* सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग, महात्मा गाँधी केन्द्रीय विश्वविद्यालय, मोतिहारी, बिहार

ज्ञान हो जाने से मनुष्य समस्त आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक दुःखों से मुक्त हो जाता है। किन्तु सार रूप में इस योगविद्या को चार भागों में विभक्त किया जा सकता है– ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग और अभ्यासयोग। इन्हीं योगों का आचरण करने से मनुष्य अपने समस्त सांसारिक बन्धनों से मुक्त होकर अपने जीवन के चरम लक्ष्य परम आनन्द अर्थात् मोक्ष को प्राप्त कर सकता है। श्रीमद्भगवद्गीता की महनीयता को दृष्टि में रखकर ही शंकराचार्य ने कहा भी है– **तदिदं गीताशास्त्रं समस्तवेदार्थसारसंग्रहभूतं दुर्विज्ञेयार्थम्।** श्रीमद्भगवद्गीता के विषय में लिखी गई अनेक प्रशस्तियाँ ही उसकी विशिष्टता की द्योतिका है– **गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः। सर्वशास्त्रमयी गीता। सर्वदेवमयी गीता। गीतागङ्गोदमकं पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते।** अतः स्पष्ट है कि श्रीमद्भगवद्गीता वास्तव में वह नौका है जिससे मनुष्य निश्चित रूप से जन्म–मरण के संसार रूपी समुद्र को पार कर परम आनन्द को प्राप्त कर सकता है। प्रस्तुत शोध पत्र में श्रीमद्भगवद्गीता में वर्णित उक्त योगों में से ज्ञानयोग का सूक्ष्म एवं तार्किक चिन्तन करते हुए वर्तमान मानव जीवन में उसकी उपादेयता को प्रकाशित करने का प्रयास किया गया है।

श्रीमद्भगवद्गीता में वर्णित ज्ञानयोग परम लक्ष्य की प्राप्ति का सर्वोत्तम मार्ग है। ज्ञानयोग की विशिष्टता श्रीमद्भगवद्गीता के अन्तःसाक्ष्यों से भी सिद्धि होती है। श्रीमद्भगवद्गीता के अनेक स्थलों पर ज्ञानयोग के वैशिष्ट्य का उल्लेख किया गया है। इस सन्दर्भ में श्रीमद्भगवद्गीता का अधोलिखित श्लोकांश प्रस्तुतव्य है– **न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।**[२] अर्थात् ज्ञान के सदृश अन्य कोई भी इस संसार में पवित्र वस्तु नहीं है। यह समस्त पापों को जलाकर भस्म कर देता है। ज्ञानयोग के इस माहात्म्य का वर्णन करते हुए कहा गया है–

यथैधांशि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा।।[३]

ऐसे ही श्रीमद्भगवद्गीता के अन्यान्य स्थलों पर भी ज्ञानयोग की महनीयता तथा मानव जीवन में उसकी उपादेयता को वर्णित किया गया है। श्रीमद्भगवद्गीता के समग्र अनुशीलन से ज्ञात होता है कि यह मानव प्रबन्धन का सर्वोत्तम ग्रन्थ है। इसके अनुशीलन से मनुष्य का सर्वतोमुखी विकास होता है। श्रीमद्भगवद्गीता में वर्णित ज्ञानयोग विमर्श हेतु प्रस्तुत शोध पत्र में कुछ महत्त्वपूर्ण व ज्ञेय बिन्दुओं की दृष्टि से विवेचन किया जा रहा है जिसमें श्रीमद्भगवद्गीता में योग के लक्षण, ज्ञानयोग का स्वरूप, ज्ञानयोग के अपर नाम या पर्याय, ज्ञान एवं कर्मयोग में भेद, कर्म–भक्ति तथा अभ्यासयोग में ज्ञानयोग का स्थान तथा ज्ञानयोग के फल आदि का वर्णन करते हुए मानव जीवन के परम लक्ष्य की प्राप्ति तथा उसके समग्र उन्नयन में ज्ञानयोग की महत्ता को उपस्थापित करते हुए उसे प्रकाशित किया गया है।

श्रीमद्भगवद्गीता में योग का लक्षण– श्रीमद्भगवद्गीता में योग का लक्षण करते हुए कहा गया है कि जो मनुष्य सिद्धि और असिद्धि में सम होकर अर्थात् दोनों को एक सम होकर कर्म करता

है, उसका सिद्धि और असिद्धि में समत्वभाव ही योग कहलाता है–

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते।।[४]

ऐसे समबुद्धि वाले ज्ञानी जन ही कर्मों से उत्पन्न होने वाले फल का परित्याग करके जन्म–मरण रूपी बन्धन से मुक्त होकर निर्विकार परम पद अर्थात् मोक्ष को प्राप्त होते हैं। इस सन्दर्भ में श्रीमद्भगवद्गीता का निम्नलिखित श्लोक द्रष्टव्य है–

कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः।
जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम्।।[५]

भगवान् श्रीकृष्ण विषादयुक्त हृदय वाले अर्जुन को योगविद्या का उपदेश देते हुए कहते हैं कि समत्वबुद्धि से युक्त होकर कर्म करना ही कर्मों में कुशलता है और यही कर्मों में कुशलता योग है–

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते।
तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम्।।[६]

अर्थात् समत्वबुद्धि वाला मनुष्य पुण्य और पाप दोनों को छोड़ देता है अर्थात् उनसे मुक्त हो जाता है। इसलिए तुम समत्वबुद्धि से युक्त हो जाओ; क्योंकि यह समत्वयोग ही कर्मों में कुशलता है अर्थात् कर्म बन्धन से निर्मुक्त होने का उत्तम उपाय है। श्रीमद्भगवद्गीता में योग स्वास्थ्य की दृष्टि से अत्यन्त ही व्यावहारिक रूप में परिभाषित करते हुए कहा गया है–

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा।।[७]

अर्थात् संतुलित रूप से आहार ग्रहण, ग्रहण किये गये आहार के पाचन के उपरान्त युक्त समय में परित्याग करने, कर्मों में संतुलित चेष्टा करने, संतुलित निद्रा व जागरण से समस्त दुःखों का नाश हो जाता है और यही योग है।

ज्ञानयोग का स्वरूप– श्रीमद्भगवद्गीता में ज्ञानयोग का अत्यन्त महत्त्व है; क्योंकि ज्ञान द्वारा ही मनुष्य जन्म–बन्धन से मुक्त होकर परम पद को प्राप्त करता है। इस सन्दर्भ में श्रीमद्भगवद्गीता के अनेक स्थलों पर विवेचन किया गया है। जिसमें से निम्नलिखित श्लोक द्रष्टव्य है–

एषा तेऽभिहिता साङ्ख्ये बुद्धिर्योगे त्विमां शृणु।
बुद्ध्या युक्तोयया पार्थ कर्मबन्धं प्रहास्यसि।।[८]

श्रीमद्भगवद्गीता में ज्ञानयोग का विवेचन करते हुए उसे बुद्धियोग, सांख्ययोग, संन्यासयोग, कर्मसंन्यासयोग आदि संज्ञाओं से अभिहित किया गया है। अतः स्पष्ट है कि यह ज्ञानयोग मनुष्य को उसके चरम लक्ष्य की प्राप्ति का सर्वोत्तम और प्रधान साधन है। श्रीमद्भगवद्गीता में ज्ञानयोग की महत्ता का भी प्रतिपादन किया गया है। जिनमें से ज्ञानयोग की महत्ता के सन्दर्भ में भगवद्गीता के ही

कुछ श्लोकों को उपस्थापित किया जा सकता है जो उसकी महत्ता का प्रतिपादन करने में समर्थ हैं– **सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते।**[९]

ज्ञाननिष्ठा के रूप में ज्ञानयोग– संसारिक बन्धनों में बंधे हुए समस्त पुरुषों के लिए मोक्षेच्छा का प्रादुर्भाव होते ही अचानक ज्ञानयोग कठिन है। इस प्रसंग में ज्ञानयोग का प्रतिपादन ज्ञाननिष्ठा के रूप में करते हुए भगवद्गीता में कहा गया है–

लोकेऽस्मिन्द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयाऽनघ।
ज्ञानयोगेन साङ्ख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम्।।[१०]
न कर्मणामनारम्भान्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते।
न च संन्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति।।[११]

अर्थात् वेदादि शास्त्रविहित कर्मों के अनारम्भ से कोई मनुष्य ज्ञाननिष्ठा को नहीं प्राप्त कर सकता है तथा आरभ्य शास्त्रविहित कर्मों के न करने से भी ज्ञाननिष्ठा को नहीं प्राप्त कर सकता।

ज्ञानयोगियों के लिए कर्मयोग– ज्ञानयोगियों के लिए भी कर्म आवश्यक है। इसके विषय में गीता में कर्मयोग के प्रसङ्ग में भी विस्तृत वर्णन उपलब्ध है। ज्ञानयोगियों के लिए कर्मयोग लोकसंग्रहार्थ आवश्यक है। जगत् के उद्धार के लिए भी यह आवश्यक है। भगवद्गीता की दृष्टि से इसकी अपरिहार्यता स्पष्ट की जा सकती है–

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः।।[१२]
किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः।
तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्।।[१३]

ज्ञानयोगियों के लिए भी आत्मा के अकर्तापन का बोध करते हुए कर्मयोग का साधन श्रेयष्कर है। ख्यातिलब्ध पुरुष के लिए भी विशेष रूप से कर्मयोग का आचरण कर्तव्य है। ज्ञानयोग में भी कर्मयोग की प्रधानता रहती है। सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि के लिए भी कर्मयोग का उपदेश किया गया है। भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं जगत् के कल्याण के लिए कर्मयोगी के रूप में दिखाई देते हैं–

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।[१४]
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।।[१५]

ज्ञानयोग का अपर नाम एवं उनका स्वरूप– श्रीमद्भगवद्गीता में कर्मबन्धनों से मुक्त कराने का जो साधन है उसे ज्ञानयोग कहा गया है। अतः ज्ञानयोग का स्वरूप भी अत्यन्त व्यापक माना जा सकता है। इसी कारण श्रीमद्भगवद्गीता में ज्ञानयोग का बुद्धियोग, सांख्ययोग, संन्यासयोग,

कर्मसंन्यासयोग, नैष्कर्म्यसिद्धयोग आदि नामों से उल्लेख प्राप्त होता है। श्रीमद्भगवद्गीता में ज्ञानयोग का उसके पर्यायों तथा उसके स्वरूपों सहित विवेचन अधोलिखित रूप में द्रष्टव्य है–

श्रीमद्भगवद्गीता में ज्ञानयोग– श्रीमद्भगवद्गीता में ज्ञानयोग का विवेचन अनेक पर्यायों के रूप में किया गया है। सभी कर्मों के ज्ञान में ही परिसमाप्त होने के सन्दर्भ में भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं–

श्रेयान् द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परन्तप।
कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते।।[१६]

श्रीमद्भगवद्गीता के उक्त श्लोक से यह ज्ञात होता है कि सभी कर्मों का आश्रय स्थल ज्ञान ही है; क्योंकि सभी कर्म ज्ञान में ही परिसमाप्त होते हैं। यहाँ ज्ञान से तात्पर्य ज्ञानयोग से ही है।

तत्त्व ज्ञान हेतु ज्ञानयोग अपरिहार्य है। तत्त्वदर्शी ज्ञानियों से उन्हें योग विधि से प्रणाम करके, निष्कपटभाव से प्रश्न करके तथा अच्छी तरह से उनकी सेवा करके ज्ञान को प्राप्त करने के सन्दर्भ में श्रीकृष्ण ने अर्जुन से जिस ज्ञान को प्राप्त करने की बात की वह भी ज्ञानयोग ही है–

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः।।[१७]

इसके अतिरिक्त भी श्रीमद्भगवद्गीता के अनेक स्थलों पर प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से ज्ञानयोग का वर्णन किया गया है जिनमें से कुछ उद्धरण रूप में निम्न प्रकार से उल्लेखनीय हैं– **सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं सन्तरिष्यसि।**[१८] ज्ञान रूपी अग्नि से समस्त पाप जलकर भस्म हो जाते हैं। इसका उपदेश देते हुए श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है– **ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा।**[१९] सम्पूर्ण जगत् में ज्ञान की पवित्रता तथा सर्वोत्तमता को बताते हुए श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है– **न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।**[२०] श्रीमद्भगवद्गीता के अन्य स्थल पर ज्ञानयोग का वर्णन करते हुए कहा गया है– **ज्ञानयज्ञेन चाऽप्यन्ते यजन्तो मामुपासते।**[२१] ज्ञान से ही परम तत्त्व का साक्षात्कार करके परम शान्ति को प्राप्त किया जा सकता है। इसका वर्णन करते हुए श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है– **ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति।**[२२] श्रीमद्भगवद्गीता के एक अन्य स्थल पर ज्ञानयोग का वर्णन प्राप्त होता है–

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितः।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम्।।[२३]

बुद्धियोग के रूप में ज्ञानयोग– श्रीमद्भगवद्गीता में ज्ञानयोग को ही बुद्धियोग के रूप में भी विवेचित किया गया है। भगवद्गीता के समग्र एवं सूक्ष्म अनुशीलन से ज्ञात होता है कि भगवद्गीता में वर्णित ज्ञानयोग को ही बुद्धियोग भी कहते हैं। इस सन्दर्भ में अनेक अन्तःसाक्ष्य भी उपलब्ध हैं। श्रीमद्भगवद्गीता के अनेक स्थलों पर बुद्धियोग द्वारा ही कर्मबन्धन का नाश एवं उससे परम पद की

प्राप्ति का वर्णन किया गया है, जिससे ज्ञात होता है कि ज्ञानयोग एवं बुद्धियोग दोनों अभिन्न हैं तथा वे एक-दूसरे के पर्याय ही हैं। भगवद्गीता के अनेक श्लोकों से ज्ञानयोग एवं बुद्धियोग की अभिन्नता सिद्ध हो जाती है जिनमें से कुछ निम्न प्रकार से द्रष्टव्य हैं-

एषा तेऽभिहिता साङ्ख्ये बुद्धिर्योगे त्विमां शृणु।
बुद्ध्या युक्तो यया पार्थ कर्मबन्धं प्रहास्यसि।।[२४]

बुद्धि योग से तात्पर्य समबुद्धि से है। यह समबुद्धि ही समत्त्व योग है। श्रीमद्भगवद्गीता के अनेक स्थलों पर बुद्धियोग का भी वर्णन प्राप्त होता है। भगवद्गीता में वर्णित बुद्धियोग के समग्र व सूक्ष्म अनुशीलन से यह ज्ञात होता है कि यह बुद्धियोग भगवद्गीता में वर्णित ज्ञानयोग का ही पर्याय है। भगवद्गीता में बुद्धियोग का वर्णन निम्नलिखित श्लोक में भी द्रष्टव्य है-

दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनञ्जय।
बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणाः फलहेतवः।।[२५]

श्रीमद्भगवद्गीता में योग को परिभाषित करते हुए बुद्धियोग का भी उल्लेख करते हुए कहा गया है कि बुद्धियोग से युक्त योगी या मनुष्य अपने सुकृत और दुष्कृत कर्म का त्याग करते हुए परम पद को प्राप्त करता है-

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते।
तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम्।।[२६]

यहाँ बुद्धियोग से अभिप्राय ज्ञानयोग से ही है; क्योंकि ज्ञान मनुष्य के परम पुरुषार्थ की सिद्धि में सर्वोत्तम है। अतः स्पष्ट है कि भगवद्गीता में वर्णित बुद्धियोग और ज्ञानयोग दोनों पर्याय हैं न कि भिन्न-भिन्न। बुद्धियोग की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं-

ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते।[२७]
बुद्धियोगमुपाश्रित्य मच्चित्तः सततं भव।[२८]

श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण के उक्त कथन से सुस्पष्टरूप से यह ज्ञात होता है कि बुद्धियोग भगवद्गीता का ज्ञानयोग ही है।

सांख्ययोग के रूप में ज्ञानयोग सङ्ख्या बुद्धिः बुद्ध्यावधारणीयम् आत्मतत्त्वं साङ्ख्यम्। ज्ञायते आत्मतत्त्वे तज्ज्ञानाय या बुद्धिः अभिधेया। अर्थात् बुद्धि का नाम साङ्ख्य है, इसलिए बुद्धि से धारण किये जाने वाले आत्मतत्त्व का नाम साङ्ख्य है। श्रीमद्भगवद्गीता के सांख्ययोग नामक द्वितीय अध्याय के ११वें श्लोक की टीका में आनन्दगिरि ने सांख्य का अर्थ बतलाते हुए लिखा है- **सम्यक्ख्यायते प्रकाश्यते सा वैदिकी सम्यग्बुद्धिः सङ्ख्या तया प्रकाश्यत्वेन सम्बन्धि प्रकृतं तत्त्वं साङ्ख्यमित्यर्थः।**[२९] श्रीमद्भगवद्गीता के द्वितीय अध्याय का नाम सांख्ययोग है। श्रीमद्भगवद्गीता के इस अध्याय के सूक्ष्म अनुशीलन से स्पष्ट होता है कि सांख्ययोग ही ज्ञानयोग है जो सभी योगों में श्रेष्ठ है तथा जिसके ज्ञान से ही

कर्मबन्धन का नाश होता है अर्थात् यह कर्मबन्धन से मुक्त कराने का सर्वोत्तम एवं प्रधान उपाय है। श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं-**ज्ञानयोगेन साङ्ख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम्।**[३०] श्रीमद्भगवद्गीता के उक्त श्लोकांश के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि सांख्ययोग और ज्ञानयोग में कोई तात्त्विक भेद नहीं है, अपितु ये एक-दूसरे के पर्याय ही हैं। भगवद्गीता में अन्यत्र भी कहा गया है-

साङ्ख्ययोगौपृथग्बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः।
एकमप्यास्थितः सम्यगुभयोर्विन्दते फलम्।।[३१]

श्रीमद्भगवद्गीता के उक्त श्लोक में प्रयुक्त 'सांख्यानाम्' से अभिप्राय सांख्ययोग के योगी से है। यहाँ पर सांख्ययोग का तात्पर्य ज्ञानयोग ही है। श्रीमद्भगवद्गीता के अन्य स्थल पर सांख्य और योग के फल लाभ या फल प्राप्ति के सन्दर्भ में कहा गया है-

यत्साङ्ख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते।
एकं साङ्ख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति।।[३२]

उक्त श्लोक के सूक्ष्म अध्ययन से ज्ञात होता है कि श्रीमद्भगवद्गीता में वर्णित सांख्ययोग एवं ज्ञानयोग पृथक् -पृथक् नहीं है प्रत्युत ये एक-दूसरे के पर्याय के रूप में ही प्रख्यात हैं। भगवद्गीता में वर्णित ज्ञानयोग का उल्लेख सांख्ययोग के नाम से भगवद्गीता के अन्य अनेक स्थलों पर भी दृष्टिगत होता है जिनमें से निम्न श्लोक द्रष्टव्य है-

ध्यानेनात्मनि पश्यन्ति केचिदात्मानमात्मना।
अन्ये साङ्ख्येन योगेन कर्मयोगेन चापरे।।[३३]

संन्यासयोग के रूप में ज्ञानयोग- श्रीमद्भगवद्गीता में ज्ञानयोग को संन्यास योग के नाम से भी अभिहित किया गया है। संन्यास का अर्थ श्रीमद्भगवद्गीता के निम्न श्लोक में द्रष्टव्य है- **काम्यानां कर्मणां न्यासं संन्यासं कवयोः विदुः।**[३४] अर्थात् काम्य कर्मों का परित्याग ही संन्यास है। ज्ञानयोग को ही संन्यासयोग के रूप में वर्णन किया गया है। इस सन्दर्भ में भगवद्गीता में अनेक उल्लेख प्राप्त हैं, जिनमें से कुछ निम्न प्रकार से उल्लेखनीय हैं-

सन्न्यासं कर्मणा कृष्ण पुनर्योगं च शंससि।
यच्छ्रेय एतयोरेकं तन्मे ब्रूहि सुनिश्चितम्।।[३५]

संन्यासयोग और कर्मयोग दोनों ही मोक्ष के साधन हैं। अर्थात् दोनों के अनुसरण से परम पद या परम शान्ति को योगीजन प्राप्त कर सकते हैं। इसके विवेचन के सन्दर्भ में संन्यासयोग के रूप में ज्ञानयोग का वर्णन किया गया है, जो श्रीमद्भगवद्गीता के अधोलिखित श्लोक से भी सुस्पष्ट होता है-

सन्न्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ।
तयोस्तु कर्मसन्न्यासात्कर्मयोगो विशिष्यते।।[३६]

सन्यास को ही योग बताते हुए श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं–

यं संन्यासमिति प्राहुर्योगं तं विद्धिपाण्डव।
न ह्यसंन्यस्तसङ्कल्पो योगी भवति कश्चन।।[३७]

श्रीकृष्ण के उक्त कथन से विदित होता है कि सन्यास का अभिप्राय संन्यासयोग से है; क्योंकि उन्होंने स्पष्ट रूप से संन्यास को ही योग कहा है। यही संन्यासयोग ज्ञानयोग के रूप में भी अभिहित है।

संन्यासयोग से युक्त आत्मा अर्थात् योगी पुरुष के विषय में अर्जुन से बताते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं–**संन्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यति।**[३८] भगवान् श्रीकृष्ण ने उक्त कथन में संन्यासयोग का स्पष्ट रूप से उल्लेख किया है। यह संन्यासयोग मनुष्य के समस्त पापों का नाश करने वाला होता है। इसी संन्यासयोग को ही श्रीमद्भगवद्गीता में ज्ञानयोग भी कहा गया है। श्रीमद्भगवद्गीता के अन्य स्थलों पर भी संन्यासयोग का वर्णन किया गया है जिसका तात्पर्य ज्ञानयोग से ही है–

असक्तबुद्धिः सर्वत्र जितात्मा विगतस्पृहः।
नैष्कर्म्यसिद्धिं परमां संन्यासेनाधिगच्छति।।[३९]

श्रीमद्भगवद्गीता के निम्न श्लोक से भी ज्ञात होता है कि संन्यास का तात्पर्य ज्ञानयोग से ही है–

न कर्मणामनारम्भान्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते।
न च संन्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति।।[४०]

कर्म-संन्यासयोग के रूप में ज्ञानयोग– श्रीमद्भगवद्गीता के अनेक स्थलों पर कर्म-संन्यासयोग का उल्लेख किया गया है। इन प्रसङ्गों के सूक्ष्म अनुशीलन से ज्ञात होता है कि भगवद्गीता में वर्णित कर्म-संन्यासयोग ज्ञानयोग का ही पर्याय है। भगवद्गीता के निम्नलिखित श्लोक से भी कर्म-संन्यासयोग के रूप में ज्ञानयोग का बोध होता है–

सन्न्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ।
तयोस्तु कर्मसंन्यासात्कर्मयोगो विशिष्यते।।[४१]

नैष्कर्म्यसिद्धि के रूप में ज्ञानयोग– श्रीमद्भगवद्गीता में ज्ञानयोग का विवेचन नैष्कर्म्यसिद्धि के रूप में भी दृष्टिगत होता है। नैष्कर्म्यसिद्धि रूप ज्ञानयोग का वर्णन करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं–

सिद्धिं प्राप्तो यथा ब्रह्म तथाऽऽप्नोति निबोध मे।
समासेनैव कौन्तेय निष्ठा ज्ञानस्य या परा।।[४२]

ज्ञानयोग एवं कर्मयोग– यद्यपि श्रीमद्भगवद्गीता के अनुशीलन से यह ज्ञात होता है कि ज्ञानयोग ही मनुष्य के कर्म-बन्धन के नाश का उपाय है, किन्तु भगवद्गीता में यह भी स्पष्ट रूप से

कहा गया है कि कर्मयोग के बिना संन्यासयोग अर्थात् ज्ञानयोग को प्राप्त करना कठिन है–

संन्यासस्तु महाबाहो दुःखमाप्तुमयोगतः।
योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म नचिरेणाधिगच्छति।।[४३]

ज्ञानयोग के फल– श्रीमद्भगवद्गीता का ज्ञानयोग मानव कल्याण के रूप में वर्णित है। जन्म–मरण के चक्र से सदा के लिए मुक्त कराना ही ज्ञानयोग का लक्ष्य है। कर्म लिप्तता से पृथक् मन और इन्द्रियों के निग्रहपूर्वक आत्मा को प्रकृति से सर्वथा विलक्षण, चेतन, निर्विकार, असङ्ग और समानाकार मानकर निरन्तर चिन्तन–मनन करते रहना ही ज्ञानयोग है। ज्ञानयोग या बुद्धियोग का फल निम्न रूप से विवेच्य है–

एषा तेऽभिहिता साङ्ख्ये बुद्धिर्योगे त्विमां शृणु।
बुद्ध्या युक्तो यया पार्थ कर्मबन्धं प्रहास्यसि।।[४४]
कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः।
जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्यनामयम्।।[४५]
यदा ते मोहकलिकं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति।
तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य।।[४६]
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति।[४७]
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं सन्तरिष्यसि।[४८]

निष्कर्ष– श्रीमद्भगवद्गीता में वर्णित ज्ञानयोग इसका प्रधान लक्ष्य है; क्योंकि ज्ञान ही जगत् में सर्वाधिक पवित्र है और यह मनुष्यों के मुक्ति का मार्ग भी है। इसी से मानव जीवन के परम पुरुषार्थ मोक्ष या अपवर्ग की प्राप्ति होती है। श्रीमद्भगवद्गीता में इस ज्ञान के अनेक पर्याय भी वर्णित हैं। प्रस्तुत शोध पत्र में योग लक्षण, योग के भेद, ज्ञानयोग के पर्याय और ज्ञानयोग से प्राप्त फल का वर्णन किया गया है। भगवद्गीता में वर्णित योग लक्षण और ज्ञानयोग के सूक्ष्म विवेचन से ज्ञात होता कि यह प्रत्येक मानव जाति के समग्र कल्याण का साधन है और वर्तमान मानव समाज के लिए अत्यन्त ही उपादेय भी है। अतः यह कहना अत्युक्ति नहीं है कि भगवद्गीता में वर्णित योग अथवा ज्ञानयोग के पालन से मनुष्य को अभ्युदय और निःश्रेयस् की प्राप्ति निश्चित रूप से हो सकती है।

सन्दर्भ-सूची

१. श्रीमद्भगवद्गीता, २.४७
२. श्रीमद्भगवद्गीता, ४.३८
३. श्रीमद्भगवद्गीता, ४.३६
४. श्रीमद्भगवद्गीता, २.४८
५. श्रीमद्भगवद्गीता, २.५१
६. श्रीमद्भगवद्गीता, २.५०
७. श्रीमद्भगवद्गीता, ६.१७
८. श्रीमद्भगवद्गीता, २.३९
९. श्रीमद्भगवद्गीता, ४.३३
१०. श्रीमद्भगवद्गीता, ३.३

११. श्रीमद्भगवद्गीता, ३.४
१२. श्रीमद्भगवद्गीता, ३.८
१३. श्रीमद्भगवद्गीता, ४.१६
१४. श्रीमद्भगवद्गीता, ४.७
१५. श्रीमद्भगवद्गीता, ४.८
१६. श्रीमद्भगवद्गीता, ४.३३
१७. श्रीमद्भगवद्गीता, ४.३४
१८. श्रीमद्भगवद्गीता, ४.३६
१९. श्रीमद्भगवद्गीता, ४.३७
२०. श्रीमद्भगवद्गीता, ४.३८
२१. श्रीमद्भगवद्गीता, ९.१५
२२. श्रीमद्भगवद्गीता, ४.३९
२३. श्रीमद्भगवद्गीता, १६.१
२४. श्रीमद्भगवद्गीता, २.३९
२५. श्रीमद्भगवद्गीता, २.४९
२६. श्रीमद्भगवद्गीता, २.५०
२७. श्रीमद्भगवद्गीता, १०.१०
२८. श्रीमद्भगवद्गीता, १८.५७
२९. श्रीमद्भगवद्गीता (श्रीमच्छाङ्करभाष्या)।
३०. श्रीमद्भगवद्गीता, ३.३
३१. श्रीमद्भगवद्गीता, ५.४
३२. श्रीमद्भगवद्गीता, ५.५
३३. श्रीमद्भगवद्गीता, १३.२४
३४. श्रीमद्भगवद्गीता, १८.२
३५. श्रीमद्भगवद्गीता, ५.१
३६. श्रीमद्भगवद्गीता, ५.२
३७. श्रीमद्भगवद्गीता, ६.२
३८. श्रीमद्भगवद्गीता, ९.२८
३९. श्रीमद्भगवद्गीता, १८.४९
४०. श्रीमद्भगवद्गीता, ३.४
४१. श्रीमद्भगवद्गीता, ५.२
४२. श्रीमद्भगवद्गीता, १८.५०
४३. श्रीमद्भगवद्गीता, ५.६
४४. श्रीमद्भगवद्गीता, २.३९
४५. श्रीमद्भगवद्गीता, २.५१
४६. श्रीमद्भगवद्गीता, २.५२
४७. श्रीमद्भगवद्गीता, ४.३९
४८. श्रीमद्भगवद्गीता, ४.३६

सन्दर्भ-ग्रन्थसूची

- श्रीमद्भगवद्गीता, श्रीमच्छाङ्करभाष्याऽऽनन्दगिरिव्याख्यायुता, अनु. आचार्य केशवलाल वि. शास्त्री, चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, २०१७
- श्रीमद्भगवद्गीता, (शांकरभाष्य हिन्दी अनुवाद सहित), गीताप्रेस, गोरखपुर, सं. २०७७
- श्रीमद्भगवद्गीता, (श्रीरामानुज-भाष्य हिन्दी अनुवाद सहित), गीताप्रेस, गोरखपुर, सं. २०७४
- श्रीमद्भगवद्गीता, सरस्वती, स्वामी प्रखरप्रज्ञानन्द, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, वि. सं.२०६६

Shodh Navneet (International Peer-Reviewed Research Journal)
ISSN : 2321-6581, Vol. XXII, January - June 2024

वर्तमान वैश्विक जगत् में वैदिक आर्थिक विमर्श की उपादेयता

डॉ. अनूप कुमार अत्रेय*, डॉ. आशुतोष पारीक**

शोधसारांश : व्यक्ति व राष्ट्र की समृद्धि एक सतत् प्रक्रिया है, परन्तु वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में हमारे चारों तरफ भयावह तरीके से मंडरा रहा पर्यावरणीय संकट, धन व सम्पत्ति की बढ़ती विषमताएँ, आर्थिक व राजनीतिक स्वार्थों के चलते उत्पन्न वैश्विक असन्तुलन तथा अस्थिरता, संसाधनों पर एकाधिकार स्थापित करने के कारण फैल रही वैश्विक अशान्ति जैसे अनेक प्रश्न समृद्धि व उत्थान की लागत के रूप में हमारे समक्ष खड़े हैं। इस शोधपत्र में प्राचीन भारतीय वैदिक चिन्तन को उल्लेखित संवृद्धि व उत्थान की अवधारणा के एक विकल्प के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जो विश्व-बन्धुत्व, विश्वकल्याण तथा विश्व अभ्युदय के लिए संसाधनों के संरक्षण एवं सदुपयोग का सन्देश देती है।

संकेताक्षर : आर्ष, वर्णाश्रमधर्म, उद्यम, ऐश्वर्य, ऋत, विकसित, विकासशील, निर्धन, पर कैपिटा इनकम।

आ ब्राह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामा राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतीव्याधी महारथो जायतां दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायतां निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम्।।[१]

यजुर्वेद की उक्त राष्ट्रीय प्रार्थना में राष्ट्र के समग्र विकास का स्वरूप प्रस्तुत किया गया है। राष्ट्र के सन्दर्भ में बन्धुत्व एवं समग्र कल्याण पर पर्याप्त बल दिया गया है। अतः यजुर्वेद में कहा गया है कि प्रत्येक व्यक्ति को मित्रवत् जानें, देखें और तदनुरूप व्यवहार करें –

दृते दृंह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्।
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे। मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे।।[२]

अथर्ववेद में भी कहा गया है –

अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं पुरो यः।
सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु।।[३]

* सहायक आचार्य, अर्थशास्त्र विभाग, सम्राट पृथ्वीराज चौहान राजकीय महाविद्यालय, अजमेर, राजस्थान
** सह-आचार्य, संस्कृत विभाग, सम्राट पृथ्वीराज चौहान राजकीय महाविद्यालय, अजमेर, राजस्थान

प्रत्येक मनुष्य अपने जीवन में सुख–शान्ति और आनन्द को प्राप्त करना चाहता है। अपने जीवन–काल में यश, वैभव और प्रतिष्ठा को प्राप्त करने का लक्ष्य लेकर साधनों का उपयोग कर समृद्धि के शिखर तक पहुँचना चाहता है और यह समुचित भी है। वेद भी कहता है– **'वयं स्याम पतयो रयीणाम्।'**[४]

व्यक्ति की समृद्धि व्यष्टि है। व्यष्टि की समृद्धि होती है तो व्यष्टि के योग से समष्टि अर्थात् राष्ट्र की भी समृद्धि होती है। अतः वर्तमान समय के सापेक्ष में कहा जाए तो व्यक्ति द्वारा अधिक से अधिक उत्पादन अथवा आय का सर्जन उसकी प्रगति को सुनिश्चित करता है तथा राष्ट्रीय उत्पादन अथवा राष्ट्रीय आय का सतत् रूप से बढ़ना उस राष्ट्र का प्रगति को सुनिश्चित करता है। इसी कारण आज सम्पूर्ण विश्व में सकल घरेलू उत्पाद (जी.डी.पी.) की वृद्धि दर चर्चा का विषय रहती है। विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय संगठन, निजी संस्थान तथा राष्ट्रों के मौद्रिक प्राधिकरण इसकी गणना व मूल्यांकन का कार्य नियमित रूप से करते हैं। जी.डी.पी. वृद्धि दर का बढ़ना या घटना तथा इसका पूर्वानुमान सभी अर्थव्यवस्थाओं के लिए एक महत्त्वपूर्ण विषयवस्तु बन गया है। यहाँ तक कि सभी सरकारें इस वृद्धि दर को सतत् रूप से न केवल बनाए रखने अपितु इस दर में अनवरत वृद्धि हेतु अपनी सभी नीतियों का निर्धारण तथा क्रियान्वयन उसी अनुरूप कर रही है। व्यष्टि रूप में व्यक्ति भी अपनी आय व सम्पत्ति में अधिक से अधिक अर्जन और संवर्धन में लगा हुआ है।

तीव्र गति से हो रहे तकनीकी परिवर्तनों तथा संसाधनों के नए स्त्रोतों के प्रयोग से विश्व के सभी देश समृद्धि के नए प्रतिमान स्थापित करने की दिशा में आगे बढ़ना चाहते हैं। वस्तुओं व सेवाओं की संरचना में हो रहे परिवर्तन, उत्पादन व उपभोग की गति व दिशा को तेज़ी से बदल रहे हैं। प्रश्न यह नहीं है कि साधनों के प्रयोग से व्यक्ति तथा राष्ट्र वैभव को प्राप्त नहीं करने चाहिए, अपितु प्रश्न यह है कि समृद्धि कल्याणकारी है अथवा नहीं? समृद्धि स्थायी है अथवा नही? समृद्धि सुख–शान्ति व आनन्दकारी है अथवा नहीं? व्यक्ति व राष्ट्र की समृद्धि एक सतत् प्रक्रिया है, परन्तु वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में हमारे चारों तरफ़ भयावह तरीके से मंडरा रहा पर्यावरणीय संकट, धन व सम्पत्ति की बढ़ती विषमताएँ, आर्थिक व राजनीतिक स्वार्थों के चलते उत्पन्न वैश्विक असन्तुलन तथा अस्थिरता, संसाधनों पर एकाधिकार स्थापित करने के कारण फैल रही वैश्विक अशान्ति जैसे अनेक प्रश्न समृद्धि व उत्थान की लागत के रूप में हमारे समक्ष खड़े हैं।

सनातन राष्ट्रीय चिन्तन वेदमूलक है। समग्र राष्ट्रीय चिन्तन ब्रह्मज्ञान में समाहित है। अतः महर्षि दयानन्द सरस्वती कहते हैं– **''वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना–पढ़ाना, सुनना–सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।'**[५] वेद ब्रह्म है, ब्रह्म बल है, बल राष्ट्र है, जिसकी प्रधान रूप से चार शक्तियाँ हैं –

१. ज्ञानशक्ति २. रक्षकशक्ति ३. पोषकशक्ति ४. धारकशक्ति।

ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में कहा गया है –

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
उरु तदस्य यद् वैश्यः पद्भ्यां शूद्रोऽजायत।।[६]

अर्थात् उस विराट् पुरुष में ही चारों वर्णों की सम्प्राप्ति हुई है, जो राष्ट्र के अङ्ग थे। यह मन्त्र शरीर, समाज, राष्ट्र और भूमण्डल तथा विश्व मण्डल के राष्ट्र स्वरूप में समान रूप से घटित है। प्राचीन भारतीय वैदिक चिन्तन को उल्लेखित संवृद्धि व उत्थान की अवधारणा के एक विकल्प के रूप में देखा जाना चाहिए जो विश्व-बन्धुत्व, विश्वकल्याण तथा विश्व अभ्युदय के लिए संसाधनों के संरक्षण एवं सदुपयोग का सन्देश देती है। यजुर्वेद में समृद्धि के सन्मार्ग को बताते हुए कहा गया है कि कुमार्ग, अन्याय तथा अनुचित साधनों से प्राप्त समृद्धि स्थायी नहीं होती है।[७]

यजुर्वेद में सन्मार्ग अथवा सुपथ को ही समृद्धि का सत्यमार्ग बताया गया है। कुमार्ग, अन्याय तथा अनुचित साधनों से प्राप्त समृद्धि स्थायी नहीं होती है। यजुर्वेद में इसकी तुलना आकाशीय विद्युत् से की गई है जो केवल क्षणिक शोभा देती है। ऐसी समृद्धि को रेत की दीवार के समान माना जाता है।[८] ऐसी समृद्धि को प्रगति, वैभव, सुख-शान्ति या आनन्द का द्वार नहीं कहा जा सकता है। वहीं दूसरी ओर उत्तम मार्ग अथवा सन्मार्ग से प्रगति की जाए, वैभव को प्राप्त किया जाए तथा विकास किया जाए तो वह स्थायी होती है तथा सुख-शान्ति को स्थापित कर कल्याण के स्तर को बढ़ाती है। अतः कहा गया है -

''विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव। यद् भद्रं तन्न आ सुव।।''[९]

वर्तमान युगीन समृद्धि की विसंगति- वर्ल्ड इनेक्वेलिटी रिपोर्ट २०२२[१०] के अनुसार वर्तमान में आय की विषमताएँ अथवा असमानताएँ उतनी ही हैं जितनी कि २०वीं शताब्दी के प्रारम्भ में थीं। यदि वैश्विक सकल घरेलू उत्पाद में निरन्तर वृद्धि आय व सम्पत्ति की विषमताओं को कम नहीं कर पा रही है तो ऐसी वृद्धि कल्याणकारी नहीं मानी जा सकती है। इस रिपोर्ट के अनुसार विश्व की जनसंख्या के १ प्रतिशत लोगों के पास विश्व की कुल सम्पत्ति का लगभग ३८ प्रतिशत हिस्सा है तथा निर्धन एवं गरीब जनसंख्या के ५० प्रतिशत लोगों के पास विश्व की कुल सम्पत्ति का केवल २ प्रतिशत हिस्सा ही है। विश्व की १० प्रतिशत धनी जनसंख्या के पास कुल वैश्विक आय का लगभग ५२ प्रतिशत भाग है जबकि निर्धन जनसंख्या का ५० प्रतिशत भाग वैश्विक आय का मात्र ८.५ प्रतिशत ही अर्जित करता है। धनी १० प्रतिशत व्यक्तियों में से एक व्यक्ति औसतन १२२,१०० डॉलर अर्जित करता है जबकि निर्धन जनसंख्या के ५० प्रतिशत भाग में एक व्यक्ति औसतन मात्र ३,९२० डॉलर ही अर्जित कर पाता है। इन आँकड़ों से आय की वैश्विक असमानताओं की भयावह स्थिति का मूल्यांकन किया जा सकता है।

यदि वैश्विक सम्पत्ति अथवा धन की विषमताओं को देखा जाए तो स्थिति अत्यन्त विकट है। विश्व के २० प्रतिशत धनी व्यक्तियों के पास कुल वैश्विक सम्पत्ति का ७६ प्रतिशत भाग है जबकि निर्धन जनसंख्या के ५० प्रतिशत भाग के पास मात्र २ प्रतिशत वैश्विक सम्पत्ति ही है। औसतन

विश्व के १० प्रतिशत धनी व्यक्तियों में प्रति वयस्क ७७१,३०० डॉलर की सम्पत्ति का स्वामित्व है जबकि निर्धन जनसंख्या के ५० प्रतिशत भाग में प्रति व्यक्ति ४,१०० डॉलर की सम्पत्ति का स्वामित्व है।

आय व सम्पत्ति की विषमताएँ विश्व द्वारा अपनाए गए समृद्धि, प्रगति व विकास के अपनाए गए मार्ग पर एक प्रश्नचिह्न खड़ा कर रही है। निश्चय ही यह सात्त्विकता का मार्ग नहीं है। यह वैश्विक शान्ति तथा कल्याण का मार्ग नहीं है। यह समृद्धि का न्यायोचित मार्ग भी नहीं है। इन असमानताओं अथवा विषमताओं ने समृद्धि तथा विकास हेतु काम में लिए गए साधनों के अनुकूलतम अथवा इष्टतम प्रयोग पर भी प्रश्नचिह्न खड़ा कर दिया है।

आदर्श राष्ट्र का वैदिक चिन्तन- वैदिक साहित्य में एक आदर्श राष्ट्र (राज्य) की परिकल्पना की गई है। अथर्ववेद के भूमि सूक्त के मन्त्रों से यह पता लगता है कि आदर्श राज्य के भूभाग में क्या-क्या व्यवस्थाएँ होनी चाहिए।[११] वर्तमान विश्व में विकसित राष्ट्र की संकल्पना क्या वैदिक आदर्श राष्ट्र की परिकल्पना के समान ही है अथवा नहीं, इस पर भी चर्चा करना आवश्यक है। अथर्ववेद के अनुसार एक आदर्श राष्ट्र में निम्न प्रमुख विशेषताओं का होना आवश्यक है -

१. धन-धान्य की समृद्धि - अथर्ववेद के एक मन्त्र में राजा का यह कर्तव्य बताया गया है कि वह राष्ट्र को धन-धान्य से समृद्ध करे। जनता में अन्नादि की किसी प्रकार की कमी न हो। राज्य आर्थिक दृष्टि से उन्नत हो।

२. आधारभूत संरचना - राजा का यह कर्तव्य है कि वह पेयजल, कृषि की सिंचाई आदि की व्यवस्था करे। यातायात की सुविधाएँ उपलब्ध करवाए। राजा कृषि की उन्नति से अन्न-समृद्धि लाकर देश को आत्मनिर्भर बनाए।

३. पर्यावरण की सुरक्षा - यजुर्वेद में पृथ्वी को माता के तुल्य मानकर उसकी सुरक्षा अर्थात् प्रदूषण से मुक्ति की बात कही गई है। प्रकृति की सुरक्षा यदि हमारे द्वारा होगी तो प्रकृति भी हमें सुरक्षा प्रदान करेगी। प्रकृति की सुरक्षा न होने पर वह हमें दण्ड देगी। अथर्ववेद में भूमि के मर्मस्थलों को क्षति न पहुँचाने की बात कही गई है। भूमि को जितना खोदें, उतना फिर से भर दें। ऐसा नहीं करने पर मर्मस्थल को हानि पहुँचने से दण्ड भुगतना होगा। वैदिक ऋषियों ने पर्यावरण प्रदूषण रोकने के लिए जलवायु और वृक्ष-वनस्पतियों को प्रमुख साधन बताया है -

त्रीणि छन्दांसि कवयो वि येतिरे, पुरुरूपं दर्शतं विश्वचक्षणम्।
आपो वाता ओषधयः, तान्येकस्मिन् भुवन आर्पितानि।।[१२]

४. जनकल्याण एवं विश्वकल्याण - राष्ट्र का प्रत्येक व्यक्ति सुखी तथा सम्पन्न बने। राजा जनता की सुख-समृद्धि के लिए सदैव प्रयत्नशील रहे। साथ ही संसार की सुख-समृद्धि के लिए भी प्रयत्नशील रहे। वैश्विक हित की चिन्ता करते हुए विश्व की प्रगति में हम सहायक हों।

अतः ऋग्वेद में कहा गया है –

आ नो भद्रा क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो अपरीतास उद्भिदः।
देवा नो यथा सदमिद् वृधे असन्, अप्रायुवो रक्षितारो दिवे-दिवे।।[१३]

वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में विकसित राष्ट्र एवं आदर्श राष्ट्र की संकल्पना का कोई सर्वमान्य दृष्टिकोण नहीं है। विकास की बहुआयामी संकल्पना में विभेदीकरण के कारण विकसित राष्ट्र का कोई सर्वमान्य मापदण्ड देना अत्यन्त कठिन है। विश्व बैंक के विभिन्न देशों के वर्गीकरण प्रणाली के अनुसार विभिन्न देशों की प्रति व्यक्ति सकल राष्ट्रीय आय (ग्रॉस नेशनल इनकम पर केपिटा) के आधार पर उनका वर्गीकरण निम्न आय, निम्न मध्यम आय, उच्च मध्यम आय तथा उच्च आय वाली अर्थव्यवस्थाओं में किया जाता है।[१४] इस मापदण्ड के अनुसार १२,४७६ डॉलर अथवा इससे अधिक प्रति व्यक्ति सकल राष्ट्रीय आय वाले देशों को उच्च आय वाली अर्थव्यवस्थाओं की श्रेणी में रखा गया है। वहीं ४,०३६ से १२,४७५ डॉलर तक को उच्च मध्यम आय, १०२६ से ४०३५ डॉलर को निम्न मध्यम आय तथा १०२५ डॉलर अथवा इससे कम को निम्न आय वाली श्रेणी में रखा गया है। निम्न तथा मध्यम आय वाली अर्थव्यवस्थाओं को सामान्यतः विकासशील राष्ट्र तथा उच्च मध्यम आय तथा उच्च आय वाली अर्थव्यवस्थाओं को विकसित राष्ट्र कहा जाता है। संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (यू.एन.डी.पी.) की वर्गीकरण व्यवस्था में मानव विकास सूचकांक (एच्.डी.आई.) के आधार पर विश्व के देशों का वर्गीकरण किया जाता है।[१५] उच्च मानव विकास सूचकांक की श्रेणी के देशों को सामान्यतः विकसित राष्ट्र माना जाता है। अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (आई.एम.एफ.) के अनुसार प्रति व्यक्ति आय का स्तर, निर्यात विभेदीकरण तथा वैश्विक वित्तीय व्यवस्था में समाकलन/जुड़ाव (इंटीग्रेशन) की श्रेणी के आधार पर राष्ट्रों का वर्गीकरण आधुनिक उभरती (इमर्जिंग) तथा विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में किया जाता है।

विकसित राष्ट्र के उपर्युक्त मानदण्डों में अनेक विभिन्नताएँ हैं। वैश्विक विषमताएँ, पर्यावरण संकट, निर्धनता, बेरोजगारी, अनियन्त्रित वैश्विक उतार-चढ़ाव, संसाधनों पर एकाधिकार स्थापित करने की होड़, बढ़ते आर्थिक-राजनीतिक विवाद आदि ने विकसित राष्ट्र की संकल्पना पर प्रश्न-चिह्न खड़े कर दिए हैं। विकसित राष्ट्र के आधार हेतु प्रचलित सभी संकल्पनाएँ विश्वहितकारी नहीं हैं, कल्याणकारी नहीं हैं, वास्तविक उन्नतिकारी नहीं हैं, धारणीय नहीं हैं, सात्त्विक नहीं हैं, पवित्र नहीं हैं, सद्भावना पर आधारित नहीं हैं, सुखकारी नहीं हैं।

विश्व के समग्र सुख-शान्ति की संकल्पना पर आधारित विकसित राष्ट्र की भारतीय संकल्पना ही सर्वोत्तम है, जिसकी नींव वेदों का दर्शन है। अतः विश्वकल्याण का पुरुषार्थ ही एकमात्र साधन है। जो निरन्तर पुरुषार्थी होते हैं, उनको ही सुख-समृद्धि प्राप्त होती है। अतः यजुर्वेद कहता है – **''कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।।''**[१६] विश्वकल्याण के लिए आवश्यक है कि चाहे मनुष्य हो या पशु-पक्षी, सभी जन्तु हृष्ट-पुष्ट हो, सदा नीरोगी रहे। अतः यजुर्वेद में कहा गया है –

''**योगक्षेमो नः कल्पताम्।।**''[१७] विश्वकल्याण ही राष्ट्र और समाज के लिए पहली आवश्यकता है। अन्नादि की समस्या का समाधान जीवनशैली में निहित है। हम निरन्तर उन्नति की बात सोचें, प्रगतिशील हों, क्योंकि यजुर्वेद में कहा गया है कि स्वावलम्बी व्यक्ति ही भूमि से उठकर द्युलोक में जाते हैं – ''**स्वर्यन्तो नापेक्षन्त आ द्यां रोहन्ति रोदसी।।**''[१८] विश्वकल्याण के लिए मनुष्य का यशस्वी, मेधावी तथा विद्वान् होना अनिवार्य है, अतः यजुर्वेद में आकूति (इच्छा, संकल्प), मेधा, मनोबल और सरस्वती (ज्ञान और विद्या) के लिए प्रार्थना की गई है – ''**आकूत्यै, मेधायै, मनसे दीक्षायै, तपसे सरस्वत्यै....।।**''[१९] एक और मन्त्र में कहा गया है कि हम ज्ञान की ज्योति से युक्त हों तथा प्रतिष्ठा को प्राप्त करें – ''**अस्यै प्रतिष्ठायै अगन्म स्वः, सं ज्योतिषा भूम।।**''[२०]

ऋग्वेद में कहा गया है – ''**केवलाघो भवति केवलादी।**''[२१] अर्थात् अकेला खाने वाला पाप का भागी होता है। सबको अन्न व भोजन मिले, भोजन, अन्न एवं जलादि का न मिलना शासन की त्रुटि है। भोजन के खान-पान की व्यवस्था शासन का कर्तव्य है। साथ ही किसी देश-विशेष या व्यक्ति विशेष को त्यागपूर्वक ही संसाधनों का उपभोग करना चाहिए। अतः यजुर्वेद में कहा गया है –

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद् धनम्।।[२२]

अतः उन्होंने सबके कर्म, गति, वाणी, मन, चित्त और संकल्प के एक होने की कामना की। ऋग्वेद के दसवें मण्डल का अन्तिम संज्ञान सूक्त इन्हीं भावों को प्रदर्शित करता है।

समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समाने वो हविषा जुहोमि।।[२३]

अतः वैदिक राष्ट्र की व्यापक अवधारणा ही हमारे जीवन को सर्वाङ्गपूर्ण बना सकेगी। विश्वशान्ति और विश्वकल्याण के लिए भूमिधारक छह तत्त्वों का पालन, संरक्षण और सदुपयोग अत्यावश्यक है, जिनका निर्धारण अथर्ववेद में किया गया है – ''**सत्यं बृहद् ऋतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति।।**[२४] महान् सत्य, ऋत अर्थात् विश्वव्यापी प्राकृतिक नियम, दीक्षा अर्थात् समर्पण, ब्रह्म अर्थात् ज्ञान और यज्ञ अर्थात् सर्वोत्तम उपाय। आर्षमत स्पष्ट रूप से निर्दिष्ट करता है कि मात्र स्वयं के हित की कामना न करते हुए सम्पूर्ण विश्व के कल्याण की कामना ही वैदिक राष्ट्र की वास्तविक अभिव्यक्ति है। जब वेद कहता है '**कृण्वन्तो विश्वमार्यम्**'[२५] तो इसका तात्पर्य किसी वर्गविशेष से नहीं अपितु समस्त विश्व के कल्याण से है।

सन्दर्भ

१. यजुर्वेद, २२.२२
२. यजुर्वेद, ३६.१८
३. अथर्ववेद, १९.१५.६

४. यजुर्वेद, १९.४४
५. आर्यसमाज का तृतीय नियम।
६. ऋग्वेद, १०.९०.१
७. ऋतस्य पथा प्रेत, वि स्वः पश्य। यजुर्वेद, ७.४५
८. अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्। वही, ७.४३
९. वही, ३०.३
१०. https://wir2022.wid.world/
११. अथर्ववेद, १२.१
१२. वही, १८.१.१७
१३. ऋग्वेद, १.८९.१, यजुर्वेद, २५.१४
१४. https://databank.worldbank.org/metadataglossary/world-development-indicators/series/NY.GNP.PCAP.KD
१५. https://hdr.undp.org/content/human-development-report-2023-24
१६. यजुर्वेद, ४०.२
१७. वही, २२.२२
१८. वही, १७.३८
१९. वही, ४.७
२०. वही, २.२५
२१. ऋग्वेद, १०.११७.६
२२. यजुर्वेद, ४०.१
२३. ऋग्वेद, १०.१९१.३
२४. अथर्ववेद, १२.१.१
२५. ऋग्वेद, ९.६३.५

सहायक-ग्रन्थसूची

- ऋग्वेद भाष्य, स्वामी दयानन्द सरस्वती, वैदिक यन्त्रालय, अजमेर।
- यजुर्वेद भाषा भाष्य, स्वामी दयानन्द सरस्वती, दयानन्द संस्थान, दिल्ली।
- सामवेद भाष्य, ब्रह्ममुनि परिव्राजक विद्यामार्तण्ड, वैदिक यन्त्रालय, अजमेर।
- अथर्ववेद भाष्य, प्रो. विश्वनाथ विद्यालंकार, वैदिक यन्त्रालय, अजमेर।
- मनुस्मृति, महर्षि मनु, सं. प्रो. सुरेन्द्र कुमार, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली।
- ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, स्वामी दयानन्द सरस्वती, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली।
- सत्यार्थप्रकाश, स्वामी दयानन्द सरस्वती, वैदिक यन्त्रालय, अजमेर।

Shodh Navneet (International Peer-Reviewed Research Journal)
ISSN : 2321-6581, Vol. XXII, January - June 2024

श्रीमद्भगवद्गीतायां मानसिकस्वास्थ्यप्रबन्धनम्

गोपालकृष्णमिश्रः *

शोधसारः– इदं जगत् विभिन्नाभिः विविधताभिः प्राणिभिश्च युक्तोऽस्ति। समस्तान् प्राणिनः प्रकृतिना सह समन्वयं स्थापयितुं शरीरे स्वास्थ्यस्य महती आवश्यकता भवति। वर्तमानकाले यदा मानवाः अभिद्रवमाने जीवने समयाभावात् व्यस्ताः भवन्ति तदा मानवानां जीवनचर्यायामपि परिवर्तनं दृश्यते। जनेषु विद्यमानेषु वर्धमानानां प्रतिस्पर्धाणाम्, असमाप्तप्रायाणां लालसानाम्, कार्योन्नत्यै कुचेष्टानाम्, अनियमितायाश्च दिनचर्यायाः कारणात् स्वास्थ्ये कुप्रभावो भवति। न केवलम् एतावदेवापितु जनानां व्यक्तित्त्वस्वभावयोः असामञ्जस्येनापि शारीरमानसयोः स्वास्थ्ये परिवर्तनं परिदृश्यते। अस्मात् कारणादेव वर्तमानेऽस्मिन् युगे चिन्ताऽवसाद–तनावानिद्रा–मधुमेह–हृदयाघातोच्चरक्तचापादिभिः रोगैः रोगग्रस्तानां रोगिणां सङ्ख्या सतत्–रूपेण उत्तरोत्तरा वर्धमाना भवति। शारीरिकं मानसिकञ्च स्वास्थ्यम् असम्यक् भवति इत्यस्यैकं कारणम् इतोपि वर्तते यत् जनानां यन्त्रोपरि निर्भरता अधिका अभवत्, तस्मात् शारीरिकं मानसिकञ्च श्रमं न्यूनं कुर्वन्ति। नाम अकर्मण्यता अलसश्च जनेषु सम्यक् स्थापितमस्ति। उक्तमप्यस्ति – **आलस्यं हि मनुष्याणां शरीरस्थो महान् रिपुः।**[१]

अत एव स्वास्थ्यस्योपरि ध्यानं दातव्यमस्ति। शारीरिकी रक्षा तु सर्वप्रथममेव करणीया तदैव मानसिकः, शारिरिकः, आध्यात्मिकः, बौद्धिकः, सामाजिकश्च विकासः सम्भवति।

सम्प्रतिकाले शारीरिकस्वास्थ्यस्य अपेक्षया मानसिकस्वास्थ्यैः पीडितानां रोगिणां सङ्ख्या अधिका अस्ति। तर्हि एतेषां रोगाणां स्थायी उपचारस्तु योगादीनां माध्यमेन तथा च नियमितया दिनचर्ययैव सम्भवति। श्रीमद्भगवद्गीतायाः प्रवाचनं तु मानसिकव्याधिना एवाभवत् –

कृपया परयाविष्टो विषीदन्निदमब्रवीत्।
दृष्ट्वेमं स्वजनं कृष्ण युयुत्सुं समुपस्थितम्।।[२]

अर्थात् अर्जुनः यदा युद्धभूमौ कुरुक्षेत्रे स्वपरिजनं दृष्टवान् तदा विषादमग्नः सन् अकथत् यत् कथमहमेतान् बान्धवान् हनिष्यामि इति। अस्याः विषादावस्थायाः शमनार्थमेव भगवता श्रीकृष्णेन श्रीमद्भगवद्गीतायाः गायनं कृतम्। अत्र न केवलं जनानां मानसिकविकाराणां शमनार्थम् अपितु शारीरिकविकाराणां शमनार्थमपि वर्णनं प्राप्यते।

न केवलम् एतावदेवापितु अग्रेऽपि विभिन्नैः प्रश्नैः मानसिकविकारं शारीरिकविकारं च कथं

* शोधच्छात्रः, संस्कृत–विभागः, महात्मा–गाँधी–केन्द्रिय–विश्वविद्यालयः मोतिहारी, बिहारः।

सम्यक् भवेदिति चिन्तितमस्ति। जनेषु क्रोधः, ईर्ष्या, द्वेषः, कामादयः षड्दोषाः (काम-क्रोध-लोभ-मोह-मद-मात्सर्याः) अपि कथं दूरी भवेयुरित्यपि गीतायामेव वर्णितमस्ति। एतेषां सर्वेषां कारणमिन्द्रियाण्येव भवन्ति। उक्तमप्यस्ति –

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।
बन्धाय विषयासक्तं मुक्त्यै निर्विषयं स्मृतम्।।[३]

वेदात् परं दार्शनिकग्रन्थेषु अनन्यतमा भजते प्रस्थानत्रयी। प्रस्थानत्रय्यामपि स्मृतिप्रस्थानमस्ति श्रीमद्भगवद्गीता। श्रीमद्भगवद्गीता महाभारतस्य भीष्मपर्वणः अंशो वर्तते। महाभारतस्य श्लोकोऽयं तु अस्य महत्तां प्रकटयति एव –

धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ।
यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्।।[४]

एतैनैव श्लोकेन स्पष्टोऽभवत् यत् महाभारते सर्वविषयाणां प्रतिपादनं कृतम् अस्ति। तस्मिन्नपि श्रीमद्भगवद्गीतायाः महत्त्वं तु जगत्येव प्रसिद्धोऽस्ति। अष्टादशेषु अध्यायेषु कर्मयोगेन, ज्ञानयोगेन, भक्तियोगेन, ध्यानयोगेन चेत्यादिना योगस्य महत्ता एवञ्च स्वास्थ्यः प्रतिपादितो वर्तते।

शब्दकुञ्चिका – श्रीमद्भगवद्गीता, स्वास्थ्यम्, मानसिकस्वास्थ्यम्, स्वास्थ्यप्रबन्धनम्, व्याधिः, दुःखम्, योगश्च।

प्रस्तावना– भारतीय-ज्ञान-परम्परायां ज्ञानविज्ञानयोः यः सङ्गमोऽस्ति, सः नान्यत्र कुत्रापि प्राप्यते। अस्यां ज्ञानपरम्परायामेव मनुष्याणां कल्याणाय त्रयः मार्गाः समुपदिष्टाः यः प्रस्थानत्रयी इति नाम्ना प्रसिद्धोऽस्ति। प्रस्थानस्य अर्थोऽस्ति गमनम् इति। यः परब्रह्मणः ज्ञानं कारयित्वा तद्वदेव अस्तीति बोधयति, सैव प्रस्थानत्रयी। त्रीणि प्रस्थानान्यपि मानवान् परमं लक्ष्यं प्रति नीत्वा गच्छन्ति उत तस्य मार्गं प्रशस्तं कुर्वन्ति। एतानि त्रीणि मार्गाणि एवं सन्ति –

१. श्रुतिप्रस्थानम् इत्युक्ते उपनिषद्।

२. स्मृतिप्रस्थानम् इत्युक्ते श्रीमद्भगवद्गीता।

३. न्यायप्रस्थानम् इत्युक्ते ब्रह्मसूत्रम्।

उपनिषदः वेदानां सारभूताः सन्ति तु तत्रैव उपनिषदां सारभूतः स्मृतिप्रस्थानान्तर्गते श्रीमद्भगवद्गीता। सन्दर्भेऽस्मिन् अयं श्लोकः प्राप्यते –

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत्।।[५]

अर्थात् सर्वारपि उपनिषदः गावः सन्ति। अस्याः दोहनकर्ता श्रीकृष्णः अस्ति। अत्र गीता दुग्धरूपी अमृतम् अस्ति, यत्र पार्थः अर्जुनः वत्सः अस्ति तथा च गीतामृतस्य भोक्तारः सुधीजनाः सन्ति।

श्रीमद्भगवद्गीता अष्टादशेषु अध्यायेषु विभिन्नानां योगानां चर्चा कृताऽस्ति। अत्र न केवलं शारीरिकस्वास्थ्याय वार्ता निगदिता अपितु मानसिकस्वास्थ्याय अपि वार्ता लिखिताऽस्ति।

स्वास्थ्यम्– स्वास्थ्यं न केवलं मानवानां व्यक्तिगतं विकासकारकं भवति अपितु समाजस्य राष्ट्रस्य च उन्नतिमार्गेऽपि महत्त्वपूर्णां भूमिकां निर्धारयति। सरलरूपेण स्वास्थ्यं तु स्वस्थस्य भावो भवति। स्व इत्युक्ते स्वस्य आत्मनि, स्था धातुः इत्युक्ते तिष्ठति उत स्थिरो भवति, ष्यञ् इति प्रत्ययोऽस्ति –

निष्पत्तिः – स्वस्थ (स्व + स्था + कः) + 'ष्यञ्'[६]।

व्युत्पत्तिः – स्वस्थस्य भावः।

विभिन्नेषु कोशेषु स्वास्थ्यस्य पर्यायरूपेण आरोग्यम्, सन्तोषः, सहजता, कल्याणम्, शान्तिः चेत्यादयः शब्दा उल्लिखितास्सन्ति। स्वास्थ्यस्य महत्तां तु प्रतिपादितवान् महाकविः कालिदासोऽपि **'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्।'**[७] अर्थात् शरीरमेव धर्मस्याद्यं सर्वोत्तमञ्च साधनमस्ति। अतः शरीरस्य रक्षा अवधानेन करणीया। शरीरस्य रक्षायै स्वस्थवृत्तिरावश्यकी भवति। यदा दोषेषु, चयापचययोः, संरचनात्मकेषु घटकेषु उत्सर्जनपरिस्थित्याञ्च सन्तुलितरूपेण मनेन्द्रियचेतनादिभिः कार्यं भवति तदा जनः स्वस्थोऽस्तीति। अस्य कथनस्य समर्थनं करोति सुश्रुतसंहिता –

समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते।।[८]

अर्थात् यः वातादिषु दोषेषु, जठरादिष्वग्निषु, रसादिषु धातुषु समाना अवस्थाः भूत्वा मलादि-क्रियाः सम्यक्प्रकारेण भवति एवञ्च आत्मेन्द्रियाणि-मनांसि प्रसन्नाः भवन्ति तदा सः मनुष्यः स्वस्थ इति कथ्यते। अनेन स्पष्टो भवति यत् स्वस्थ-प्राणिनां नैतिकः, मानसिकः, शारीरिकः, भौतिकः, आध्यात्मिकः, सामाजिकः, सांस्कृतिकश्च विकासो भवति।

१. **आध्यात्मिकं स्वास्थ्यम्-** विज्ञानयुगेस्मिन्नपि बहवः प्रश्नाः जनमानसपटलेषु अनुत्तरितास्सन्ति तर्हि भारतीय-ज्ञान-परम्परायां सर्वासां जिज्ञासानां समाधानं प्राप्यते। आत्मनः, परमात्मनः, जगतश्च विषये अत्र बहु किमपि प्राप्यते तथा च बहूनां जिज्ञासानां विमर्श आध्यात्मजगत्येवास्ति। आध्यात्मेनैव विविधानां विकाराणां शमनमपि सम्भवति –

- ब्रह्मणि विश्वासः। ● अहिंसा-सत्यास्तेय-ब्रह्मचर्यापरिग्रहाणाम् अनुपालनम्।
- सन्तोषः। ● जितेन्द्रियः। ● शान्तिः।
- शरीरमनसोः विचारशुद्धिः।
- सकारात्मकाः विचाराः। ● कामादि-दोषैः मुक्तः।
- प्राणिषु दयाभावना।

२. शारीरिकं स्वास्थ्यम् – यदा शरीरस्याङ्गानि, तन्त्राणि, वाहिकाः, कोशिकाश्च सम्यक् कार्यं कुर्वन्ति तथाच जठरादयोऽग्नयः, वातपित्तकफाः दोषाः, रसाद्याः धातवः, मलाद्याः क्रियाश्च

सम्यक् भवन्ति तर्हि शारीरिकं स्वास्थ्यं समीचीनमिति मन्यते। स्वस्थशरीराय काश्चन विशेषतास्सन्ति –

- हृष्टं पुष्टं शरीरम्।
- आलस्यराहित्यम्।
- सुगठितानि अङ्गानि।
- शौचः पवित्रता वा।
- उपयुक्ता निद्रा।
- सामान्यः भारः।
- सम्यक् जठराग्निः।
- समुचिता प्राणवायुः।
- निर्विघ्नाः मलाद्याः क्रियाः।
- समीचीनानि त्वगादीनि।

३. मानसिकं स्वास्थ्यम् – यदि मनुष्यः मानसिकः स्वस्थः नास्ति तर्हि स्वस्थः नोच्यते। मानसिकस्वास्थ्यस्य विशेषणानि निम्नलिखितानि सन्ति –

- प्रसन्नचित्तः।
- संवेदनशीलता।
- समन्वितः व्यक्तित्त्वः।
- व्यवहारे निपुणता।
- दृढः निश्चयः।
- चिन्ताऽवसादिभिः मुक्तः।
- आत्मनियन्त्रणम्।
- उचितानुचितयोः विवेकः।
- कर्मठता।
- सन्तोषः।
- उत्साही मनोदशा।
- अपराधबोधैः निर्मुक्तः।
- सकारात्मिका भावना।
- प्रतिशोधभावनया रहितः।

नाम यदा मनुष्यः एवम्प्रकारकैः गुणैर्युक्तो भवति तदा सः मानसिकः स्वस्थः वक्तुं शक्यते।

४. सामाजिकं स्वास्थ्यम् – भारतीयज्ञानपरम्परायां प्राचीनकालात् 'वसुधैव कुटुम्बकम्' इति या भावना दृश्यते, सा सामाजिकतामेव प्रकटयति। परस्परसम्बन्धान् स्वीकृत्य वैयक्तिकं योगदानमपि यदा गणयति तदा सामाजिकः स्वस्थ इति मन्यते। अस्य कानिचन विशेषणान्येवं सन्ति –

- सर्वैस्साकं प्रेमभावना।
- ज्येष्ठानुजयोः समोचितः आदरभावः।
- सर्वेभ्यः कल्याणयुक्ताः विचाराः।
- सर्वेषां सम्माननम्।
- सामाजिकेषु गतिविधिषु सहभागिता।
- स्व-कर्तव्यपालनम्।
- परस्परं सहयोगः।
- उत्तममं नेतृत्त्वं समायोजनञ्च।
- गृहस्य, परिवारस्य, समाजस्य च दायित्त्वनिर्वहणम्।

जनानां स्वास्थ्यं बाह्यान्तरिकयोः कारणयोः क्रियासु निर्भरो भवति। अतः स्वास्थ्यरक्षणम् आवश्यकम् आस्ति।

श्रीमद्भगवद्गीतायां स्वास्थ्यप्रबन्धनम् – भारतीय-ज्ञान-परम्परायां यथा स्थानं वैदिकसाहित्यानाम् अस्ति तथैव प्रस्थानत्रय्यां परिगणितस्य श्रीमद्भगवद्गीताया अप्यस्ति।

श्रीमद्भगवद्गीतायाः द्विशताधिकाः टीकाः लिखितास्सन्ति तथा च इदानीमपि जनेषु लोकप्रियतां भजते। श्रीमद्भगवद्गीतां तु योगालयोऽपि वदामश्चेन्न काऽपि अतिशयोक्तिरस्ति। स्वास्थ्यरक्षणं करणीयमेव यतोहि शरीरस्य रक्षणं तु कर्तव्यम् अस्त्येव। चरकसंहितायां तदर्थम् उक्तमप्यस्ति –

सर्वमन्यत् परित्यज्य शरीरमनुपालयेत्।
तद्भावे हि भावानां सर्वाभावः शरीरिणाम्।।[९]

अर्थात् सर्वमपि कार्यं परित्यज्य सर्वप्रथमं तु शरीरस्य रक्षा कुर्यात्। शरीरस्य रक्षा भविष्यति तेनैव पुरुषार्थचतुष्टयस्योपभोगं कर्तुं शक्नोति। इतोपि धर्माऽर्थकाममोक्षाणां पुरुषार्थानां प्राप्तिकामना वर्तते चेत् मानवानां स्वास्थ्यं समीचीनं भवेदिति, तदैव सम्यक्तया चतुर्णामपि पुरुषार्थानाम् उपभोगं कृत्वा मनसा वाचा कर्मणा च स्वस्थो भवितुं शक्नुवन्ति। इहलौकिकं सुखं भुक्त्वा पारलौकिकम् अपि सुखं प्राप्नुयात्, तदर्थमपि इदमेव सोपानम् अस्ति। चरकसंहितायाम् उक्तं विषयेऽस्मिन् –

धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्।
रोगास्तस्यापहर्तारः श्रेयसो जीवितस्य च।।[१०]

अर्थात् धर्माऽर्थकाममोक्षाणां पुरुषार्थानां मुख्यं साधनमस्ति आरोग्यम्। रोगाः आरोग्यस्य, परम्–लक्ष्यस्य। निःश्रेयसः, जीवनस्य चापघातकाः भवन्ति। अत एव मानवानां परमं कर्तव्यस्वरूपं शरीरस्य स्वास्थ्यरक्षणम् अस्तीति।

जगत्यस्मिन् असम्यक् स्वास्थ्याय मुख्यमेकं कारणं भवति दुःखम्। प्रसन्ने सति सर्वमपि कार्यं समीचीनतया सम्पन्नो भवति। श्रीमद्भगवद्गीतायां दुःखशमनाय वर्णनमस्ति। अनेन श्लोकेन स्पष्टोऽपि भवति –

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा।।[११]

अर्थात् यदा योगिजनानां आहारविहारौ सम्यक् भवतः, कर्मसु नियता प्रयत्नपरका क्रिया भवति एवञ्च समयेन निद्राजागरणौ भवतः, तदा योगः दुःखानि हन्ति। नाम दुःखान्येव मुख्यानि कारणानि भवन्ति अस्वास्थ्याय। साङ्ख्यकारिकायास्तु प्रथमायां कारिकायामेव दुःखशमनाय वार्ता कृताऽस्ति –

दुःखत्रयाभिघाताज्जिज्ञासा तदपघातके हेतौ।
दृष्टे सा पार्था चेन्नैकान्तात्यन्ततोऽभावात्।।[१२]

इत्युक्ते अत्र दुःखत्रयस्य विषये वर्णनमस्ति यस्य दुःखस्य एकान्तिकात्यन्तिकयोरभाव आवश्यकोऽस्ति। एतानि त्रीणि दुःखानि सन्त्येवम् –

१. आध्यात्मिकं दुःखम्।

१.१ मानसं दुःखम्।

१.२ शारीरं दुःखम्।

२. आधिभौतिकं दुःखम्।

३. आधिदैविकं दुःखम्।

स्वास्थ्यविषयेऽपि चिन्तनीयमेवमेव। शारीरिकरोगात्, मनोरोगात्, भवरोगाच्च मुक्तिरेव भवति उत्तमस्य स्वास्थ्यस्य लक्षणम्। आध्यात्मिके स्वास्थ्ये सति शारीरमानसे आगच्छत एव किन्तु आध्यात्मिकेनैव सम्बद्धो भवति भवरोगाणामुपचारोऽपि। श्रीमद्भगवद्गीतायां स्वास्थ्यम् एवम्प्रकारेण वर्णितमस्ति।

आध्यात्मिकं स्वास्थ्यम् – यत् स्वास्थ्यम् आधियुक्तं (मानसं) व्याधियुक्तं (शारीरं) च भवति, तत् आध्यात्मिकं स्वास्थ्यं भवति। यदि कश्चित् मनसा कर्मणो वा अस्वस्थो भवति तर्हि स आध्यात्मिकरूपेण स्वस्थो भवितुं न शक्नोति। नाम अध्यात्मे उत ब्रह्मणः ध्याने तस्य मनः शरीरं वा न लगति। आध्यात्मिकस्य स्वास्थ्यस्य द्वावपि भेदौ लिखितौ।

शारीरं स्वास्थ्यम् – यस्य सम्बन्धः शारीरिकेन स्वास्थ्येन भवति, सः शारीरं स्वास्थ्यं भवति। यदा शरीरे वातपित्तकफानां वैषम्यं भवति तदा शरीरे दुःखं भवति तस्मात् शरीरोऽस्वस्थो भवति। ज्वरः, अनिद्रा, वेदना, रोगा इत्यादयः शारीरं स्वास्थ्यं दर्शयन्ति। श्रीमद्भगवद्गीतायां शारीरस्वास्थ्यविषये बहुत्र वर्णनमस्ति। शरीरमिदन्तु नाशवान् एवास्ति किन्तु शरीरी शाश्वतमस्ति इति श्रीमद्भगवद्गीतायां प्रतिपादनम् अस्ति –

अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः।
अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत।।[१३]

अर्थात् इदं शरीरं तु नाशवान्नस्ति किन्तु शरीरी शाश्वतरूपेणाविनाशी अस्ति। अतः युद्धाय कृतनिश्चयो भवतु इति।

शारीरं स्वास्थ्यं सम्यक् भवेत् तदर्थम् आहारशुद्धि आवश्यकी भवति। जनेभ्यः त्रिविधाहारो[१४] प्रियं भवति किन्तु सात्त्विकाहारं खादित्वा न केवलम् आयुः वर्धते अपितु सात्त्विकं बलम्, सुखम्, प्रीतिः चापि वर्धन्ते, येन शारीरिकं स्वास्थ्यं सम्यक् भवति –

आयुः सत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विकप्रियाः।।[१५]

अर्थात् सात्विकजनेभ्यः चिरकालस्थायी, हृदयप्रियः, मधुररसयुक्तश्च आहारः रोचते, य आयुवर्धकः, सत्त्वगुणवर्धकः, बलवर्धकः, आरोग्यदायकः, सुखवर्धकः, प्रीतिवर्धकश्च भवति। सात्त्विकाहारं कृत्वा शरीरं मनश्च स्वस्थौ भवतः। आहारः न केवलं सात्त्विकः भवेत् अपितु नियमितरूपेण यथायोग्यं चापि भवेदित्यपि द्रष्टव्यो भवति।

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः।
न चातिस्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन।। (श्रीमद्भगवद्गीता ६.१६)

एवम्प्रकारेण स्पष्टोऽभवत् श्रीमद्भगवद्गीतायां शारीरिकस्वास्थ्याय सम्यक् वर्णनमस्ति।

मानसं स्वास्थ्यम् – मानसं (मानसिकं) स्वास्थ्यं तु श्रीमद्भगवद्गीतायां मुख्यरूपेणैव लिखितमस्ति अपितु युद्धभूमौ अर्जुनस्य मनःस्थितिः समीचीना नासीत् तदर्थमेव भगवता श्रीकृष्णेन गीता प्रोक्ता। मानसिक-स्वास्थ्यस्य विषये साङ्ख्यकारिकायां लिखितमस्ति–**मानसं कामक्रोधलोभमोहभयेर्ष्याविषादविषयविशेषादर्शननिबन्धनम्।**[१६] अर्थात् कामः, क्रोधः, लोभः, मोहः, भयम्, ईर्ष्या, विषादः, रागः, मोहः तथाच इन्द्रियाणां चाञ्चल्यम् इत्यादीनि दुःखानि सन्ति। एतानि दुःखानि अन्तःकरणम् अधिकृत्य भवन्ति तदा मानसं दुःखं भवति। एतदेव मानसिकस्वास्थ्याय कारकं भवति। श्रीमद्भगवद्गीतायां मानसं स्वास्थ्यं केन कारणेनासम्यक् भवति? तथा च कथं सम्यक् भवति? इति सर्वमपि वर्णितमस्ति। एतन्निम्नलिखितरूपेण अस्ति।

● **कामः –** मनुष्याणां षड्विकारेषु सर्वप्रथममायाति कामः। कामः नाम विषयेषु अनुरागः, कामना वा। मनुष्याणां कामना न कदापि समाप्ता भवति। एका कामना समाप्ता एव न भवति ततः पूर्वमेव द्वितीया समुत्पन्ना भवति। श्रीमद्भगवद्गीतायाः सप्तमे अध्याये धर्मविरुद्धो भवति कामः इति वर्णितमस्ति।

बलं बलवतां चाहं कामरागविवर्जितम्।
धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ।।[१७]

भवति कामनेयं नित्या वर्धमाना। यदा कामना पूर्णतां नाप्नोति तदा क्रोधादीन् विकारं जनयति। भगवान् श्रीकृष्ण उक्तवान्नपि – **काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।**[१८] अर्थात् रजोगुणेन समुद्भूता कामनेयं क्रोधरूपेणपरिणतो भवति। क्रोधो भवति तर्हि ईर्ष्या, द्वेषः, मात्सर्यं, वैरम् इत्यादयः दोषाः[१९] अपि आगच्छन्ति। यदा एते दोषाः भवन्ति तदा जनः मानसिकरूपेणास्वस्थो भवति। अतः कामत्यागो भवेत् तदैव स्वस्थशरीरस्य कल्पना साकारभूता भविष्यति।

● **क्रोधः –** यदा मानवस्य पराङ्मुखं व्यवहारो भवति तदा क्रोध उत्पद्यते – '**कामात्क्रोधोऽभिजायते**'[२०]। अनेन कारणेनावसादः, अन्तःविकारः, बाह्यविकारश्च भवन्ति। अतः क्रोधत्यागः करणीयः। क्रोधादीनां विकाराभावे सति प्राणी परमं लक्ष्यं सुगमरूपेण प्राप्नोति।

अहङ्कारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम्।
विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते।।[२१]

अत एव मनसश्शान्त्यर्थं क्रोधः न करणीयः।

● **द्वेषः –** द्वेषः इत्युक्ते शत्रुतायाः भावना। सम्प्रति जनेषु ईर्ष्या द्वेषो वा वर्धितो दृश्यते। द्वेषः दुर्भावनया, दुर्व्यवहारेण वा भवति। तस्मात् नकारात्मकाः भावा उत्पन्नाः भवन्ति एवञ्च पूर्वव्यवहृतस्य कर्मणः चिन्तनेन मनसि विकाराः आगच्छन्ति। श्रीमद्भगवद्गीतायां भगवता श्रीकृष्णेन उक्तं यत् पारमार्थिकमार्गे रागद्वेषौ विघ्नकारकौ शत्रू भवतः।

इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ।

तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ।।[२२]

अग्रे यदा जनः रागद्वेषौ त्यक्त्वा कामनया विना कर्म करोति तदा सः अस्मात् संसारबन्धनात् तरति –

ज्ञेयः स नित्यसन्न्यासी यो न द्वेष्टि न काङ्क्षति।
निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो सुखं बन्धात्प्रमुच्यते।।[२३]

एवं स्पष्टः यत् द्वेषमुक्तो भूत्वा मायारूपी बन्धनात् जीवः मुक्तो भवति। ततः दुःखानि दूरीकृत्य मनुष्यः प्रसन्नो भवति।

• **मोहः –** भगवतः सम्मोहिनी माया सर्वत्र दृश्यते। इदं जगत् भगवतः मायया बद्धोऽस्ति। भावनया योजितस्सन् प्रेम्णा अनुरागो भवति तदेव रागो भवति तथाच ममेति भावनया युक्तस्सन् यत् ममत्वं सः मोहः इत्युच्यते। मोहो भवति तदा मनुष्यः सन्देहयुक्तः तथाच सुखदुःखयोः व्यपोहितः न भवति। सुश्रुतसंहितायां तु मोहः षड्विधः वर्णितोऽस्ति। श्रीमद्भगवद्गीताया अष्टादशे अध्याये वर्णितमस्ति।

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव।।[२४]

अर्थात् अर्जुनः वदति यत् हे अच्युत! भवत्कृपया मोहः नष्टोऽभवत् तथाचाहं स्मृतिमपि प्राप्य निःसन्देहः अभवम्। अतः भवत्वचनस्यानुपालनं करिष्यामि इति। नाम भगवत्कृपाप्रसादात् सात्विकी बुद्धिः भवति तदा परमं लक्ष्यं मोक्षं प्राप्नोति – '**बन्धं मोक्षं च या वेत्ति बुद्धिः सा पार्थ सात्त्विकी**'[२५]। इत्युक्ते मोहस्य दुष्प्रभावात् बहव्यः व्याधयः आगच्छन्ति, अतः मानसिकस्वास्थ्याय मोहत्यागो भवेत्।

• **सुख-दुःखे –** मानसिकस्वास्थ्ये सुखदुःखयोः महत्त्वं बहु अधिकमस्ति। यावत् सुखी जनः दृश्यते तावत् सः मानसिकरूपेणापि प्रसन्नः स्वस्थो वा दृश्यते। तत्रैव यावज्जीवने कष्टं भवति, तावत् सः जनः मानसिकम् अस्वस्थतां प्राप्नोति। सन्दर्भेऽस्मिन् श्रीमद्भगवद्गीतायामपि वर्णितमस्ति –

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते।।[२६]

अर्थात् साधकस्य अन्तःकरणं यदा निर्मलतां प्राप्नोति तदा सर्वेषां दुःखानां शमनं भवति तथाच प्रसन्नचित्तस्य साधकस्य बुद्धिः परब्रह्मणि स्थिता भवति। अतः मनुष्याणां परमं कर्तव्यमस्ति यत् सुखदुःखयोः स्थिरां बुद्धिं स्थापयेत् येन मानसिकरूपेण स्वस्थो भवति। अस्योदाहरणान्यपि श्रीमद्भगवद्गीतायां प्राप्यन्ते। यथा '**समदुःखसुखं धीरं**',[२७] '**शीतोष्णसुखदुःखदाः**',[२८] '**दुःखसंयोगवियोगं योगसञ्ज्ञितम्**',[२९] '**समदुःखसुखः स्वस्थः**'[३०] इत्यादीनि। तर्हि यः एवम्प्रकारेण समाचरति तथाच अविकारीरूपेण स्थितो भवति, सः दुःखमिदं त्यक्त्वा परमां

गतिमाप्नोति इति अन्यथा तु '**नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः**',[३१] एतस्मादेव तस्य योगी इति सञ्ज्ञा भवति – '**सुखं वा यदि वा दुःखं सः योगी परमो मतः**'।[३२]

● **इन्द्रियनिग्रहः –** मानसिकस्वास्थ्याय इन्द्रियनिग्रह आवश्यक एव। इन्द्रियनिग्रह इत्युक्ते जितेन्द्रियः, मनसः निग्रहश्चैव। इन्द्रियाणां निग्रहः बहु प्रयत्नेन सम्भवति। श्रीमद्भगवद्गीतायाम् अर्जुन उक्तवान् यत् इन्द्रियाणां निरोधः दुष्करमेव भवति, तस्मिन्नपि मनसः तु इतोपि दुष्करमेव भवति।

चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्।।[३३]

मन अनियन्त्रितोऽस्ति तदा सर्वप्रथममेव कामादिविकाराणामुद्भावो भवति।

ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।
सङ्गात् सञ्जायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते।।
क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति।।[३४]

अर्थात् विषयेषु आसक्तिकारणात् मनः कामनया युक्तो भवति, तत आसक्तिर्भवति, आसक्तितः क्रोध उद्भवति, तस्मात् मूढत्वमायाति, मूढत्वे सति स्मृतिनाशो भवति, स्मृतिनाशात् बुद्धेः नाशो भवति तथाच बुद्धिनाशात् जीवस्यापि नाशो भवति। एवं स्थितिः नागच्छेत् तदर्थम् अभ्यासबलेन वैराग्येण च इन्द्रियाणां शमनं भवितुं शक्यते।

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।। (श्रीमद्भगवद्गीता, ६.३५)

न केवलम् एतावदेवापितु इन्द्रियाणि, मनः, बुद्धिश्च कामनानां वासस्थानमस्ति। अतः इन्द्रियाणां संयमनं कृत्वा क्रमशः इन्द्रियेभ्यः परं मनम्, मनसः परां बुद्धिम् तथाच बुद्धेः परं कामम् शत्रुं हतात्,[३५] किन्तु मनसस्तु चाञ्चल्यं गुण एवास्ति। यदा सर्वतः मनं भगवति संस्थापयति तदा पापादिके नष्टे सति परमानन्दस्वरूपं प्राप्य सात्विकं सुखं प्राप्नोति, येन मानसिकं स्वास्थ्यं उत्तमं भवति। श्रीमद्भगवद्गीतायां षष्ठे अध्याये ध्यानयोगिनामुपरतिं वर्णयन् इन्द्रियनिग्रहस्य फलं वर्णितमस्ति।

प्रशान्तमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम्।
उपैति शान्तरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम्।।[३६]

अतः स्पष्टोऽभवत् मानसिकस्वास्थ्यस्य रक्षणाय इन्द्रियनिग्रह आवश्यको वर्तते।

कर्मयोगेन मानसिकस्वास्थ्यप्रबन्धनम्– भारतीयज्ञानपरम्परायां कर्मणः त्यागपूर्वकमुप–भोगाय वार्ता लिखिता। वैदिकसाहित्यस्य ईशावास्योपनिषदि साक्षात् अनासक्तभावेन कर्म

करणीयमिति निर्दिशति।

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्।।[३७]

अर्थात् अस्मिन् जगति सर्वमपि परब्रह्मणा आच्छादितोऽस्ति। स एव इदं जगत् रचयति नियमनं वा करोति। अत एवात्र ब्रह्मणः प्रदत्तस्य धनस्य त्यागपूर्वकम् उपभोगः करणीयः यतोहि धनमिदं तु परब्रह्मण अस्तीति। श्रीमद्भगवद्गीतायामपि श्रीकृष्णो वदति यत् आसक्तिरहितं कर्म कुरु यतोहि एवं कर्म कुर्वन् जनः सर्वान् क्लेशान् त्यक्त्वा परमं लक्ष्यं प्राप्नोति।

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।
असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पुरुषः।।[३८]

इत्युक्ते श्लोकेस्मिन् भगवान् श्रीकृष्णः अर्जुनमुपदिशति यत् अनासक्तिपूर्वकं स्वस्य कर्मण आचरणं सम्यक्प्रकारेण करोतु यतोहि अनासक्तिपूर्वकेन कार्यकरणेन मनुष्यः परब्रह्मं प्राप्नोति इति। तर्हि प्रशनोऽयं समायाति यत् किम् अनासक्तिपूर्वकं कार्यमेव समीचीनमुत अन्यत् किमपि? तदा अस्योत्तरं भगवान् श्रीकृष्णः अष्टादशे अध्याये वदति यत् केवलं कर्तव्यमात्रमिदं कार्यमस्ति इति मत्वा यदा आसक्तिं फलेच्छाञ्च त्यक्त्वा सतत् कार्यं करोति तदैव त्यागपूर्वकं कर्म कथ्यते।

कार्यमित्येव यत्कर्म नियतं क्रियतेऽर्जुन।
सङ्गं त्यक्त्वा फलं चैव स त्यागः सात्त्विको मतः।।[३९]

एवं कर्मे अनासक्तः फलत्यागी एव त्यागी इति सञ्ज्ञां प्राप्नोति –

न द्वेष्ट्यकुशलं कर्म कुशले नानुषज्जते।
त्यागी सत्त्वसमाविष्टो मेधावी छिन्नसंशयः।।[४०]

नाम भगवद्गीतायां कर्मणः महत्त्वं मुख्यतया प्रतिपादितमस्ति। यः कर्म न करोति आध्यात्मिकं भौतिकं दैविकं वा भवतु, सः सर्वविधं दुःखम् आप्नोति तर्हि कर्म तु करणीयमेव। उक्तमप्यस्ति – '**योगः कर्मसु कौशलम्**।[४१] इत्युक्ते कर्मसु सम्यक् योजनमेव कौशलमस्ति। यः कुशलः मनुष्यः एतद् विजानाति एव। तस्मै न कुत्रापि भयं भवति, न तु सः कर्मपाशे बध्नाति। सः दुःखादिकं त्यक्त्वा परमं पदं प्राप्नोति इति।

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च कार्याकार्ये भयाभये।
बन्धं मोक्षं च या वेत्ति बुद्धिः सा पार्थ सात्त्विकी।।[४२]

एवम्प्रकारेण स्पष्टो भवति यत् कर्ममाध्यमेनापि स्वास्थ्यप्रबन्धनं कर्तुं शक्यते तथाच गीतायां विषयेस्मिन् सम्यक् विवरणमपि प्राप्यते।

ध्यानयोगेन मानसिकस्वास्थ्यप्रबन्धनम्– श्रीमद्भगवद्गीतायां विविधानां योगानां वर्णनं प्राप्यते येन स्वास्थ्यप्रबन्धने सहायता भवति। नाम ध्यानयोगेनापि स्वास्थ्यप्रबन्धनं भवति।

ध्यानयोगस्य महत्ता लोकेऽस्मिन् तु प्रसिद्धैव वर्तते। मानसिकस्वास्थ्यस्य प्रबन्धनाय ध्यानयोगः मुख्य उपायः भवितुं शक्नोति। ध्यानेन अवसादः, चिन्ता, अहङ्कारः, कामः, क्रोधः, लोभः, मोहः, शोकः, इन्द्रियनिग्रहश्चादय उपायास्सम्भवन्ति। उदाहरणरूपेण श्रीमद्भगवद्गीताया अष्टादशे अध्याये उपर्युक्तानां मानसिकस्वास्थ्यभूतानां मानसिकदोषानां शमनात् परं परब्रह्मणः पदमाप्नोति इति वर्णितम् अस्ति।

विविक्तसेवी लघ्वाशी यतवाक्कायमानसः।
ध्यानयोगपरो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः।।
अहङ्कारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम्।
विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते।।[४३]

षष्ठेऽध्याये तु ध्यानस्य विषये एव वर्णनं कृतमस्ति। विद्वद्भिः आत्मसंयमयोगस्य अपरं नाम ध्यानयोग इति उच्यते।

भक्तियोगेन मानसिकस्वास्थ्यप्रबन्धनम्–सर्वेषाम् इच्छा सुखी भवितुं भवति इत्युक्ते सर्वेऽपि सुखमयं जीवनम् इच्छन्ति किन्तु तादृशं कर्म कर्तुं नेच्छन्ति। अतः सरलरूपेण भगवत आश्रयः स्वीकृत्य यस्मिन् भगवति मनः रमते, सः भक्तियोगो भवति। भक्तिमाध्यमेन न केवलं शारीरिकम् अपितु मानसिकं स्वास्थ्यमपि सम्यक् भवति। योगशास्त्रेऽपि लिखितमस्ति यत् ईश्वरस्य ध्यानं कृत्वाऽपि भक्तियोगमाध्यमेन स्वास्थ्यप्रबन्धनं भवति – '**ईश्वरप्रणिधानाद्वा।**'[४४] अर्थात् परमं सत्तां प्रति सर्वासां क्रियाणां समर्पणं तथाच कर्मफलस्य संन्यास ईश्वरप्रणिधानमस्तीति। भारतीयशास्त्रेषु नवधाभक्तेः स्वरूपं प्राप्यते। श्रीमद्भगवद्गीतायां भक्तियोगेन स्वास्थ्यस्य महत्ता अनेन श्लोकेन प्रकटीभवति।

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्।।[४५]

अर्थात् यः ब्रह्मज्ञो भवति, सः अस्य जगतः विषये न तु शोकं करोति, नैव च कामपि इच्छामेव। तस्य मनस्तु भगवतः आराधने एव तत्परो भवति। सः सर्वेषु प्राणिषु रागद्वेषादिकं न कृत्वा भगवत आराधनायामेव संलग्नो भवति। अनन्यभावेन ईश्वरस्योपासनया मनुष्यः कर्मफलं त्यक्त्वा परमं लक्ष्यं प्राप्नोति, यस्मात् संसारेऽस्मिन् पुनर्जन्मोऽपि न भवति। अस्यैव व्याख्या अस्ति अष्टमेऽध्याये श्रीमद्भगवद्गीतायाः –

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते।।[४६]

निष्कर्षः–श्रीमद्भगवद्गीता सर्वासाम् उपनिषदां सारोऽस्ति तथाच प्राणिनां परमं लक्ष्यं सरलतया प्रापयति। अत्र सर्वविधानां समस्यानां समाधानोऽपि दत्तोऽस्ति। संसारेऽस्मिन् कर्मयोगी भवतु, यः कर्म कृत्वा परमानन्दं प्राप्नोति; ज्ञानयोगी भवतु, यः ज्ञानयोगेन परमं लक्ष्यं प्राप्नोति;

भक्तियोगी भवतु, यः परब्रह्मं भक्तिमार्गेण प्राप्नोति; ध्यानयोगी वा भवतु, यः ध्यानमार्गेण समाधिं प्राप्य परमतत्त्वम् इव भवति इत्युक्ते सर्वेषां योगानां लक्ष्यं तु तथैवास्ति। श्रीमद्भगवद्गीतायां शारीरिकस्वास्थ्यस्य अपेक्षा मानसिकस्वास्थ्यस्य विषये अधिकमुक्तमस्ति। अत्र यस्मै यत् रोचते तथानुगुणम् इन्द्रियशरीरयोः व्याधीन् दूरीकृत्य रागद्वेषादिरहितं चिन्तादिकरूपं व्याधीनपि त्यक्त्वा प्रसन्नो भवति।

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः।।[४७]

सन्दर्भाः

१. नीतिशतकम्, श्लोक – ८६
२. श्रीमद्भगवद्गीता, १.२८
३. ब्रह्मबिन्दूपनिषद्, मन्त्र – २
४. महाभारतम्, स्वर्गारोहणपर्व, ५.५०
५. गीताध्यानम्, श्लोक ४
६. अष्टाध्यायी, ५.१.१२४
७. कुमारसम्भवम्, ५.३३
८. सुश्रुतसंहिता, सूत्रस्थानम्, १५.४०
९. चरकसंहिता, निदान, ६.७
१०. चरकसंहिता, सूत्रस्थान, १.१५
११. श्रीमद्भगवद्गीता, ६.१७
१२. साङ्ख्यकारिका, कारिका – १
१३. श्रीमद्भगवद्गीता, २.१८
१४. श्रीमद्भगवद्गीता, १७.७
१५. श्रीमद्भगवद्गीता, १७.८
१६. साङ्ख्यकारिका, कारिका – १, साङ्ख्यतत्त्वकौमुदी, वाचस्पतिमिश्रः, पृ. १०
१७. श्रीमद्भगवद्गीता, ७.११
१८. श्रीमद्भगवद्गीता, ३.३७
१९. श्रीमद्भगवद्गीता, ३.३९
२०. श्रीमद्भगवद्गीता, २.६२
२१. श्रीमद्भगवद्गीता, १८.५३
२२. श्रीमद्भगवद्गीता, ३.३४
२३. श्रीमद्भगवद्गीता, ५.३
२४. श्रीमद्भगवद्गीता, १८.७३
२५. श्रीमद्भगवद्गीता, १८.३०
२६. श्रीमद्भगवद्गीता, २.६५
२७. श्रीमद्भगवद्गीता, २.१५
२८. श्रीमद्भगवद्गीता, २.१४
२९. श्रीमद्भगवद्गीता, ६.२३
३०. श्रीमद्भगवद्गीता, १४.२४
३१. श्रीमद्भगवद्गीता, ८.१५
३२. श्रीमद्भगवद्गीता, ६.३२
३३. श्रीमद्भगवद्गीता, ६.३४
३४. श्रीमद्भगवद्गीता, २.६२–६३
३५. श्रीमद्भगवद्गीता, ३.४०–४३
३६. श्रीमद्भगवद्गीता, ६.२७
३७. ईशावास्योपनिषद्, मन्त्र – १
३८. श्रीमद्भगवद्गीता, ३.१९
३९. श्रीमद्भगवद्गीता १८.९
४०. श्रीमद्भगवद्गीता, १८.१०
४१. श्रीमद्भगवद्गीता, २.५०
४२. श्रीमद्भगवद्गीता, १८.३०
४३. श्रीमद्भगवद्गीता, १८.५२–५३
४४. योगदर्शनम्, २.१
४५. श्रीमद्भगवद्गीता, १८.५४
४६. श्रीमद्भगवद्गीता, ८.१६
४७. श्रीमद्भगवद्गीता, १२.१७

सन्दर्भग्रन्थसूची

- *श्रीमद्भगवद्गीता,* (श्लोकार्थसहित), गीताप्रेस, गोरखपुर, सं. २०७४
- *श्रीमद्भगवद्गीता,* (हिन्दी अनुवादसहित), रामकृष्ण मठ प्रकाशन, ई. २०१८
- *श्रीमद्भगवद्गीता (तत्त्वविवेचिनी हिन्दी टीका सहित)*, टीका. जयदयाल गोयन्दका, गीताप्रेस, गोरखपुर, सं. २०७८
- *श्रीमद्भगवद्गीता (साधक-संजीवनी)*, रामसुखदास स्वामी, गीताप्रेस, गोरखपुर, सं. २०७२
- तातेड़, प्रो. सोहन राज, तिवारी, डॉ. विनोद कुमार, *गीता एवं योग की प्रासंगिकता,* आशा पब्लिकेशन्स, जयपुर, ई. २०१६
- *योगाङ्क,* गीताप्रेस, गोरखपुर, सं. २०८०
- *आरोग्य-अङ्क,* गीताप्रेस, गोरखपुर, सं. २०८०
- *योगदर्शनम्,* गीताप्रेस, गोरखपुर, सं. २०८०
- भट्ट, डॉ. नवीन चन्द्र, *योग और स्वास्थ्य,* किताब महल, इलाहाबाद, ई. २०१८
- *Srimadbhagavadgita*, Gita Press, Gorakhapur, 2021

अन्तर्जालीय-स्त्रोतः

- https://www.exoticindiaart.com
- https://archive.org
- https://www.gitasupersite.iitk.ac.in

Shodh Navneet (International Peer-Reviewed Research Journal)
ISSN : 2321-6581, Vol. XXII, January - June 2024

महाभारत में गर्भसंस्कार की परंपरा : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

शुभम राय,* डॉ. उर्वशी सी पटेल**

शोधसार– महाभारत, भारतीय इतिहास और संस्कृति का एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ, केवल एक महाकाव्य ही नहीं है, बल्कि यह जीवन के विभिन्न पहलुओं पर गहन विचार और परंपराओं का संग्रह भी है। इस ग्रंथ में गर्भसंस्कार की परंपरा का उल्लेख विशेष रूप से उल्लेखनीय है, जो न केवल जन्मपूर्व संस्कारों की महत्ता को दर्शाता है बल्कि इससे जुड़ी गूढ़ आध्यात्मिक और नैतिक शिक्षाओं को भी प्रकट करता है। इस शोध में गर्भसंस्कार की परंपरा को महाभारत के विभिन्न पात्रों, घटनाओं और प्रसंगों के माध्यम से विश्लेषित किया गया है। गर्भसंस्कार का तात्पर्य उन संस्कारों से है जो गर्भावस्था के दौरान शिशु और माता दोनों के मानसिक, शारीरिक और आध्यात्मिक विकास के लिए किए जाते हैं। यह संस्कार न केवल भावी संतानों के व्यक्तित्व निर्माण में सहायक होते हैं, बल्कि समाज और राष्ट्र के भविष्य के निर्माण में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

उद्देश्य– इस शोधपत्र का मुख्य उद्देश्य महाभारत में वर्णित गर्भसंस्कार की परंपराओं का पुनरावलोकन करना और उनके माध्यम से आधुनिक समाज में बाल विकास के नवीन आयामों को प्रकट करना है। इस संदर्भ में, महाभारत के गर्भसंस्कार से संबंधित विभिन्न प्रसंगों का गहन अध्ययन एवं विश्लेषण किया गया है, जिससे यह समझा जा सके कि उस समय गर्भसंस्कार की क्या महत्ता थी और इन विधियों का बालक के मानसिक एवं शारीरिक विकास पर क्या प्रभाव पड़ता था। शोधपत्र में महाभारत के पात्रों के उदाहरणों के माध्यम से यह स्पष्ट किया गया है कि गर्भसंस्कार का उनके जीवन पर क्या प्रभाव पड़ा? और इस बात का विश्लेषण भी किया गया है कि आज के युग में गर्भसंस्कार की प्राचीन परंपराओं को कैसे प्रभावी ढंग से अपनाया जा सकता है।

कूट शब्द : महाभारत, गर्भसंस्कार, गर्भ में प्राप्त ज्ञान, गर्भसंस्कार का परिणाम, गर्भसंस्कार की उपयोगिता।

प्रस्तावना– भारतीय संस्कृति में गर्भसंस्कार का महत्त्व आदिकाल से स्वीकार किया गया है। इस परंपरा के अनुसार, गर्भावस्था के दौरान माता–पिता के विचार, व्यवहार, और मानसिक स्थिति

* शोधच्छात्रा, संस्कृत विभाग, सी. यु. शाह आर्ट्स कॉलेज, गुजरात यूनिवर्सिटी, अहमदाबाद, गुजरात।
** संस्कृत विभाग, सी. यु. शाह आर्ट्स कॉलेज, गुजरात यूनिवर्सिटी, अहमदाबाद, गुजरात।

का शिशु के जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। इस संदर्भ में, महाभारत एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है, जो न केवल धर्म, युद्ध, और नीतियों पर प्रकाश डालता है, बल्कि जीवन के अन्य महत्त्वपूर्ण आयामों को भी उजागर करता है, जिनमें गर्भसंस्कार का महत्त्व प्रमुख है। महाभारत के विभिन्न प्रसङ्ग हमें यह शिक्षा देते हैं कि गर्भावस्था के दौरान माता–पिता का आचरण और विचार शिशु के व्यक्तित्व निर्माण में किस प्रकार सहायक होते हैं।

महाभारत का मूल नाम कार्ष्ण और महाभारतकार का वास्तविक नाम कृष्णद्वैपायन था, जो एक महान् ऋषि और धार्मिक गुरु थे। कृष्णद्वैपायन को 'वेदव्यास' या 'व्यास' के नाम से भी जाना जाता है, और उन्हें 'कृष्ण द्वैपायन' भी कहा जाता है। वेदव्यास ने महाभारत को विभिन्न श्लोकों, कथाओं और उपकथाओं के रूप में प्रस्तुत किया। उन्होंने इस ग्रंथ की रचना उस समय की सामाजिक और धार्मिक पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुए की। महाभारत की रचना की अवधि को लेकर ऐतिहासिक विद्वानों के बीच विभिन्न मत हैं, हालांकि, महाभारत के मूल कथानक और उसमें वर्णित कुछ आख्यानों का ऐतिहासिक विश्लेषण कर उनकी प्राचीनता उत्तर–वैदिक युगीन साहित्य १००० ईसा पूर्व में सिद्ध की गई है। महाभारत की रचना एक लंबे समय के दौरान हुई, जिसमें इसे समय–समय पर अद्यतन और पुनरावलोकन किया गया। महाभारत का कुल आकार लगभग १,००,००० श्लोकों और १८ पर्वों का होता है, जो इसे विश्व के सबसे बड़े महाकाव्यों में से एक बनाता है, इसीलिए इसे शत–साहस्त्री संहिता भी कहते हैं। महाभारत में कथा, उपकथाएँ, और धार्मिक शिक्षाएँ शामिल हैं, जो इसे भारतीय साहित्य और संस्कृति का अमूल्य धरोहर बनाती हैं। इसी महाकाव्य में गर्भसंस्कार के महत्त्व का भी उल्लेख मिलता है, जो शिशु के मानसिक, शारीरिक और आध्यात्मिक विकास के लिए आवश्यक माने जाते हैं।

महाभारत : ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य और पृष्ठभूमि– महाभारत की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि भारतीय प्राचीन इतिहास, समाज और धर्म की गहराइयों को प्रतिबिंबित करती है। यह महाकाव्य प्राचीन भारत के सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक जीवन का विस्तृत चित्रण प्रस्तुत करता है। महाभारत की कथा कौरवों और पांडवों के बीच संघर्ष पर आधारित है, जो भारतीय प्राचीन समाज में राजनैतिक संघर्ष, राजसी महत्वाकांक्षा और धर्म के मूल्यों के महत्त्व को स्पष्ट करता है। इस महाकाव्य के माध्यम से उस समय के समाज की जटिलताओं, मान्यताओं और संघर्षों की गहरी समझ प्राप्त होती है। महाभारत की मुख्य कथा पाण्डवों और कौरवों के बीच के संघर्ष के इर्द–गिर्द केंद्रित है। पाण्डव पाँच भाई हैं – युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव तथा कौरव १०० भाई हैं, जिनमें दुर्योधन, दुःशासन आदि प्रमुख हैं। इन दोनों परिवारों के बीच संघर्ष एक महाकथा का रूप लेता है, जिसमें गहन नैतिक और धार्मिक प्रश्न उठाए गए हैं। महाभारत के केंद्रीय तत्त्व में कुरुक्षेत्र का युद्ध शामिल है, जो एक विशाल और महान् संघर्ष था। यह युद्ध १८ दिन तक चला और इसके परिणामस्वरूप सामाजिक और नैतिक मूल्यों पर गहरा प्रभाव पड़ा। युद्ध का परिणाम केवल राजनीतिक नहीं था, बल्कि धार्मिक और दार्शनिक दृष्टिकोण से भी महत्त्वपूर्ण था। महाभारत

ने भारतीय संस्कृति, धर्म और साहित्य पर गहरा प्रभाव डाला है। इस महाकाव्य की शिक्षाएँ और कथाएँ आज भी भारतीय समाज में प्रासंगिक हैं और विभिन्न सांस्कृतिक परंपराओं, धार्मिक अनुष्ठानों, और साहित्यिक कार्यों में दर्शाई जाती है।

अभिमन्यु : गर्भस्थ ज्ञान और वीरता की गाथा– अभिमन्यु अर्जुन और सुभद्रा का पुत्र था। वह महाभारत के महान् योद्धाओं में से एक था और अपने अद्वितीय साहस और युद्ध कौशल के लिए प्रसिद्ध था। जैसा कि प्रस्तुत श्लोक में वर्णित है–

ततः सुभद्रा सौभद्रं केशवस्य प्रिया स्वसा।
जयन्तमिव पौलोमी ख्यातिमन्तमजीजनत्।
दीर्घबाहुं महोरस्कं वृषभाक्षमरिंदमम्।
सुभद्रा सुषुवे वीरमभिमन्युं नरर्षभम।।[१]

महाभारत युद्ध के दौरान, कौरवों ने एक जटिल युद्ध संरचना 'चक्रव्यूह' बनाई, जिसे तोड़ने के लिए एक विशेष रणनीति की आवश्यकता थी। अर्जुन ने सुभद्रा के गर्भ में रहते हुए अभिमन्यु को इस चक्रव्यूह को तोड़ने की प्रक्रिया समझाई थी। एक प्रसङ्ग के अनुसार, जब अर्जुन सुभद्रा को चक्रव्यूह में प्रवेश करने और उसे तोड़ने की विधि समझा रहे थे, तो अभिमन्यु ने गर्भ में रहते हुए इसे सुन लिया। हालांकि, जैसे ही अर्जुन ने चक्रव्यूह से बाहर निकलने की विधि सिखानी शुरू की, सुभद्रा को नींद आ गई, जिससे अभिमन्यु ने केवल चक्रव्यूह में प्रवेश करने की विधि सीखी, बाहर निकलने की नहीं। यह घटना गर्भसंस्कार के महत्त्व को रेखांकित करती है। अभिमन्यु ने गर्भ में रहते हुए अर्जुन की बातों को सुना और सीखा, जिससे यह साबित होता है कि गर्भस्थ शिशु भी बाहरी वातावरण से प्रभावित होता है और सीख सकता है। महाभारत में यह घटना यह संदेश देती है कि गर्भावस्था के दौरान माता-पिता की गतिविधियाँ, विचार और भावनाएँ शिशु के भविष्य के विकास पर गहरा प्रभाव डाल सकती हैं। अभिमन्यु की यह कथा इस बात का प्रमाण है कि गर्भावस्था के दौरान शिशु को माता के माध्यम से जो ज्ञान मिलता है, उसका उसके जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। गर्भ में भी शिशु सुनने, समझने और सीखने की क्षमता रखता है। इस प्रकार, माता-पिता को गर्भावस्था के दौरान सकारात्मक और ज्ञानवर्धक विचारों का आदान-प्रदान करना चाहिए, क्योंकि इसका बच्चे के भविष्य पर स्थायी प्रभाव हो सकता है।

अश्वत्थामा : तप, साधना और आध्यात्मिकता का प्रभाव– महर्षि द्रोणाचार्य और उनकी पत्नी कृपी के पुत्र अश्वत्थामा का जन्म गर्भसंस्कार के दृष्टिकोण से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। द्रोणाचार्य एक महान् गुरु और अद्वितीय धनुर्धर थे और कृपी सदा अग्निहोत्र, धर्मानुष्ठान तथा इन्द्रिय-नियंत्रण में उनका साथ देती थीं, जैसा कि इस श्लोक में वर्णित है –

शारद्वतीं ततो भार्यां कृपीं द्रोणोऽन्वविन्दत।
अग्निहोत्रे च धर्मे च दमे च सततं रताम्।

अलभद् गौतमी पुत्रमश्वत्थामानमेव च।
स जातमात्रो व्यनदद् यथैवोच्चैःश्रवा हयः।।[२]

गौतमी ने कृपी से द्रोणाचार्य से अश्वत्थामा नामक पुत्र प्राप्त किया। उस बालक ने जन्म लेते ही उच्चैःश्रवा घोड़े के समान शब्द किया, जिससे वह अश्वत्थामा नाम से प्रसिद्ध हुआ। कृपी ने गर्भावस्था के दौरान ध्यान और तपस्या में समय बिताया, जिससे अश्वत्थामा को गर्भ में ही अत्यधिक आध्यात्मिक और शारीरिक शक्ति प्राप्त हुई। अश्वत्थामा का जीवन तप, शक्ति और साहस से परिपूर्ण था, लेकिन उनके जीवन में क्रोध और प्रतिशोध की भावना भी गहराई से भरी हुई थी। यह उनके व्यक्तित्व में असंतुलन का प्रतीक था, जो उनके जीवन में कुछ दुःखद घटनाओं का कारण बना। उनके क्रोध और प्रतिशोध की भावना ने उन्हें महाभारत के युद्ध में अनेक विपत्तियों की ओर धकेला, जिसमें उनकी यह विशेषताएँ उनके जीवन की दिशा को प्रभावित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

कर्ण का जन्म : मातृत्व और दैवीय आशीर्वाद की शक्ति– महाभारत में कर्ण का जन्म गर्भसंस्कार के महत्त्व को प्रदर्शित करने वाली एक महत्त्वपूर्ण कथा है। महाभारत के अनुसार, कर्ण की माता कुंती को युवावस्था में ऋषि दुर्वासा द्वारा एक विशेष वरदान प्राप्त हुआ था। इस वरदान के अनुसार, कुंती किसी भी देवता का ध्यान करके उनसे संतान प्राप्त कर सकती थी। कुंती ने इस वरदान का प्रयोग करने का निर्णय लिया और सूर्य देव को आह्वान किया। सूर्य देव शीघ्र उनके समक्ष प्रकट हो गये।

मत्प्रसादान्न ते राज्ञि भविता दोष इत्युत।
एवमुक्त्वा स भगवान् कुन्तिराजसुतां तदा।
प्रकाशकर्ता तपनः सम्बभूव तया सह।
तत्र वीरः समभवत् सर्वशस्त्रभृतां वरः।
आमुक्तकवचः श्रीमान् देवगर्भः श्रियान्वितः।।[३]

इस श्लोक के अनुसार, सूर्य देव ने कुंती को एक पुत्र प्रदान किया, जो दिव्य कवच और कुंडल के साथ जन्मा। यह पुत्र कर्ण था, जिसे 'सूर्यपुत्र' भी कहा जाता है। कर्ण का जन्म इन दिव्य कवच और कुंडल के साथ हुआ, जो उसे अत्यधिक शक्तिशाली और अजेय योद्धा बनाते थे, जैसा कि निम्न श्लोक में वर्णित है–

सहजं कवचं विभ्रत् कुण्डलोद्योतिताननः।
अजायत सुतः कर्णः सर्वलोकेषु विश्रुतः।।[४]

कुंती ने गर्भावस्था के दौरान गहन तपस्या और ध्यान का पालन किया, जिससे कर्ण में दिव्य गुणों का विकास हुआ। कर्ण एक महान् योद्धा और धर्मपालक बने, हालांकि उनका जीवन संघर्षों से भरा रहा। कर्ण के व्यक्तित्व में साहस, धैर्य और निष्ठा के गुण उनकी माता के गर्भ में रहते समय की

गई तपस्या का परिणाम थे। मातृत्व का गहरा प्रभाव कर्ण की जीवन यात्रा में स्पष्ट रूप से दिखा देता है। कुंती से प्राप्त विरासत और राधा के स्नेह ने कर्ण के व्यक्तित्व में धैर्य, साहस और सम्मान जैसे गुणों का विकास किया। उनका जीवन संघर्षों और विरोधाभासों से भरा था, लेकिन मातृत्व के प्रभाव ने उन्हें एक महान् योद्धा और दानवीर के रूप में स्थापित किया।

सत्यवती और वेदव्यास : गर्भसंस्कार द्वारा संतान का निर्माण– महाभारत में गर्भसंस्कार का एक और महत्त्वपूर्ण उदाहरण सत्यवती और उनके पुत्र वेदव्यास का प्रसंग है। सत्यवती, जो महर्षि पराशर की पत्नी थीं, उसके गर्भावस्था के दौरान गहन तप और साधना का पालन किया। उनके पुत्र वेदव्यास, जो कि महान् ऋषि और महाभारत के रचयिता बने, उनका जीवन धर्म और ज्ञान के प्रति समर्पित था। वेदव्यास का व्यक्तित्व उनकी माता की साधना का प्रतिफल था। उन्होंने महाभारत जैसे महान् ग्रंथ की रचना की, जो आज भी समाज को जीवन के विभिन्न पहलुओं पर दिशा प्रदान करता है। सत्यवती को 'मत्स्यगंधा' भी कहा जाता था, वह एक मछुआरे की बेटी थीं।[५] बाद में, ऋषि पराशर के साथ उनके मिलन से सत्यवती ने एक महान् ऋषि वेदव्यास को जन्म दिया, जैसा कि प्रस्तुत श्लोक में व्यक्त है–

पाराशर्यो महायोगी स बभूव महानृषिः।
कन्यापुत्रो मम पुरा द्वैपायन इति श्रुतः।।[६]

इस प्रकार, पराशर ऋषि के आशीर्वाद से सत्यवती को दिव्य सुगन्ध और सौन्दर्य प्राप्त हुआ, और वह 'योजनागंधा (मत्स्यमंधा)' की जगह 'सत्यवती' के नाम से प्रसिद्ध हो गयी। वेदव्यास को उनके जन्म से ही उच्चतम ज्ञान और तप की शक्ति प्राप्त थी, जिसका वर्णन निम्न प्रकार से महाभारत में किया गया है–

यो व्यस्य वेदांश्चतुरस्तपसा भगवानृषिः।
लोके व्यासत्वमापेदे कार्य्यात् कृष्णत्वमेव च।।[७]

वेदव्यास को संस्कारों और तप का साक्षात् रूप माना जाता है, जो उनके जीवन में उन्हें महान् ऋषि और महाभारत के रचयिता के रूप में स्थापित करता है। उनके जन्म से ही उनमें ज्ञान और योग की अद्वितीय शक्तियाँ थीं। उनकी माता सत्यवती का तप और उनके गर्भसंस्कारों का प्रत्यक्ष प्रभाव वेदव्यास पर पड़ा। वेदव्यास ने न केवल महाभारत की रचना की, बल्कि उन्होंने भविष्य में अपने ज्ञान और तप से धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर जैसे पुत्रों को जन्म दिया। इस प्रक्रिया में गर्भसंस्कार का महत्त्व प्रत्यक्ष रूप से देखा जा सकता है, जहाँ माता के संस्कारों ने संतानों के भविष्य और उनकी योग्यता को आकार दिया। सत्यवती बाद में राजा शांतनु की पत्नी बनीं और उनके दो पुत्र हुए– विचित्रवीर्य और चित्रांगद। लेकिन विचित्रवीर्य के संतानहीन होने के कारण, सत्यवती ने अपने पहले पुत्र वेदव्यास को बुलाया, जिन्होंने नियोग के माध्यम से धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर का जन्म कराया। वेदव्यास के गर्भसंस्कारों का प्रभाव धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर के

चरित्र और जीवन में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। धृतराष्ट्र का अंधापन, पाण्डु की शक्ति और कमजोरी और विदुर की महानता, यह सभी उनके संस्कारों और माता के गर्भसंस्कारों का परिणाम थे।

गर्भावस्था के दौरान विचारों और शिक्षा का महत्त्वपूर्ण प्रभाव– गर्भावस्था के दौरान माता–पिता की शिक्षा, विचार और मानसिकता का गर्भस्थ शिशु के विकास पर व्यापक प्रभाव पड़ता है। यह समय शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास का एक महत्त्वपूर्ण चरण होता है। सकारात्मक सोच और शिक्षा गर्भवती महिला को आत्मसंयम और आत्मप्रेरणा प्रदान करती है, जो उसके मानसिक स्वास्थ्य को लाभकारी बनाती है। तनाव, चिन्ता और नकारात्मक विचार शिशु के मानसिक विकास को बाधित कर सकते हैं, जबकि सकारात्मक विचार, प्रेम और करुणा शिशु में सुखद और सकारात्मक मानसिकता विकसित कर सकते हैं। पिता की मानसिक स्थिरता और सकारात्मक दृष्टिकोण भी गर्भस्थ शिशु पर प्रभाव डालता है। माता के साथ सहयोगात्मक और प्रेमपूर्ण संबंध शिशु के समग्र विकास के लिए महत्त्वपूर्ण हैं।

वर्तमान समय में गर्भसंस्कार के लिए आवश्यक कदम

१. **पोषणयुक्त आहार और नियमित योग :** गर्भावस्था के दौरान पोषणयुक्त आहार और नियमित योग शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है। स्वस्थ आहार और शारीरिक क्रियाएँ गर्भस्थ शिशु के विकास को सुनिश्चित करती है।

२. **सकारात्मक और शांतिपूर्ण वातावरण :** माता–पिता को गर्भावस्था के दौरान अपने आसपास का वातावरण सकारात्मक और शांतिपूर्ण रखना चाहिए। शांत और सकारात्मक वातावरण शिशु के मानसिक और भावनात्मक विकास को प्रोत्साहित करता है।

३. **शास्त्रीय संगीत और धार्मिक ग्रंथों का पाठ :** माता–पिता गर्भस्थ शिशु के लिए शास्त्रीय संगीत, धार्मिक ग्रंथों का पाठ उसे नैतिक शिक्षा प्रदान कर सकते हैं। यह शिशु के मानसिक विकास में सहायक होता है।

सकारात्मक सोच, ध्यान और स्वास्थ्य का महत्त्व

१. **सकारात्मक सोच :** सकारात्मक सोच माता के मानसिक स्वास्थ्य को बेहतर बनाती है, जिससे गर्भस्थ शिशु का भी मानसिक और शारीरिक विकास प्रभावित होता है। सकारात्मक विचार और दृष्टिकोण शिशु में आत्मविश्वास और साहस के गुणों को बढ़ाते हैं।

२. **ध्यान :** ध्यान के माध्यम से माता अपने मन और शरीर को संतुलित रख सकती है, जिससे तनाव कम होता है और शिशु का मानसिक विकास उत्कृष्ट होता है। ध्यान गर्भस्थ शिशु में मानसिक स्थिरता और आंतरिक शांति की भावना विकसित करता है।

३. **स्वास्थ्य की देखरेख :** गर्भावस्था के दौरान शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य का ख्याल रखना अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। नियमित चिकित्सा जाँच, पौष्टिक आहार और तनाव–मुक्त

जीवनशैली शिशु के स्वस्थ विकास के लिए आवश्यक है। इन सभी पहलुओं को ध्यान में रखते हुए, गर्भावस्था के दौरान शिक्षा, विचार और मानसिकता का महत्त्व गर्भस्थ शिशु के समग्र विकास के लिए अत्यधिक महत्त्वपूर्ण होता है।

निष्कर्ष– महाभारत में गर्भसंस्कार की परंपरा केवल धार्मिक या सांस्कृतिक अनुष्ठानों तक सीमित नहीं थी, बल्कि यह एक गहन मनोवैज्ञानिक और शारीरिक विकास की प्रक्रिया का हिस्सा थी। इस महाकाव्य में गर्भसंस्कार की विधियों का उल्लेख बालक के संपूर्ण व्यक्तित्व निर्माण, मानसिक स्थिरता और नैतिक मूल्य विकास के लिए किया गया है। विभिन्न पात्रों के जीवन और घटनाओं का विश्लेषण यह दर्शाता है कि गर्भसंस्कार न केवल जन्मपूर्व तैयारियों का हिस्सा था, बल्कि इसका प्रभाव जीवन पर्यन्त देखा जा सकता है। आज के समाज में भी, गर्भसंस्कार की यह प्राचीन परंपरा प्रासंगिक है, जिसमें वैज्ञानिक दृष्टिकोण और आधुनिक परिप्रेक्ष्य में इन विधियों को पुनर्जीवित करके आने वाली पीढ़ियों के सर्वांगीण विकास को सुनिश्चित किया जा सकता है।

सन्दर्भ-सूची

१. महाभारत, आदिपर्व, गीता प्रेस, गोरखपुर, अध्याय– २२०.६६, पृ. सं. ६२९
२. महाभारत, आदिपर्व, गीता प्रेस, गोरखपुर, अध्याय– १२९.४७, पृ. सं. ३९०
३. महाभारत, आदिपर्व, गीता प्रेस, गोरखपुर, अध्याय– १०४.१८, पृ. सं. ३३४
४. महाभारत, आदिपर्व, गीता प्रेस, गोरखपुर, अध्याय– १०४.१९, पृ. सं. ३३४
५. संस्कृत साहित्य का इतिहास, वाचस्पति गैरोला, पृ. सं. २३४
६. महाभारत, आदिपर्व, गीता प्रेस, गोरखपुर, अध्याय– १०४.१४, पृ. सं. ३२२
७. महाभारत, आदिपर्व, गीता प्रेस, गोरखपुर, अध्याय– १०४.१५, पृ. सं. ३२२

Shodh Navneet (International Peer-Reviewed Research Journal)
ISSN : 2321-6581, Vol. XXII, January - June 2024

पाणिनीय कारक -विभक्ति

डॉ. गुंजन गर्ग*

शोध सारांश : संस्कृत जगत् में आचार्य पाणिनि और उनकी अमर रचना अष्टाध्यायी सर्वप्रसिद्ध है। वर्तमान में संस्कृत व्याकरण की आधारशिला यही अष्टाध्यायी है। जो पाणिनीय व्याकरण के नाम से प्रसिद्ध है। पाणिनि ने अष्टाध्यायी में संस्कृत वाक्य संरचना के आधारभूत तत्त्व कारक और विभक्ति पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। आचार्य पाणिनि ने अष्टाध्यायी के प्रथम अध्याय के चतुर्थ पाद में कारक विषयक सूत्रों को तथा द्वितीय अध्याय के तृतीय पाद में विभक्ति संज्ञक सूत्रों को निबद्ध किया है। इनका विस्तृत अध्ययन करना ही इस शोध पत्र का प्रतिपाद्य विषय है।

मुख्य बिन्दु : आचार्य पाणिनि, अष्टाध्यायी, कारक, विभक्ति, अपादान, सम्प्रदान, करण, अधिकरण, कर्म, कर्ता, द्वितीया, चतुर्थी, तृतीया, पञ्चमी, सप्तमी, प्रथमा और षष्ठी विभक्ति आदि।

संस्कृत व्याकरण–जगत् को अपनी ज्ञान प्रभा से आलोकित करने वाले आचार्य पाणिनि सर्वश्रेष्ठ वैयाकरण थे, जिन्होंने अपनी अमर रचना अष्टाधायी के द्वारा समस्त परवर्ती संस्कृत वैयाकरणों को और संस्कृत साहित्यकारों को भी एक नया व्याकरणात्मक आयाम दिया। जिसके माध्यम से वे अपनी कृतियों को एकठोस व्याकरणपरक नींव दे सकते थे। उन्हीं की यश पताका की छाया में समस्त संस्कत साहित्य परिपल्लवित और पुष्पित होने लगा। आचार्य पाणिनि ने अष्टाध्यायी में संस्कृत वाक्य संरचना के आधारभूत तत्त्व कारक और विभक्ति पर पर्याप्त प्रकाश डाला है।

आचार्य पाणिनि ने अष्टाध्यायी के प्रथम अध्याय के चतुर्थ पाद में १.४.२३ से १.४.५५ सूत्र तक कारक विषयक सूत्रों को तथा द्वितीय अध्याय के तृतीय पाद में विभक्ति संज्ञक सूत्रों को निबद्ध किया है। 'कारके' (१.४.२३) के अधिकार में ३२ कारक सूत्रपठित हैं, जिनमें क्रमशः अपादान, सम्प्रदान, करण, अधिकरण, कर्म तथा कर्ता कारक वर्णित हैं। प्रधान संज्ञा सूत्रों के साथ अपवाद सूत्रों को भी उल्लिखित किया गया है। इसी प्रकार 'अनभिहिते' (२.३.१) के अधिकार में क्रमशः द्वितीया, चतुर्थी, तृतीया, पञ्चमी और सप्तमी विषयक सूत्र और अपवाद सूत्रों को बताया गया है। तदनन्तर प्रथमा और षष्ठी विभक्ति के सूत्र विवेचित हैं। अष्टाध्यायी में उल्लिखित सूत्रानुसार कारक और विभक्ति सम्बन्धी अध्ययन निम्न हैं –

कारक– (१) अपादान कारक– अप और आ उपसर्गपूर्वक 'दा'[१] धातु से भाववाचक

---

* सह–आचार्य, संस्कृत, राजकीय महाविद्यालय करौली, राजस्थान

'ल्युट्'[२] प्रत्यय के योग से 'अपादान' शब्द प्राप्त होता है, जिसका व्युत्पत्तिजन्य अर्थ है – अपादीयते पृथक् क्रियते। आचार्य पाणिनि अपादान का लक्षण करते हैं – **ध्रुवमपायेऽपादानम्**[३] अर्थात् अपाय (विश्लेष) होने पर जो पदार्थ अवधि हो, वह अपादान होता है, जैसे – वृक्षात् पर्णं पतति। यहाँ पतन क्रिया में पर्ण का अवधि वृक्ष से विश्लेष होने के कारण वृक्ष की अपादान संज्ञा हो जाती है।

भयार्थक और त्राणार्थक धातुओं के योग में भय के हेतु को,[४] परा उपसर्गपूर्वक जि धातु के प्रयोग में जो पदार्थ असह्य हो उसको,[५] वारणार्थक धातुओं के योग में जिससे वारण ईप्सित हो[६] उस कारक को अपादान संज्ञा होती है। व्यवधान होने पर जिससे छिपना अभीष्ट हो,[७] नियमपूर्वक विद्या स्वीकार करने में जिससे विद्या ग्रहण की जाय (आख्यात)[८] उस कारक को अपादान हो जाता है। जन्म लेने वाले कर्ता की प्रकृति[९] तथा प्रथम प्रकटन कर्ता[१०] अपादानसंज्ञक होता है।

इस प्रकार अष्टाध्यायी के कारकाधिकार में सर्वप्रथम अपादान कारक का (१.४.२४ से १.४.३१ सूत्र तक) वर्णन हुआ है।

२. **सम्प्रदान कारक :** सम् और प्र उपसर्गपूर्वक 'दा' धातु से 'ल्युट्' प्रत्यय का योग करने पर सम्प्रदान शब्द निष्पन्न होता है। इसका शाब्दिक अर्थ है – सम्यक् प्रदीयतेऽस्मै। सम्प्रदान संज्ञा करने वाला प्रधान सूत्र है – **कर्मणा यमभिप्रति स सम्प्रदानम्**'[११] अर्थात् दान क्रिया के कर्म के साथ कर्ता जिसे सम्बद्ध करना चाहता है, उसको सम्प्रदान संज्ञा होती है। इसकी वृत्ति की जाती है– 'कर्मणा करणभूतेन कर्ता यमभिप्रैति तत्कारकं सम्प्रदानसंज्ञं भवति।[१२] यथा– विप्राय गां ददाति। यहाँ कर्ता दान क्रिया के कर्म विप्र को सम्बद्ध करता है। अतः विप्र की संप्रदान संज्ञा होती है।

भाष्यकार के मत में किसी भी धातु के कर्ममात्र से अभिप्रेयमाण की संप्रदान संज्ञा हो जाती है।[१३] यथा– गुरवे पत्रं लिखति। देवदत्ताय कृपाज्जलम् आनयति। इसके अतिरिक्त भी सम्प्रदान संज्ञा का विधान अष्टाध्यायी में किया गया है। रुचि अर्थ वाली धातुओं का प्रयोग होने पर प्रीयमाण (जिसको प्रसन्न या तृप्त किया जाये),[१४] श्लाघ्, ह्नुङ्, स्था, शप् धातुओं के प्रयोग में ज्ञीप्स्यमान (जिसको बोध कराना अभीष्ट हो),[१५] धारि धातु के प्रयोग में उत्तमर्ण (ऋणदाता),[१६] स्पृह् धातु का प्रयोग होने पर ईप्सित[१७] और क्रुध्, द्रुह्, ईर्ष्या, असूयार्थक धातुओं के प्रयोग में जिसके प्रति कोप किया जाये[१८] वह कारक सम्प्रदान हो जाता है। इसी प्रकार राध् और ईक्ष् धातुओं के प्रयोग में जिसके सन्दर्भ में (शुभाशुभ हेतु) विविध प्रश्न किये जाये उस कारक को[१९] तथा प्रति, आङ् उपसर्गपूर्वक श्रु धातु[२०] और अनु, प्रति उपसर्गपूर्वक गृ धातु के प्रयोग में पूर्व प्रवर्तन रूप व्यापार के कर्ता[२१] को सम्प्रदान संज्ञा हो जाती है। परि उपसर्गपूर्वक क्री धातु के साधकतम कारक को विकल्प से सम्प्रदान होता है।[२२]

इस प्रकार आचार्य पाणिनि ने सम्प्रदान कारक को अनेक सूत्रों में गुम्फित किया है।

३. **करण कारक :** डुकृञ् करणे[२३] धातु से 'ल्युट्' प्रत्यय लगाने पर 'करण' शब्द बनता है,

जिसका व्युत्पत्तिजन्य अर्थ है – क्रियतेऽनेनेति करणम्। वहाँ करण संज्ञा करने वाला प्रमुख सूत्र है– **साधकतमं करणम्**[२४] अर्थात् क्रिया की सिद्धि में प्रकृष्ट उपकार करने वाला कारक करण कहलाता है। काशिकाकार के शब्दों में **'क्रियासिद्धौ यत् प्रकृष्टोपकारकं विवक्षितं तत्साधकतमं कारकं करणसंज्ञं भवति।**[२५] जैसे– रामेण बाणेन हतो बाली। यहाँ बाण के प्रवेश व्यापार के अनन्तर ही बाली के मरणरूप हनन कार्य की सिद्धि हो जाती है। उपर्युक्त उदाहरण में राम तथा बाली भी हनन क्रिया में सहायक हैं, किन्तु बाण के प्रवेश करने के तुरन्त बाद ही हनन रूप कार्य हो जाता है।

अन्यान्य कारक भी करणत्व की विवक्षा में करण रूप प्राप्त कर सकते हैं। जैसे– स्थाल्या पच्यत। अष्टाध्यायी में अन्य सूत्रों में भी वैकल्पिक रूप से करण संज्ञा को बताया गया है। दिव् धातु के साधकतम की करण और कर्म संज्ञा[२६] तथा परि उपसर्गपूर्वक क्री धातु के साधकतम की करण और विकल्प से संप्रदान संज्ञा भी ग्रन्थकार को अभीष्ट है।

४. **अधिकरण कारक :** अधिपूर्वक 'कृ' धातु से अधिकरण अर्थ में 'ल्युट्' प्रत्यय के योग से अधिकरण शब्द निष्पन्न होता है, जिसका निर्वचन किया जाता है – अधिक्रियते (क्रियाः) यस्मिन् अर्थात् जिसमें क्रिया का निवास अथवा आश्रय है। कारक प्रकरण में अधिकरण संज्ञा करने वाला प्रधान सूत्र है – **'आधारोऽधिकरणम्'**[२७] क्रिया का आधार अधिकरण कहलाता है। क्रिया का साक्षात् आधार तो कर्ता और कर्म होते हैं, किन्तु क्रिया की सिद्धि से पूर्व कर्ता और कर्म का किसी पर आश्रित होना आवश्यक है, वही आधार अधिकरण कहलाता है या दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि कर्ता और कर्म का आधार ही परोक्ष रूप से क्रिया की सिद्धि में सहायक होने से उस क्रिया का आधार हो जाता है, जैसा कि काशिका में कहा गया है – **'आश्रियन्तेऽस्मिन् क्रिया गुणः इत्याधारः। कर्तृकर्मणोः क्रियाश्रयभूतयोर्धारणक्रियाम् प्रति य आधारस्तत्कारक-मधिकरणसंज्ञं भवति।**[२८] उदाहरणानुसार–कटे आस्ते, कटे शेते। यहाँ आस् और शीङ् क्रिया के (अपरोक्ष) आधार कट की अधिकरण संज्ञा हुई है। इस अधिकरण के तीन रूप प्रसिद्ध हैं –

(क) अभिव्यापक – तिलेषु तैलम्।

(ख) औपश्लेषिक –कटे आस्ते।

(ग) वैषयिक – मोक्षेषु इच्छास्ति।

अष्टाध्यायी में कारक प्रकरणान्तर्गत अधिकरण संज्ञा करने वाला यह एकमात्र सूत्र है। आचार्य पाणिनि ने इसी सूत्र के साथ पठित तीन अन्य सूत्रों में अधिकरण संज्ञा के स्थान पर कर्म संज्ञा का विधान किया है।[२९]

५. कर्म कारक : कर्म शब्द 'डुकृञ् करणे' धातु से 'मनिन्' प्रत्यय'[३०] करने से निष्पन्न होता है। इसका शाब्दिक अर्थ है – क्रिया। आचार्य पाणिनि द्वारा अष्टाध्यायी में कर्म संज्ञा विधायक सूत्र गुम्फित किया है– **कर्तुरीप्सिततमं कर्म।**[३१] अर्थात् कर्ता का अभीष्टतम कारक कर्म कहलाता है।

क्रिया के द्वारा ही फलप्राप्ति होने के कारण गम्यमान क्रिया पद को भी स्वीकार करते हुए काशिकाकार वृत्ति करते हैं- **कर्तुः क्रियया यदाप्तुमिष्टतमं तत्कारकं कर्मसंज्ञं भवति।**[३२] **यथा- कटं करोति। ग्रामं गच्छति।** यहाँ क्रिया द्वारा कर्ता का ईप्सिततम कट और ग्राम होने के कारण उनकी कर्म संज्ञा हो जाती है। अन्यत्र भी कर्मसंज्ञा को अष्टाध्यायी में बताया गया है। अनीप्सित (उदासीन और द्वेष्य) की कर्मसंज्ञा की है।[३३] कुछ विशेष धातुओं के साथ अपादानादि कारकों की अविवक्षा में (प्रधान कर्म के साथ) गौण कर्म की प्राप्ति होती है।[३४] गत्यर्थक, बुद्ध्यर्थक, प्रत्यवसानार्थक (भोजनार्थक), शब्दकर्मक, अकर्मक (देशकालकर्मयुक्त)[३५], हृ, कृ[३६] धातुओं के अण्यन्तावस्था के कर्ता को ण्यन्तावस्था में कर्म हो जाता है।

आचार्य पाणिनि ने अन्यान्य कारकों में भी कर्मसंज्ञा का विधान किया है। जैसे सोपसर्ग क्रुध् और द्रुह् धातु के सम्प्रदान, दिव् धातु के साधकतम, अधि उपसर्गपूर्वक शीङ्, स्था, आस्, अभि, नि उपसर्गपूर्वक विश् धातु और उप, अनु, अधि, आङ्, उपसर्गपूर्वक वस् धातु[३७] के आधार की कर्मसंज्ञा हो जाती है। इस प्रसंग में अन्य कारकों के अपवाद रूप में और कहीं-कहीं वैकल्पिक रूप में कर्मसंज्ञा का विधान किया है।

६. कर्ता कारक - कर्ता शब्द 'डुकृञ् करणे' धातु से 'तृच्'[३८] प्रत्यय के योग से प्राप्त होता है। इसका शाब्दिक अर्थ है - करने वाला। किसी भी कार्य को करने वाला कर्ता स्वयं में स्वतंत्र होता है। इसी कारण आचार्य पाणिनि कहते हैं - **'स्वतंत्रः कर्ता'**[३९] अर्थात् **'क्रियायां स्वातन्त्र्येण विवक्षितोऽर्थः कर्ता स्यात्।** क्रिया (कार्य) को करने में स्वतंत्र कारक ही कर्ता कहलाता है। स्वतंत्र पद का अर्थ प्रधान ग्रहण करते हुए भाष्य में कहा गया है - **तद्यः प्राधान्ये वर्तते तन्त्रशब्दस्तस्येदं ग्रहणम्।**[४०] काशिकाकार भी स्वतंत्र पद से प्रधान को स्वीकार करते हैं - **स्वतन्त्रः इति प्रधानभूत उच्यते। अगुणीभूतो यः क्रियासिद्धौ स्वातन्त्र्येण विवक्ष्यते तत्कारकं कर्तृसंज्ञं भवति।**[४१]

उदाहरणतः 'देवदत्तः काष्ठैः ओदनं पचति।' यहाँ काष्ठरूप करण और ओदनरूप कर्म की विद्यमानता होने पर भी पचति क्रियारूप कार्य में देवदत्त रूप कर्ता की स्वतंत्रता विवक्षित होने से उसकी कर्ता कारक संज्ञा प्राप्त होती है। इसी प्रकार स्थाली पचति, काष्ठानि पचन्ति आदि वाक्यों में भी स्थाली, काष्ठानि में कर्ता की विवक्षा ही प्रधान है।

कर्ता संज्ञा करने वाले एक सूत्र को भी अष्टाध्यायी में उद्धृत किया गया है - **तत्प्रयोजको हेतुश्च**[४२] अर्थात् कर्ता का प्रेरक हेतु और कर्तृसंज्ञक दोनों होता है।

विभक्ति- आचार्य पाणिनि ने कारकों के विवेचन के पश्चात् द्वितीय अध्याय के तृतीय पाद में (२.३.१ से २.३.७३ सूत्र तक) विभक्तियों का वर्णन किया है। उन्होंने कारकों के साथ विभक्तियों का वर्णन नहीं किया है। सम्भवतः आकडारादेका संज्ञा (१.४.१) सूत्रानुसार एक संज्ञाधिकार में विभक्ति निर्देश करना आचार्य पाणिनि को अभीष्ट नहीं था। आचार्य पाणिनि ने

प्रथमतः अनभिहित अधिकार में द्वितीया, चतुर्थी, तृतीया, पञ्चमी और सप्तमी विभक्तियों का वर्णन किया है। तत्पश्चात् प्रातिपदिकार्थादि में प्रथमा तथा शेष अर्थ में षष्ठी विभक्ति को निर्धारित किया है, जो इस प्रकार है –

१. द्वितीया विभक्ति

(क) कारक विभक्ति – कर्म कारक में द्वितीया विभक्ति का विधान करने वाला प्रमुख सूत्र है– **कर्मणि द्वितीया**[४३] अर्थात् अनभिहित कर्म में द्वितीया विभक्ति होती है। यह सूत्र कर्म कारक के प्रसंग में विवेचित समस्त ईप्सिततम–अनीप्सित–अकथितादि कर्मों में द्वितीया विभक्ति का विधान करता है। यथा– कटं करोति (ईप्सिततम),[४४] ग्रामं गच्छन् तृणं स्पृशति (अनीप्सित),[४५] गां दोग्धि पयः (अकथित),[४६] हरिः वैकुण्ठमध्यास्ते (अधि+आस्),[४७] सन्मार्गमभिनिविशते (अभि नि+विश),[४८] हरिः वैकुण्ठमावसति (आ+वस्),[४९] शत्रून् स्वर्गम् अगमयत् (गत्यर्थक),[५०] भृत्येन भृत्यं वा भारं हारयति (हृ)।[५१]

(ख) उपपद विभक्ति – नानाविध सूत्रों में द्वितीया उपपद विभक्ति का विधान अष्टाध्यायी में किया गया है। अनेक अर्थों में विद्यमान अनु, प्रति, परि, अभि, अधि, सु, अति, उप तथा अपि कर्मप्रवचनीयसंज्ञक[५२] पदों के योग में द्वितीया विभक्ति आती है। जैसे– जपमनु प्रावर्षत् (अनु), भक्तो विष्णुम् (प्रति), लक्ष्मी हरिं परि (परि), भक्तो हरिमभि (अभि), कुतोऽध्यागच्छति (अधि), सुसिक्तम् (सु), अति देवान्कृष्णः (अति), उप हरिं सुराः (उप), सर्पिषोऽपि स्यात् (अपि)।

अन्तरा, अन्तरेण पदों के योग में[५३] तथा अत्यन्त संयोग होने पर कालवाची और अध्ववाची शब्दों से द्वितीया विभक्ति का प्रयोग होता है।[५४] यथा अन्तरा त्वां मां हरिः, अन्तरेण हरिं न सुखम्, मासमधीते, क्रोशं कुटिला नदी।

२. चतुर्थी विभक्ति

(क) कारक विभक्ति – सम्प्रदान कारक को अभिव्यक्त करने वाली विभक्ति चतुर्थी कहलाती है। जैसा कि अष्टाध्यायी में कहा गया है – **चतुर्थी संप्रदाने**[५५] अर्थात् सम्प्रदान कारक में चतुर्थी विभक्ति आती है। उदाहरण– विप्राय गां ददाति (दा), हरये रोचते भक्तिः (रुच्यर्थक),[५६] गोपः स्मरात् कृष्णाय श्लाघते (श्लाघ्),[५७] भक्ताय धारयति मोक्षं हरिः (धारि),[५८] पुष्पेभ्यः स्पृहयन्ति (स्पृह्),[५९] हरये क्रुध्यति दुह्यति वा (क्रुध्, द्रुह्),[६०] कृष्णाय राध्यति ईक्षते वा (राध्, ईक्ष्),[६१] विप्राय गां प्रतिश्रुणोति आश्रृणोति वा (प्रतिश्रु, आश्रु),[६२] होत्रेऽनुगृणाति प्रतिगृणाति वा (अनुगृण्, प्रतिगृण्)।[६३] यहाँ सर्वत्र संप्रदान कारक में चतुर्थी विभक्ति आयी है। कुछ विशेष शर्तों के साथ अन्य कारकों में भी चतुर्थी विभक्ति का विधान पाणिनीय सूत्रों में हुआ है। जैसे परि उपसर्गपूर्वक क्री धातु के साधकतम (करण) में तृतीया विभक्ति तो आती ही है, साथ ही विकल्प से चतुर्थी विभक्ति भी प्राप्त होती है[६४] – शतेन शताय वा परिक्रीतः। इसी प्रकार 'फलेभ्यो याति' इस

उदाहरण में क्रियार्था क्रिया के उपपद रहते अप्रयुज्यमान स्थानी तुमुन् के कर्म में चतुर्थी विभक्ति आयी है।[६५] अनादर गम्यमान होने पर मन् धातु के प्राणिवर्जित कर्म में विकल्प से[६६] तथा चेष्टा रहने पर गत्यर्थक धातु के अमार्गवाची कर्म में चतुर्थी और द्वितीया विभक्ति[६७] प्राप्त होती है। इस प्रकार पाणिनीय व्याकरण में चतुर्थी कारक- विभक्ति का पर्याप्त विवेचन हुआ है।

(ख) उपपद विभक्ति - नमः, स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा, अलमर्थक, वषट् पदों के योग में[६८] तथा भावार्थ में विहित तुमुन् समानार्थक पद से[६९] चतुर्थी विभक्ति आती है। जैसे- हरये नमः, प्रजाभ्यः स्वस्ति, अग्नये स्वाहा, पितृभ्यः स्वधा, दैत्येभ्यो हरिरलं, इन्द्राय वषट्, यागाय याति।

३. तृतीया विभक्ति

(क) कारक विभक्ति - तृतीया विभक्ति करने वाला प्रमुख सूत्र **कर्तृकरणयोस्तृतीया**[७०] अर्थात् अनुक्त कर्ता और करण में तृतीया विभक्ति आती है। जैसे- रामेण बाणेन हतो बाली। यहाँ कर्मवाच्य का प्रयोग होने से कर्म बाली अभिहित है तथा कर्ता राम अनभिहित है। अतः उससे तृतीया विभक्ति आयी है। हनन क्रिया का प्रकृष्ट उपकारक होने से करण 'बाण' में भी तृतीया विभक्ति का प्रयोग हुआ है। अन्य भी तृतीया कारक विभक्ति के उदाहरण हैं - अक्षैः अक्षान् वा दीव्यति। पितरं पित्रा वा संजानीते। यहाँ प्रथम उदाहरण में करण कारक में तृतीया और विकल्प से कर्म कारक में द्वितीया विभक्ति हुई है।[७१] द्वितीय उदाहरण में कर्म कारक में द्वितीया और विकल्प से कर्म कारक में ही तृतीया विभक्ति हुई है।[७२]

(ख) उपपद विभक्ति - आचार्य पाणिनि ने कालवाचक एवं अध्ववाचक से अपवर्गार्थ में,[७३] अङ्गविकार,[७४] इत्थंभूतलक्षण,[७५] हेतुवाचक पदों से,[७६] सहार्थक पदों के योग में[७७] तृतीया विभक्ति को निर्धारित किया है। उदाहरण - अह्ना वाऽनुवाकोऽधीतः, अक्ष्णा काणः, जटाभिः तापसः, अध्यनेन वसति, पुत्रेण सहागतः पिता।

४. पञ्चमी विभक्ति

(क) कारक विभक्ति - 'अपादाने पञ्चमी'[७८] पाणिनीय सूत्र अपादान कारक में पञ्चमी विभक्ति का विधान करता है। उदाहरण- वृक्षात् पत्रं पतति। चोरात् बिभेति त्रायते वा (भयार्थक, त्राणार्थक),[७९] अध्ययनात् पराजयते (परा, जि),[८०] यवेभ्यो गां वारयति (वारि),[८१] मातुः निलीयते कृष्णः (निली),[८२] उपाध्यायादधीते,[८३] ब्राह्मणः प्रजा प्रजायन्ते (जन्),[८४] हिमवतो गङ्गा प्रभवति (प्रभू)।[८५] यहाँ समस्त उदाहारणों में अपादान कारक में पञ्चमी विभक्ति का प्रयोग हुआ है। आचार्य पाणिनि ने अन्य कारकों में भी पञ्चमी विभक्ति को निर्धारित किया है। जैसे स्तोक, अल्प, कृच्छ्र, कतिपय अद्रव्यवाची शब्दों से करण (अर्थ) में तृतीया और पञ्चमी विभक्ति आती है। यहाँ करण कारक में विकल्प से पञ्चमी विभक्ति का विधान किया गया है।

(ख) उपपद विभक्ति - उपपद पञ्चमी विभक्ति का नानाविध सूत्रों में विवेचन हुआ है। अन्यार्थक पद, आरात्, इतर, ऋते, दिक्शब्द, अञ्चूतर पद, आच्, आहि पदों के योग में,[८६] अप,

परि, आङ्, प्रति कर्मप्रवचनीय पदों के योग में,[८७] कर्तारहित ऋणवाचकशब्द से[८८] तथा विभागार्थ से[८९] पञ्चमी विभक्ति आती है। जैसे – कृष्णात् अन्यः, आरात् वनात्, ऋते कृष्णात्, पूर्वो ग्रामात्, चैत्रात् पूर्वः फाल्गुनः, दक्षिणा ग्रामात्, दक्षिणाहि ग्रामात्, अप हरेः संसारः, परि हरेः संसारः, आमुक्तेः संसारः, आ सकलाद् ब्रह्म, शताद् बद्धः, माथुराः पाटलिपुत्रकेभ्यः आढ्यतराः।

पञ्चमी विभक्ति के अन्य विभक्तियों के साथ वैकल्पिक प्रयोग भी होते हैं। पृथक्, विना, नाना पदों के योग में द्वितीया, तृतीया, पञ्चमी विभक्ति तथा दूरार्थक, अन्तिकार्थक पदों में द्वितीया, तृतीया, पञ्चमी विभक्ति और दूरार्थक, अन्तिकार्थक पदों के योग में पञ्चमी और षष्ठी विभक्ति विकल्प से प्राप्त होती है। इसी प्रकार गुणवाचक अ–स्त्रीलिङ्ग हेतु पद से तथा कहीं–कहीं गुणरहित हेतु और स्त्रीलिङ्ग हेतु पद से विकल्प से पञ्चमी विभक्ति आती है।[९०]

५. सप्तमी विभक्ति

(क) कारक विभक्ति – आचार्य पाणिनि ने अधिकरण कारक में सप्तमी विभक्ति का विधान किया है। जैसा कि उन्होंने सूत्रबद्ध किया है – **'सप्तम्यधिकरणे च'**[९१] अर्थात् अधिकरण में सप्तमी विभक्ति हो। यथा कटे आस्ते, स्थाल्यां पचति, मोक्षे इच्छास्ति। यहाँ चकार से दूरार्थक और अन्तिकार्थक पदों में सप्तमी विभक्ति का ग्रहण होता है, जो कि उपपद विभक्ति के अन्तर्गत आता है।

(ख) उपपद विभक्ति – दूरार्थक और अन्तिकार्थक पदों में,[९२] एक क्रिया से दूसरी क्रिया के लक्षित होने पर,[९३] साधु, निपुण पदों के योग में[९४] तथा अधि, उप कर्मप्रवचनीय पदों के योग में[९५] सप्तमी विभक्ति आती है। कुछ अन्य पदों के योग में सप्तमी विभक्ति के साथ अन्यान्य विभक्तियाँ भी विकल्प से प्राप्त होती है। जैसे एक क्रिया से दूसरी क्रिया के लक्षित होने के साथ यदि अनादरार्थ प्रतीत हो तो षष्ठी और सप्तमी विभक्तियाँ विकल्प से प्राप्त होती है।[९६] इसी प्रकार स्वामी, ईश्वर, अधिपति, दायाद, साक्षि, प्रतिभू, प्रसूत, आयुक्त, कुशल के योग में, निर्धारणार्थ में षष्ठी और सप्तमी दोनों विभक्तियाँ विकल्प से आती हैं।[९७] प्रसित, उत्सुक पदों के योग में, लुप् के विषय में नक्षत्रवाची के अधिकरण कारक में तृतीया और सप्तमी विभक्ति आती है और कारक शक्तियों के बीच में कालाध्ववाचक शब्दों से पञ्चमी और सप्तमी विभक्ति का प्रयोग होता है।[९८]

६. प्रथमा विभक्ति

(क) कारक विभक्ति – आचार्य पाणिनि ने **'प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा'**[९९] सूत्र द्वारा प्रथमा विभक्ति का विधान किया है, जिनके अनुसार प्रातिपदिकार्थ, लिङ्गमात्र की अधिकता, परिमाणमात्र की अधिकता और वचनमात्र में प्रथमा विभक्ति होती है, जैसे–उच्चैः, नीचैः, कृष्णः, श्रीः, ज्ञानम्। तटः तटी तटम्। द्रोणो व्रीहिः। एकः द्वौ, बहवः। आचार्य पाणिनि ने कर्मादिवत् पृथक् रूप से कर्ता में प्रथमा विभक्ति का निर्धारण नहीं किया, किन्तु अभिहित होने पर और तिङ् विभक्ति के समानाधिकरण में प्रथमा विभक्ति को माना है। जैसा कि महाभाष्य में कहा

गया है- '**प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमालक्षणे पदसमानाधिकरण्य उपसंख्यानमधिकत्वात्। अथवाभिहिते प्रथमेत्येतल्लक्षणं करिष्यते।**[१००]

प्रथमा विभक्ति का प्रयोग कर्ता और कर्म में ही होता है। यथा तण्डुलाः (कर्ता) सन्ति। तण्डुलाः (कर्म) पच्यन्ते। किन्तु साथ ही कर्तृत्व विवक्षा में करणादि कारकों से भी प्रथमा विभक्ति होती है, जैसे- स्थाली पचति आदि।

(ख) उपपद विभक्ति - सम्बोधन में वर्तमान प्रातिपदिक से प्रथमा विभक्ति आती है। जैसा कि सूत्रबद्ध किया गया है - **सम्बोधने च।**[१०१] सम्यक् बोधनम्-सम्बोधनम् अभिमुखीकरणम् के अनुसार किसी को सम्यक् प्रकार से अपनी ओर आकृष्ट करना सम्बोधन कहलाता है और उस सम्बोधन पद में आने वाली प्रथमा विभक्ति प्रातिपदिक से अधिक सम्बोधन मात्र का बोध कराती है। जैसे - हे राम! इस प्रकार प्रथमा विभक्ति निरूपित है।

७. षष्ठी विभक्ति - आचार्य पाणिनि ने कर्ताकर्मादिवत् षष्ठी को कारक नहीं माना, किन्तु शेष अर्थ में षष्ठी विभक्ति का विधान किया है - **षष्ठी शेषे।**[१०२] काशिका में इसके सन्दर्भ में कहा गया है - **कर्मादिभ्यो योऽन्यः प्रातिपदिकार्थव्यतिरिक्तः स्वस्वामिसम्बन्धः**[१०३] अर्थात् कर्मादि कारक और प्रातिपदिकार्थ से अतिरिक्त स्व-स्वामी सम्बन्ध शेष है और उसमें षष्ठी विभक्ति होती है। महाभाष्य में भी कहा गया है - **कर्मादिभ्यो येऽन्येऽर्थाः स शेषः।**[१०४]

यहाँ कारक और प्रातिपदिकार्थ से अतिरिक्त सम्बन्ध मात्र की विवक्षा होती है। क्रियाकारकपूर्वक होने पर भी यह सम्बन्ध कारकेतर होता है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं, कि क्रिया और कारक में स्वभावतः सदासिद्ध सम्बन्ध होता है। कर्मत्व, करणत्वादिविशिष्ट रूप में यह सम्बन्ध अभिव्यक्त होता है। किन्तु जब इनकी अविवक्षा कर इनसे अतिरिक्त सम्बन्ध को कहना हो, तो वही शेष है और उसमें षष्ठी विभक्ति आती है। यह षष्ठी विभक्ति दो प्रकार की होती है -

अ. प्रतिपदविधानषष्ठी - यह क्रियापदों के साथ आने वाली षष्ठी है। यहाँ कर्मादि कारकों के अर्थ का निराकरण हो जाता है और शेषत्व विवक्षा से सम्बन्ध ही प्रमुख होता है। जैसे- एधोदकस्योपस्करणम् (एधोदक सम्बन्धी गुणाधान)।

ब. कृद्योग षष्ठी - कृदन्त पदों के योग में कारकों में षष्ठी विभक्ति आती है। यहाँ कारकों का अर्थ तो विद्यमान रहता है, केवल विभक्ति परिवर्तन होता है, क्योंकि यहाँ शेषत्व विवक्षा नहीं होती। इसी कारण इसे कारक षष्ठी भी कहते हैं, जैसे- जगतः कर्ता। यहाँ पर कर्म जगत् पद में कर्ता शब्द में प्रयुक्त कृत् प्रत्यय (तृच्) के योग से षष्ठी विभक्ति आयी है, जो 'संसार को करने वाला' इस रूप में कर्म को ही अभिव्यक्त कर रही है।

(क) कारक विभक्ति - द्यूतार्थक और क्रयविक्रयार्थक दिव् धातु के कर्म में षष्ठी विभक्ति का विधान किया गया है।[१०५] सोपसर्ग 'दिव्' धातु के साथ विकल्प से षष्ठी विभक्ति प्राप्त होती है।[१०६] देवता संप्रदान अर्थ में वर्तमान प्रेष्य और ब्रू धातु के कर्म में[१०७] तथा कृत्प्रत्ययान्त

(कृदन्त) के साथ योग होने पर कर्ता और कर्म में षष्ठी विभक्ति होती है तथा एक ही कृत्प्रत्ययान्त के योग में (अनुक्त) कर्ता और (अनुक्त) कर्म के उपस्थित होने पर (अनुक्त) कर्म में ही षष्ठी विभक्ति होती है।[१०८] वर्तमान अर्थ को कहने वाले 'क्त' प्रत्ययान्त के योग में कर्ता में और आधारवाची 'क्त' प्रत्ययान्त के योग में कर्ता और कर्म में षष्ठी विभक्ति आती है।[१०९] कृदन्त के योग में कुछ निषेध भी हैं।[११०] इसी कारण यहाँ कुछ विशेष शर्तों का ध्यान रखना पड़ता है। इसके अतिरिक्त कृत्य प्रत्ययान्त के योग में कर्ता में षष्ठी विभक्ति आती है।[१११] सम्बन्ध के कारक न होने से यहाँ अन्य कारकों के अर्थों में ही षष्ठी विभक्ति होती है, सम्बन्ध में नहीं। इसी कारण यहाँ शेषत्व अधिकार नहीं होता।

(ख) उपपद विभक्ति - शेष अर्थ में[११२] (स्व-स्वामी आदि सम्बन्ध और कारकान्तर अविवक्षा में), हेतु शब्द का प्रयोग होने पर और हेतु द्योत्य होने पर,[११३] अतसर्थक प्रत्ययान्त के योग में षष्ठी विभक्ति होती है।[११४] अविदर्थक ज्ञा धातु के करण में,[११५] अधीगर्थ (स्मरणार्थक), दय्, ईश् धातुओं के कर्म में,[११६] प्रतियत्न (गुणाधान) में कृ धातु के कर्म में,[११७] ज्वर् धातु से अतिरिक्त रुजा अर्थ वाले भाववचनों के योग में कर्म में,[११८] आशीः (आर्शीवाद) अर्थक नाथ् धातु के कर्म में,[११९] हिंसार्थक जासि, नि प्र हन् नाट्, क्राथ्, पिष् धातुओं के कर्म में,[१२०] द्यूत एवं क्रयविक्रयार्थक वि, अव उपसर्गपूर्वक हृ तथा पण् धातुओं के कर्म में तथा कृत्वसुच् के अर्थ वालों के प्रयोग में कालवाची अधिकरण में,[१२१] शेषत्व विवक्षा में षष्ठी विभक्ति होती है। जैसे- सतां गतम् (कर्म की शेषत्व विवक्षा)। अन्नस्य हेतोर्वसति। ग्रामस्य दक्षिणतः (अतसर्थक)। सर्पिषो ज्ञानम् (अविदर्थक ज्ञा)। मातुः स्मरणम् (अधीगर्थ)। एधोदकस्योपस्करणम् (कृ)। चौरस्य रोगस्य रुजा (रुज्)। सर्पिषो नाथनम् (नाथ्)। चौरस्योज्जासनम् (जासि)। शतस्य व्यवहरणम् (व्यवहृ)। पञ्चकृत्वोऽह्नो भोजनम् (कृत्वसुच् अर्थक)।

कुछ पदों के योग में विकल्प से षष्ठी विभक्ति प्राप्त होती है। जैसे सर्वनाम तथा हेतु शब्द के (साथ-साथ) प्रयोग होने पर और हेतु द्योत्य होने पर तृतीया और षष्ठी विभक्ति,[१२२] एनप् प्रत्ययान्त के योग में द्वितीया और षष्ठी विभक्ति,[१२३] दूरार्थक और अन्तिकार्थक पदों के योग में पंचमी और षष्ठी विभक्ति,[१२४] तुला एवं उपमा को छोड़कर तुल्यार्थक शब्दों के योग में तृतीया और षष्ठी विभक्ति[१२५] और आशीर्वाद अर्थ में प्रयुक्त आयुष्य, कुशल, मद्र, भद्र, सुख, अर्थ, हित शब्दों से चतुर्थी और षष्ठी विभक्ति विकल्प से होती है।[१२६]

इस प्रकार अष्टाध्यायी में षष्ठी विभक्ति पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। निष्कर्षतः कहा जा सकता है, कि पाणिनीय व्याकरण में कारक और विभक्ति की अवधारणा पर पर्याप्त विचार हुआ है। सूत्रबद्ध शैली में निबद्ध इस व्याकरण ग्रंथ अष्टाध्यायी में ३३ सूत्रों में कारक, १६ सूत्रों में कर्मप्रवचनीय और ७३ सूत्रों में विभक्ति को बताया गया है। जो सूत्र संख्या इसकी महत्ता को स्वयं ही प्रतिपादित करती है। यह विवेचन हमें वाक्य-विन्यास की आधार शिला प्रदान करता है। जो किसी भी भाषा आधारभूत तत्त्व है। संस्कृत भाषा के सम्यक् अधिगम के लिये व्याकरण के इस

अनिवार्य तत्त्व का अध्ययन आवश्यक है। यह कारक और विभक्ति आचार्य पाणिनि की कोई नूतन अवधारणा नहीं है, अपितु वेदादि ग्रन्थों में अनुस्यूत तत्त्व ही है, जिसको आचार्य पाणिनि से पूर्ववर्ती वैयाकरणों द्वारा भी स्वीकार किया गया और वर्णित किया गया। किन्तु उस तत्त्व को और अधिक स्पष्ट रूप से जनहृदयवेद्य बनाने के लिये तथा संस्कृत भाषा के स्वरूप को सरल रूप में अभिव्यक्त करने के लिये ही आचार्य पाणिनि ने उसे सूत्रों में निबद्ध कर एक परिधि प्रदान की। साथ ही यह भी उल्लेखनीय है, कि निश्चित शर्तों में वक्ता की विवक्षा के अनुसार कारक और विभक्ति के नियमों का क्षेत्र भी बढ़ जाता है।

सन्दर्भ

१. पाणिनि, धातु, जुहोत्यादि,१०९१
२. ल्युट् च, ३.३.११५
३. अष्टाध्यायी, १.४.२४
४. भीत्रार्थानां भयहेतुः, १.४.२५
५. पराजेरसोढः, १.४.२६
६. वारणार्थानामीप्सितः, १.४.२७
७. अन्तर्धौ येनादर्शनमिच्छति, १.४.२८
८. आख्यातोपयोगे, १.४.२९
९. जनिकर्तुः प्रकृतिः, १.४.३०
१०. भुवः प्रभवः, १.४.३१
११. अष्टाध्यायी, १.४.३२
१२. काशिका, १.४.३२
१३. यमभिप्रैति स संप्रदानम् इतीयत्युच्यमाने कर्मण एव संप्रदानसंज्ञा प्रसज्येत। कर्मग्रहणे पुनः क्रियमाणे न दोषो भवति। महाभाष्य, १.४.३, भाग २, पृ. २५६
१४. रुच्यर्थानां प्रीयमाणः, १.४.३३
१५. श्लाघह्नुङ्स्थाशपां ज्ञीप्स्यमानः, १.४.३४
१६. धारेरुत्तमर्णः, १.४.३५
१७. स्पृहेरीप्सितः, १.४.३५
१८. कुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थानां यं प्रति कोपः, १.४.३७
१९. राधीक्ष्योर्यस्य विप्रश्नः, १.४.३९
२०. प्रत्याभ्यां श्रुवः पूर्वस्य कर्ता, १.४.४०
२१. अनुप्रतिगृणश्च, १.४.४१
२२. परिक्रयणे संप्रदानमन्यतरस्याम्, १.४.४४
२३. पाणिनि धातु, तनादिगण, १४७२
२४. अष्टाध्यायी, १.४.४२

२५. काशिका, १.४.४२
२६. दिवः कर्म च, १.४.४३
२७. अष्टाध्यायी, १.४.४५
२८. काशिका, १.४.४५
२९. अष्टाध्यायी. १.४.४६, ४७, ४८
३०. सर्वधातुभ्यो मनिन्, सि. कौ., उणादि सूत्र – ५८४
३१. अष्टाध्यायी, १.४.४९
३२. काशिका, १.४.४९
३३. तथायुक्तं चानीप्सितम्, १.४.५०
३४. अकथितं च, १.४.५१
दुह्याच्पच्दण्डरुधिप्रच्छिचिब्रूशासुजिमथ्मुषाम्।
कर्मयुक् स्यादकथितं तथा स्यान्नीहृकृष्वहाम्।।
३५. गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणामणि कर्ता स णौ। १.४.५२
३६. हृक्रोरन्यतरस्याम्, १.४.५३
३७. क्रुधद्रुहोरुपसृष्टयोः कर्म, १.४.३८, दिवः कर्म च, १.४.४३, अधिशीङ्स्थासां कर्म, १.४.४६, अभिनिविशश्च, १. ४.४७, उपान्वध्याङ्वसः, १.४.४८
३८. ण्वुल्तृचौ, ३.१.१३३
३९. अष्टाध्यायी, १.४.५४
४०. महाभाष्य, १.४.३, भाग २, पृ. २७७
४१. काशिका, १.४.५४
४२. अष्टाध्यायी, १.४.५५
४३. अष्टाध्यायी, २.३.२
४४. वही, १.४.४९
४५. वही, १.४.५०
४६. वही, १.४.५१
४७. वही, १.४.४६
४८. वही, १.४.४७
४९. वही, १.४.४८
५०. वही, १.४.५२
५१. वही, १.४.५३
५२. अनुर्लक्षणे, १.४.८४, तृतीयार्थे, १.४.८५, हीने, १.४.८६, लक्षणेत्थंभूताख्यानभागवीप्सासु प्रतिपर्यनवः, १.४.९०, अधिपरी अनर्थकौ, १.४.९३, अभिरभागे, १.४.९१, सुः पूजायाम्, १.४.९४, अतिरतिक्रमणे च, १.४.९५, उपोऽधिके च, १.४.८७, अपिः पदार्थसंभावनान्वसर्ग गर्हा समुच्चयेषु, १.४.९६, कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया, २.३.८।

५३. अन्तरान्तेण युक्ते, २.३.४,
५४. कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे, २.३.५
५५. अष्टाध्यायी, २.३.१३
५६. वही, १.४.३३
५७. वही, १.४.३४
५८. वही, १.४.३५
५९. वही, १.४.३६
६०. वही, १.४.३७
६१. वही, १.४.३९
६२. वही, १.४.४०
६३. वही, १.४.४१
६४. वही, १.४.४४
६५. क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः, २.३.१४
६६. मन्यकर्मण्यनादरे विभाषाऽप्राणिषु, २.३.१७
६७. गत्यर्थकर्मणि द्वितीयाचतुर्थ्यौ चेष्टायामनध्वनि, २.३.१२
६८. नमः स्वस्तिस्वाहास्वधाऽलंवषट्योगाच्च, २.३.१६
६९. तुमर्थाच्च भाववचनात्, २.३.१५
७०. अष्टाध्यायी, २.३.१८
७१. दिवः कर्म चः, १.४.४३
७२. संज्ञोऽन्यतरस्यां कर्मणि, २.३.२२
७३. अपवर्गे तृतीया, २.३.६
७४. येनाङ्गविकारः, २.३.२०
७५. इत्थंभूतलक्षणे, २. ३.२१
७६. हेतौ, २.३.२३
७७. सहयुक्तेऽप्रधाने, २.३.१९
७८. अष्टाध्यायी, २.३.२८
७९. वही, १.४.२५
८०. वही, १.४.२६
८१. वही, १.४.२७
८२. वही, १.४.२८
८३. वही, १.४.२९
८४. वही, १.४.३०
८५. वही, १.४.३१
८६. अन्यारादितरतेर्दिकछब्दाञ्चूत्तरपदाजाहि युक्ते, २.३.२९

८७. अपपरी वर्जने, १.४.८८, आङ्मर्यादावचने, १.४.८९, प्रतिः प्रतिनिधिप्रतिदानयोः, १.४.९२, पञ्चम्याङपरिभिः, २.३.१०, प्रतिनिधिप्रतिदाने च यस्मात्, २.३.११

८८. अकर्तर्यृणे पञ्चमी, २.३.२४

८९. पञ्चमी विभक्ते, २.३.४२

९०. पृथग्विनानानाभिस्तृतीयाऽन्यतरस्याम्, २.३.३२, दूरान्तिकार्थेभ्यो द्वितीया च, २.३.३५, दूरान्तिकार्थैः षष्ठ्यन्तरस्याम्, २.३.३४, विभाषा गुणेऽस्त्रियाम्, २.३.२५

९१. अष्टाध्यायी, २.३.३६

९२. वही, २.३.३६

९३. यस्य च भावेन भावलक्षणम्, २.३.३७

९४. साधुनिपुणाभ्यामर्चायां सप्तम्यप्रतेः, २.३.४३

९५. अधिरीश्वरे, १.४.९७, यस्मादधिकं यस्य चेश्वरवचन तत्र सप्तमी, २.३.९, उपोऽधिके च, १.४.८७

९६. षष्ठी चानादरे, २.३.३८

९७. स्वामीश्वराधिपतिदायादसाक्षिप्रतिभूप्रसूतैश्च, २.३.३९, आयुक्तकुशलाभ्यां चासेवायाम्, २.३.४०, यतश्च निर्धारणम्, २.३.४१

९८. प्रसितोत्सुकाभ्यां तृतीया च, २.३.४४, नक्षत्रे च लुपि, २.३.४५, सप्तमीपञ्चम्यौ कारकमध्ये, २.३.७

९९. अष्टाध्यायी, २.३.४६

१००. महाभाष्य, २.३.३, भाग २, पृ. ५१५-१६

१०१. अष्टाध्यायी, २.३.४७

१०२. अष्टाध्यायी, २.३.५०

१०३. काशिका, २.३.५०

१०४. महाभाष्य, २.३.३, भाग २, पृ. ५१८

१०५. दिवस्तदर्थस्य, २.३.५८

१०६. विभाषोपसर्गे, २.३.५९

१०७. प्रेष्यब्रूवोर्हविषोदेवतासंप्रटदाने, २.३.६१

१०८. कर्तृकर्मणोः कृति, २.३.६५, उभयप्राप्तौ कर्मणि, २.३.६६

१०९. क्तस्य च वर्तमाने, २.३.६७, अधिकरणवाचिनश्च, २.३.६८

११०. न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम्, २.३.६९, अकेनोर्भविष्यदाधमर्ण्ययोः, २.३.७०

१११. कृत्यानां कर्तरि वा, २.३.७१

११२. षष्ठी शेषे, २.३.५०

११३. षष्ठी हेतुप्रयोगे, २.३.२६

११४. षष्ठ्यतसर्थप्रत्ययेन, २.३.३०

११५. ज्ञोऽविदर्थस्य करणे, २.३.५१

११६. अधीगर्थदयेशां कर्मणि, २.३.५२

११७. कृञः प्रतियत्ने, २.३.५३

११८. रुजार्थानां भाववचनानामाज्वरेः, २.३.५४

११९. आशिषि नाथः, २.३.५५

१२०. जासिनिप्रहणनाटक्राथपिषां हिंसायाम्, २.३.५६

१२१. व्यवहृपणोः समर्थयोः, २.३.५७, कृत्वोऽर्थप्रयोगे कालेऽधिकरणे, २.३.६४

१२२. सर्वनाम्नस्तृतीया च, २.३.२७

१२३. एनपा द्वितीया, २.३.३१

१२४. दूरान्तिकार्थैः षष्ठ्यन्तरस्याम्, २.३.३४

१२५. तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्यां तृतीयान्यतरस्याम्, २.३.७२

१२६. चतुर्थी चाशिष्यायुष्यमद्रभद्रकुशलसुखार्थहितैः, २.३.७३

सन्दर्भ ग्रंथसूची

- अष्टाध्यायीसूत्रपाठः, डॉ. रमाशंकर मिश्र, मोतीलाल बनरसीदास, दिल्ली, प्रथम संस्करण १९९७
- काशिकवृत्तिः, श्री नारायण मिश्र, रत्नापब्लिकेशन्स, वाराणसी, प्रथम संस्करण १९८५
- महाभाष्यम्, श्री भार्गव शास्त्र, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, नई दिल्ली, संस्करण १९८८
- वाक्यपदीयम्, पं. रघुनाथ शर्मा, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, भाग -१, तृतीय संस्करण १९८८, भाग -२, द्वितीय संस्करण १९८०, भाग -३, द्वितीय संस्करण १९९७

Shodh Navneet (International Peer-Reviewed Research Journal)
ISSN : 2321-6581, Vol. XXII, January - June 2024

संस्कृत वाङ्मय में वर्णित ईश्वर-भक्त बालक उपमन्यु के चरित का अनुशीलन

डॉ. दीक्षा शर्मा*

शोधसारांश : मनुष्य के भीतर किसी का आश्रय लेने की प्रवृत्ति भी होती है तथा स्वतन्त्र रहने की भी। सहारा लेने वालों के लिए परमात्मा की शरण ही सर्वोत्तम है, क्योंकि जीव परमात्मा का अंश है। अतः उसी का आश्रय लेने से काम बनेगा। हम भी यही चाहते हैं कि हमें कोई ऐसा साथी मिले, जो हमें प्रेम करे, हमें आश्रय दे तथा हमसे कभी बिछड़े नहीं, सदा साथ रहे हमें ऐसे साथी की आवश्यकता है जो हमें स्थायी सुख-नित्य सुख, शान्ति और परमानन्द प्रदान करें, ऐसा साथी ईश्वर ही हो सकता है। प्रभु की शरणागति के बिना अन्यत्र कहीं भी मन को शान्ति मिलने वाली नहीं है।

बीज शब्द : जन्म, गोदुग्ध, हठ, उपासना, परीक्षा, अनुग्रह, कृतार्थ।

उपमन्यु कोई साधारण बालक नहीं था, वह परम बुद्धिमान् मुनिवर व्याघ्रपाद का पुत्र था। जैसा कि शिवमहापुराण में वर्णित है।

जन्मान्तरेण संसिद्धिः केनापि खलु हेतुना।
स्वपदप्रच्युतो दिष्टया प्राप्तो मुनिकुमारताम्।।[१]

अर्थात् उसे जन्मान्तर में ही सिद्धि प्राप्त हो चुकी थी। परन्तु किसी कारणवश वह अपने पद से च्युत हो गया। अर्थात् योगभ्रष्ट हो गया। अतः भाग्यवश जन्म लेकर वह मुनिकुमार हुआ। उपमन्यु जब बालक था, तभी से अपनी माता के साथ मामा के घर निवास करने लगा, दैवयोग से वह दरिद्र था।

उपमन्यु का गोदुग्ध के लिए हठ करना- कुमार के समान तेजस्वी उपमन्यु ने किसी समय स्वेच्छानुसार खेलते हुए अपने मामा के घर में थोड़ा सा दूध पी लिया, तब ईर्ष्या के कारण उसके मामा के पुत्र ने गर्म-गर्म उत्तम दूध का पान किया। उपमन्यु की माँ अपने भाई-भाभी के घर में रहती थी। अतः उसे बहुत कुछ सहन करना पड़ता था, यह सब उपमन्यु नहीं जानता था। उपमन्यु ने अपनी माता से कहा -

मातर्मातर्महाभागे मम देहि तपस्विनि।
गव्यं क्षीरमतिस्वाद नाल्पमुष्णं नमाम्यहम्।।[२]

* जम्मू।

अर्थात् हे मात! हे महाभागे हे तवस्विनि। आप मुझको गाय का दुग्ध दीजिये, जो अत्यन्त स्वादिष्ट हो, गर्म हो तथा अल्प न हो, मैं आपको नमस्कार करता हूँ।

इस प्रकार पुत्र के द्वारा स्नेहपूर्वक कही गयी वह बात सुनकर माता आदर के साथ पुत्र का आलिंगन करके दुःखित हो गयी और अपनी निर्धनता का स्मरण कर व्याकुल होकर विलाप करने लगी। इधर उपमन्यु भी बार-बार दूध का स्मरण करके रो रहा था। तत्पश्चात् उंछवृत्ति (फसल कट जाने के बाद खेत में पड़े दानों को बटोरना) से अर्जित बीजों को स्वयं पीसकर पुनः बीज के उस आटे को जल के साथ मिलाकर मधुरभाषिणी वह माता बोली[३] -

एह्योहि मम पुत्रेति सामपूर्व ततः सुतम्।
आलिङ्ग्यादाय दुःखार्ता प्रददौ कृत्रिमं पयः।।[४]

अर्थात् 'हे मेरे पुत्र! आओ, आओ।' इसके बाद सान्त्वनापूर्वक पुत्र को पकड़कर आलिंगन करके दुःख से व्याकुल माता ने उसे कृत्रिम दुग्ध दे दिया।

माँ के दिये हुए उस नकली दूध को पीकर उपमन्यु को पता चल गया कि यह दूध नहीं है, वह फिर रोने लगा। पुत्र का रुदन सुनकर माता ने हाथों से पुत्र के नेत्रों को पोंछकर दुःखी होकर उससे कहा -

क्षीरमत्र कुतोऽस्माकं वने निवसतां सदा।
प्रसादेन बिना शम्भोः तयः प्राप्तिर्भवनेन्न हि।।[५]

अर्थात् हे पुत्र! हम तो सदैव वन में निवास करते हैं, अतः यहाँ दूध की प्राप्ति कैसे सम्भव है? शिवजी को प्रसन्न किये बिना तुम्हें दूध की प्राप्ति नहीं हो सकती। क्योंकि -

पूर्वजन्मनि यत्कृत्यं शिवमुद्दिश्य हे सुत।
तदेव लभ्यते नूनं नात्र कार्या विचारणा।।[६]

अर्थात् हे पुत्र! पूर्वजन्म में शिवजी को उद्देश्य करके जो कर्म किया जाता है, वह उसे अवश्य प्राप्त होता है, इसमें सन्देह नहीं करना चाहिए।

उपमन्यु द्वारा शिवजी की उपासना- उपमन्यु शोक रहित होकर अपनी माँ से कहता है -

श्रृणु मातर्वचो मेऽद्य महादेवोऽस्ति चेत्क्वचित्।
चिराद्वा ह्यचिराद्वपि क्षीरोदं साधयाम्यहम्।।[७]

अर्थात् हे मात! अब मेरी बात सुनो, यदि कहीं भी महादेव जी होंगे, तो मैं थोड़े अथवा अधिक काल में उनसे क्षीर समुद्र प्राप्त कर लूँगा।

उपमन्यु ने भगवान् शिव की आराधना करने का निश्चय किया। वह तपस्या के लिए हिमालय पर्वत पर गया तथा वहाँ वायु पीकर रहने लगा। उसने आठ ईंटों का एक मन्दिर बनाया तथा उसके भीतर मिट्टी के शिवलिंग की स्थापना करके उसमें माता पार्वती सहित शिव का आवाहन किया।

तत्पश्चात् जंगल में पत्र–पुष्प आदि लेकर भक्तिभाव से पंचाक्षर–मन्त्र के उच्चारणपूर्वक साम्ब शिव की पूजा करने लगा। इस तरह दीर्घकाल तक उसने बड़ी भारी तपस्या की।[८]

बालक उपमन्यु की तपस्या से प्रसन्न होकर शिव का इन्द्र रूप में प्रकट होकर उसकी परीक्षा लेना– बालक उपमन्यु की तपस्या से चराचर प्राणियों सहित त्रिभुवन संतप्त हो उठा। तब देवताओं की प्रार्थना से उपमन्यु के भक्तिभाव की परीक्षा लेने के लिए भगवान् शंकर ने इन्द्र का रूप धारण किया।[९] इन्द्ररूपधारी शिवजी ने उसकी भक्ति की परीक्षा लेने के लिए गंभीर वाणी में उस बालक से कहा –

तुष्टोऽस्मि ते वरं ब्रूहि तपसानेन सुव्रत।
ददामि चेच्छितान्कामान् सर्वान्नास्ति संशयः।।[१०]

अर्थात् हे सुव्रत! मैं तुम्हारी इस तपस्या से अत्यन्त प्रसन्न हूँ, तुम वर माँगों। मैं तुम्हारा सारा अभीष्ट प्रदान करूँगा, इसमें संशय नहीं है।

इन्द्ररूपधारी शिवजी के इस प्रकार कहने पर उसने शिव में भक्ति होने का वरदान माँगा। यह सुनकर इन्द्र बोले – क्या तुम त्रिलोकी के स्वामी देवगणों के रक्षक तथा सभी देवताओं से नमस्कृत मुझ इन्द्र को नहीं पहचानाते?[११] उन निर्गुण रुद्र से तुम्हारा क्या कार्य हो सकता है, जो देव जाति से बाहर होकर पिशाचत्व को प्राप्त हो गए हैं।[१२]

श्रुत्वा निन्दां भवस्याथ तत्क्षणादेव संत्यजेत्।
स्वदेहं तन्निहत्याशु शिवलोकं स गच्छति।।[१३]

अर्थात् यह सुनकर पंक्षाक्षर मन्त्र का जप करता हुआ वह बालक अपने धर्म में विघ्न उत्पन्न करने के लिए उनको आया हुआ जानकर इन्द्र से कहता है कि शिव की निन्दा का श्रवण करते ही जो शीघ्र उस निन्दा करने वाले का प्रतिकार कर उसी समय अपना शरीर छोड़ देता है, वह शिवलोक को जाता है।

इस प्रकार कहकर उपमन्यु मरने के लिए तैयार हो गया तथा दूध के प्रति भी इच्छा का त्यागकर इन्द्र को मारने के लिए उद्यत हो गया।

उपमन्यु पर उमामहेश्वर द्वारा अनुग्रह करना– उपमन्यु अपने इष्ट देव की निन्दा सह नहीं सका, यह देखकर शिव ने अपना सौम्य स्वरूप प्रकट किया और उससे बोले –

दुग्धदध्याज्यमधुनामर्णवाक्ष सहस्त्रशः।
भक्ष्योभोज्यादिवस्तूनामर्णवा चाखिलास्तथा।।[१४]
तुभ्यं दत्त मया प्रीत्या त्वं गृह्वीश्व महामुने।
अमरत्वं तथा दत्तं गाणपत्यं च शाश्वतम्।।[१५]

अर्थात् हे महामुने! मैंने प्रसन्न होकर दूध, दही, घी एवं मधु के हजारों समुद्र तथा भोज्य भक्ष्यादि पदार्थों से पूर्ण हजारों समुद्र तुमको प्रदान किये, तुम उन्हें प्रेमपूर्वक ग्रहण करो। मैं तुम्हें

अमरत्व तथा शाश्वत गाणपत्य भी प्रदान करता हूँ।

इस प्रकार वरदान देकर शिव ने पार्वती से कहा, 'यह तुम्हारा पुत्र है' ऐसा कहकर महादेव जी ने उसे पार्वती को समर्पित कर दिया।

देवी च शृण्वती प्रीत्या मूर्ध्नि देशे कराम्बुजम्।
विन्यस्य प्रददौ तस्मै कुमारपदमक्षयम्।।[१६]

अर्थात् जब महादेव ने उपमन्यु को पार्वती को पुत्र रूप में सौंपा, यह सुनकर देवी ने उपमन्यु के सिर पर प्रेमपूर्वक अपना करकमल रखकर उसे अक्षय कुमार पद प्रदान किया। अर्थात् देवी ने अपने पुत्र को योगैश्वर्य तथा ब्रह्मविद्या जैसे अनेकों वर प्रदान किये।

कृतार्थ हुए उपमन्यु का अपनी माता के स्थान पर लौटना- शिवजी से श्रेष्ठ वर प्राप्त कर प्रसन्नचित्त उपमन्यु अपनी माता के समीप गया तथा सारा वृत्तान्त निवेदन किया। उपमन्यु की माँ ऐसा पुत्र पाकर धन्य हो गयीं, क्योंकि शिव-शिवा ने उन्हें साक्षात् दर्शन देकर ऐसे दिव्य वर प्रदान किये जो उनकी सोच से भी परे थे। उपमन्यु माँ को बताता है कि शिव ने उससे क्या कहा?

अक्षया बान्धवाश्चैव कुलं गोत्रं च ते सदा।
भविष्यति द्विजश्रेष्ठ मयि भक्तिश्च शाश्वती।।[१७]

अपि च -

सान्निध्यं चाश्रमे नित्यं करिष्यामि मुने तव।
तिष्ठ वत्स यथाकामं नोत्कण्ठां च करिष्यसि।।[१८]

अर्थात् हे द्विजोत्तम! तुम्हारे बान्धव, तुम्हारा गोत्र एवं कुल अक्षय बना रहेगा और मुझमें तुम्हारी शाश्वत भक्ति बनी रहेगी। मैं तुम्हारे आश्रम में नित्य निवास करूँगा। तुम इच्छानुसार जब तक चाहे, तब तक इस लोक में निवास करो, किसी भी वस्तु के लिए तुम्हें उत्कण्ठा नहीं रहेगी, अर्थात् तुम सर्वदा पूर्णकाम रहोगे। इस प्रकार उपमन्यु पर भगवान् शिव ने पूर्ण कृपा की।

उपमन्यु के चरित से प्राप्त शिक्षा- उपमन्यु के चरित से हमें यह शिक्षा प्राप्त होती है कि माता-पिता द्वारा दिये गये संस्कारों के बल पर उनकी संतान वैसा ही कार्य करती है तथा उसी के अनुसार सफलता प्राप्त करती है। बालक मुनिपुत्र होने के कारण स्वभाव से ही तपस्वी था। उसकी माता अत्यन्त दरिद्र थी तथा भाई के घर में रहती थी। ऐसी दशा में उसकी भाभी अपने पुत्र को तो भरण-पोषण भोजन तथा अन्य दूध आदि पदार्थ देती थी, किन्तु ननद के पुत्र को थोड़ा सा दूध देने से भी कतराती थी।

उपमन्यु हठी था तथा दूध के लिए माँ से हठ करने लगा तो दुःखी माँ ने उसे शिवजी की आराधना करने को कहा। बस यही क्षण था जब उपमन्यु को विश्वास हो गया कि मैं यदि शिवजी की शरण चला जाऊँ तो सब अच्छा होगा। परिणाम स्वरूप तपस्वी बालक की घोर तपस्या से महादेव प्रसन्न हुए तथा उसे अनेकों दूध-दही के सागर अर्पित कर दिये। उपमन्यु ने तपस्या एवं भक्ति के

बल पर जो पाया वह देवताओं के लिए भी दुर्लभ है मनुष्यों की तो बात ही क्या?

सन्दर्भ-सूची

१. शिवमहापुराण, वायवीय संहिता, ३४.५

२. लिङ्गमहापुराण (पूर्वभाग), १०७.५, पृ. ५५

३. उञ्छवृत्त्यार्जितान् बीजान् स्वयं पिष्ट्वा च सा तदा।
बीजपिष्टं तदालेडय तोयेन कलभाषिणी।। लिङ्गमहापुराण (पूर्वभाग), १०७.८

४. लिङ्गमहापुराण (पूर्वभाग), १०७.९

५. शिवमहापुराण, शतरुद्रसंहिता, ३२.९

६. शिवमहापुराण, शतरुद्रसंहिता, ३२.१०, पृ. १४५

७. शिवमहापुराण, शतरुद्रसंहिता, ३२.१३

८. संक्षिप्त शिवपुराण, गीता प्रेस, गोरखपुर, पृ. ४२०

९. एतस्मिन्नन्तरे शम्भुर्विष्णवाद्यैः प्रार्थितः प्रभुः।
परीक्षितुं च तद्भक्ति शक्रपोऽभवत्तदा। शिवमहापुराण, शतरुद्रसंहिता, ३२.१९

१०. शिवमहापुराण, शतरुद्रसंहिता, ३२.२३

११. तन्निशम्य हरिः प्राह मां न जानासि लेखपम्।
त्रैलोक्याधिपति शक्रं सर्वदेवनमस्कृतम्।। शिवमहापुराण, शतरुद्रसंहिता, ३२.२५

१२. रुद्रेण निर्गुणेनाल किं ते कार्यं भविष्यति।
देवजातिबहिर्भूतो यः पिशाचत्वमागतः।। शिवमहापुराण, शतरुद्रसंहिता, ३२.२७

१३. शिवमहापुराण, शतरुद्रसंहिता, ३२.३७

१४. शिवमहापुराण, शतरुद्रसंहिता, ३२.५३

१५. शिवमहापुराण, शतरुद्रसंहिता, ३२.५४

१६. शिवमहापुराण, शतरुद्रसंहिता, ३२.६०, पृ. १४९

१७. शिवमहापुराण, शतरुद्रसंहिता, ३२.७१, पृ. १५०

१८. शिवमहापुराण, शतरुद्रसंहिता, ३२.७२, पृ. १५०

Shodh Navneet (International Peer-Reviewed Research Journal)
ISSN : 2321-6581, Vol. XXII, January - June 2024

रामायण एवं महाभारत का सांस्कृतिक महत्त्व

डॉ. सुरेश कुमार सांदू*

सारांश : रामायण और महाभारत संस्कृत भाषा के ऐसे महान् ग्रन्थ हैं, जिन पर भारत की बहुत बड़ी साहित्यिक सम्पदा आश्रित है। ये दोनों ग्रन्थ वैदिक और लौकिक साहित्य के सन्धि काल में लिखे गये। इनसे संस्कृत साहित्य ही नहीं, अपितु भारतीय समाज भी प्रभावित हुआ। सामान्य भारतीय जीवन पर भी रामायण और महाभारत का व्यापक प्रभाव पड़ा है। भारतीय समाज के विषय में कोई भी अध्ययन इन महाग्रन्थों के अनुशीलन के बिना अपूर्ण है। दोनों ग्रन्थों ने अनेक कवियों और नाटककारों को कथानक दिए हैं, इसलिए इन्हें उपजीव्य कहा जाता है। दोनों ग्रन्थों का प्रभाव समान होने पर भी कई दृष्टियों से ये परम्परा भिन्न हैं। रामयण को आदिकाव्य कहा जाता है, क्योंकि इसने वैदिक संस्कृत से भिन्न लौकिक संस्कृत में काव्यधारा का प्रवर्तन किया। इसके रचयिता वाल्मीकि आदिकवि कहे जाते हैं। दूसरी ओर महाभारत को इतिहास कहते हैं, जिसके रचियता व्यास हैं। यह विश्वकोश के समान भारतवर्ष के ज्ञान-विज्ञान के सभी पक्षों का निरूपण करता है। इसके वर्तमान स्वरूप के विकास में कई पीढ़ियों का योगदान है।

कुंजी शब्द (Key Words) : वैदिक साहित्य, लौकिक साहित्य, संस्कृत साहित्य, महाग्रंथ, उपजीव्य, आदिकाव्य, वैदिक संस्कृत, लौकिक संस्कृत, काव्यधारा, आदिकवि, विश्वकोश।

रामायण– रामायण के रचयिता वाल्मीकि ने प्रथम अलंकृत काव्य लिखकर समस्त परवर्ती भारतीय कवियों के लिए आदर्श प्रस्तुत किया था (मधुमयभणितीनां मार्गदर्शी महर्षिः)। कहा जाता है कि एक निषाद द्वारा क्रीड़ारत क्रौञ्च पक्षी के मारे जाने की घटना देखकर, करुणा से वाल्मीकि का हृदय द्रवित हो उठा और उनके मुख से स्वयं ही यह अभिव्यक्ति हो गया –

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्।।[१]

महर्षि वाल्मीकि की वाणी अनुष्टुप् छन्द में फूट पड़ी थी जो लौकिक संस्कृत भाषा का श्लोक था। उसी वाणी में उन्होंने आदर्श पुरुष राम की कथा लिखी। रामायण में राम की कथा बहुत विस्तार से वर्णित है। जहाँ-तहाँ आवश्यकता के अनुसार इसमें कवि वाल्मीकि ने अवान्तर कथाएँ दी हैं एवं प्रकृति का भी व्यापक वर्णन किया है। वाल्मीकि की दृष्टि इतनी सूक्ष्म है और कल्पना शक्ति

* सह-आचार्य- इतिहास, सम्राट पृथ्वीराज चौहान राजकीय महाविद्यालय, अजमेर, राजस्थान

इतनी उर्वर है कि एक-एक दृश्य को उन्होंने बहुत विस्तार प्रदान किया है।

रामायण का विभाजन सात काण्डों में हुआ है – बालकाण्ड, अयोध्याकाण्ड, अरण्यकाण्ड, किष्किन्धाकाण्ड, सुन्दरकाण्ड, युद्धकाण्ड तथा उत्तरकाण्ड। प्रत्येक काण्ड को सर्गों में विभक्त किया गया है। परवर्ती संस्कृत महाकवियों ने भी रामायण के इस आदर्श पर महाकाव्यों को सर्गों में विभक्त किया है तथा महाकाव्य के लक्षणों को स्थापित किया। इसी आधार पर कालिदास, भारवि, माघ ने महाकाव्यों की रचना की। रामायण में २४,००० श्लोक हैं।[२]

रामायण के अभी तीन संस्करण उपलब्ध हैं, जो भारत के विभिन्न क्षेत्रों में प्रचलित हैं। तीनों संस्करणों की समीक्षा करके बड़ौदा से रामायण का विशिष्ट संस्करण निकला है।[३] रामायण के रचनाकाल के विषय में विद्वानों ने बहुत विवेचना किया है। महाभारत से पूर्व में इसकी रचना हो चुकी थी, क्योंकि महाभारत में रामायण की पूरी कथा वर्णित है और राम के जीवन से सम्बद्ध कुछ स्थलों को वहाँ तीर्थ के रूप में देखा गया है। रामायण का संकेत जैन और बौद्ध ग्रन्थों में भी प्राप्त होता है। इस प्रकार रामायण की रचना पाँचवीं शताब्दी ई.पू. में मानी जाती है।[४]

रामायण का सांस्कृतिक मूल्य- रामायण का सांस्कृतिक महत्त्व बहुत अधिक है। वाल्मीकि ने इस महाकाव्य के द्वारा जीवन के आदर्शभूत और शाश्वत मूल्यों का निर्देश किया है। इसमें उन्होंने राजा, प्रजा, पुत्र, माता, पत्नी, पति, सेवक आदि संबंधों का एक आदर्श स्वरूप प्रस्तुत किया है। राम का चरित्र एक आदर्श महापुरुष के रूप में है, जो सत्यवादी, दृढ़-संकल्प वाले, परोपकारी, चरित्रवान, विद्वान्, शक्तिशाली, सुन्दर, प्रजापालक तथा धीरपुरुष हैं। वाल्मीकि ने उनके गुणों को बहुत विस्तार से प्रकट किया है। इसी प्रकार सीता के आदर्श तथा गौरवपूर्ण पत्नीरूप को भी वाल्मीकि ने स्थापित किया है। राम को भ्रातृप्रेम रामायण में अत्यंत सरल एवं भावपूर्ण शब्दों में व्यक्त किया गया है – **देशे देशे कलत्राणि देशे देशे च बान्धवाः।**[५] किसी भी देश में पत्नी प्राप्त की जा सकती है तथा बन्धुत्व कहीं भी स्थापित किया जा सकता है, किन्तु सहोदर भाई कहीं नहीं प्राप्त नहीं किया जा सकता है।

राम का चरित्र इतना उदार और ऊँचा है कि वे रावण की मृत्यु के बाद विभीषण को उसके शरीर-संस्कार का उपदेश देते हैं। वे कहते हैं कि – विभीषण! शत्रु की मृत्यु से बैर का अन्त हो जाता है। हमारी शत्रुता भी समाप्त हो गई। अब तो रावण का शरीर मेरे लिए भी वैसा ही है, जैसा तुम्हारे लिए –

मरणान्तानि वैराणि निर्वृत्तं नः प्रयोजनम्।
क्रियतामस्य संस्कारो ममाप्येष यथा तव।।[६]

भरत की राज्यपद के प्रति अनासक्ति, लक्ष्मण की भ्रातृ-सेवा एवं हनुमान् की स्वामिभक्ति ये तीनों जीवन के सर्वोच्च आदर्श रामायण में उलब्ध होते हैं। काव्य का उद्देश्य है – मधुरभाव से उपदेश देना। उसमें वाल्मीकि को पूरी तरह से सफलता मिली है। प्रकृति-वर्णनों में कवि वाल्मीकि

तन्मय हो जाते हैं। उनकी उपमाएँ हृदय को आकृष्ट कर लेती हैं। अशोक वाटिका में शोकमग्न सीता की तुलना कवि संदेह से भरी स्मृति, अधूरी श्रद्धा, नष्ट हुई आशा, विध्न से युक्त सिद्धि, कलुषित बुद्धि तथा लोकनिन्दा के कारण नष्ट कीर्ति से करते हैं। इससे कवि हमारे हृदय में करुणा की भावना जगाते हैं।

रामायण से संस्कृत कवियों को तथा समस्त भारतीय भाषाओं के कवियों को भी राम-कथा लिखने की प्रेरणा मिली तथा विदेशों में भी रामायण का प्रभाव स्थापित हुआ। पूरे एशिया महाद्वीप की सर्वाधिक प्रसिद्ध कथा राम-कथा ही है।

महाभारत- महर्षि व्यास द्वारा रचित महाभारत संस्कृत वाङ्मय का सबसे बड़ा ग्रंथ है, जिसमें एक लाख श्लोक हैं। इसीलिए इसे शत-साहस्री संहिता भी कहते हैं। महाभारत में मूलतः कौरवों और पाण्डवों का संघर्ष वर्णित है, किन्तु प्रासंगिक रूप से प्रतिपादित जीवन-विषयक प्राचीन भारतीय ज्ञान के सभी पक्षों का यह अद्‌भुत विश्वकोश है। इसका शान्तिपर्व युगों से जीवन की समस्याओं का समाधान करता आ रहा है। इस इतिहास ग्रन्थ को प्राचीन भारतीयों ने धर्म-ग्रंथ की मान्यता दी है तथा इसे पंचम वेद कहा है। दार्शनिक समस्याओं का समाधान करता आ रहा है। इस इतिहास ग्रन्थ को प्राचीन भारतीयों ने धर्म-ग्रन्थ की मान्यता दी है तथा इसे पंचम वेद कहा है। दार्शनिक समस्याओं का समाधान करने वाला विश्व प्रसिद्ध ग्रन्थ भगवद्गीता, महाभारत के भीष्मपर्व का एक अंश है। महाभारत अपनी विशालता के अतिरिक्त संसार के सभी विषयों को समाविष्ट करने के कारण महत्त्वपूर्ण है। इसके विषय में कहा गया है -

धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ।
यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित।।[७]

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों लक्ष्यों के विषय में जो बातें इस ग्रन्थ में कही गई हैं, वे ही अन्यत्र मिलती हैं, किन्तु जो इसमें नहीं हैं, वे कही नहीं मिलती हैं। इस उक्ति से महाभारत के विवेचनीय विषय की व्यापकता सिद्ध होती है।

रामायण के समान महाभारत भी संस्कृत कवियों के लिए कथानक की दृष्टि से उपजीव्य ग्रन्थ रहा है। इसकी मुख्य कथा तथा उपाख्यानों के आधार पर विभिन्न कालों में संस्कृत कवियों ने काव्य, नाटक, चम्पू, कथा, आख्यायिका आदि अनेक प्रकार की साहित्यिक सृष्टि की है। इण्डोनेशिया, जावा, सुमात्रा आदि देशों के साहित्य पर भी महाभारत का प्रभाव विद्यमान है। वहाँ के लोग भी महाभारत के पात्रों के अभिनय से अपना मनोरंजन करने के साथ-साथ शिक्षा भी ग्रहण करते हैं।

महर्षि वेदव्यास का नाम कृष्णद्वैपायन भी है।[८] महाभारत के पात्रों से उनका घनिष्ठ सम्बन्ध था। महाभारत के आदि पर्व में कहा गया है कि कृष्णद्वैपायन ने तीन वर्गों तक निरन्तर परिश्रम से महाभारत की रचना की थी। इतिहास के आधुनिक विद्वानों का कहना है कि महाभारत को एक

लाख श्लोकों का वर्तमान रूप अनेक शताब्दियों के विकास क्रम में प्राप्त हुआ। व्यास ने प्राचीनकाल की गाथाओं को एकत्र करके इस ग्रन्थ की मूल रचना की थी। इसके विकास के तीन चरण है – जय, भारत और महाभारत। जय नामक ग्रन्थ में ८,८०० श्लोक थे। इसमें पाण्डवों की विजय का वर्णन किया गया था। दूसरे चरण में भारत नामक ग्रन्थ प्रस्तुत हुआ, जिसमें २४,००० श्लोक थे।[९] उसमें उपाख्यान नहीं थे। युद्ध का वर्णन ही प्रधान विषय था। इसी भारत को वैशम्पायन ने पढ़कर जनमेजय का सुनाया था। इस ग्रन्थ में जब उपाख्यान आदि जोड़े गए तथा इसे व्यापक विश्वकोश का स्वरूप दिया गया, तब इसका नाम महाभारत पड़ा। यही महाभारत लोमहर्षण के पुत्र उग्रश्रवा द्वारा नैमिषारण्य में शौनकादि ऋषियों को सुनाया गया था। ये उपाख्यान प्राचीन लोककथाओं के साहित्यिक संस्करण का विशाल भण्डार बन गया।[१०]

महाभारत के दो पाठ प्राप्त होते हैं – एक उत्तर भारत का, दूसरा दक्षिण भारत का । दोनों में श्लोक–संख्या, अध्यायों का क्रम तथा आख्यानों के स्थान को लेकर बहुत अन्तर है। महाभारत के विशुद्ध रूप को सुनिश्चित करने वाला एक संस्करण पुणे से प्रकाशित हुआ है।

महाभारत का विभाजन पर्वों में हुआ , जिनकी संख्या १८ है – आदि, सभा, वन, विराट, उद्योग, भीष्म, द्रोण, शल्य, सौप्तिक, स्त्री, शान्ति, अनुशासन, आश्वमेधिक, आश्रमवासिक, मौसल, महाप्रस्थानिक तथा स्वर्गारोहण। इन पर्वों का पुनः विभाजन अध्यायों में हुआ है। इनमें कौरवों तथा पाण्डयों की उत्पत्ति से लेकर पाण्डवों के स्वर्ग जाने तक का वर्णन है। यही महाभारत की मूल कथा है। इसमें बहुत से मार्मिक प्रसंगों का वर्णन किया गया है, जैसे – द्यूत–क्रीड़ा, द्रौपदी का अपमान, विराट की राजसभा में पाण्डवों का छद्म रूप से रहना, कौरवों तथा पाण्डवों का युद्ध इत्यादि।[११]

हस्तिनापुर के सिंहासन के लिए कौरवों और पाण्डवों के संघर्ष का इसमें वर्णन है। पाण्डवों ने कौरवों से आधा राज्य प्राप्त कर राजसूय यज्ञ किया, किन्तु ईर्ष्यालु कौरवों ने पाण्डवों को जुए में हराकर उन्हें शर्त के अनुसार तेरह वर्षों के लिए वन जाने को विवश कर दिया। अन्तिम वर्ष में अज्ञातवास की यह शर्त रखी गई कि यदि इस अवधि में पाण्डवों का पता चल गया, तो उन्हें पुनः उतने ही वर्षों के लिए वनवास स्वीकार करना पड़ेगा। पाण्डव सफलतापूर्वक यह शर्त पूरी करने पर अपना राज्य माँगते हैं, किन्तु उन्हें राज्य नहीं दिया जाता। इसीलिए महाभारत का युद्ध होता है जो १८ दिनों तक चलता है। इसमें कौरवों का सर्वनाश हो जाता है। उल्लेखानुसार संजय ने युद्ध का वर्णन नेत्रहीन धृतराष्ट्र के लिए एक स्थान पर बैठे–बैठे किया था। युद्ध के आरम्भ में विषादग्रस्त अर्जुन को युद्ध के लिए कृष्ण प्रेरित करते हैं और गीता का अमूल्य उपदेश देते हैं। कर्म की प्रेरणा देने वाला श्रीमद्भगवद्गीता नामक यह ग्रन्थ इतना महत्त्वपूर्ण है कि प्राचीन काल से आधुनिक काल तक देश–विदेश के दार्शनिकों को प्रभावित करता रहा है।

महाभारत का रचनाकाल बुद्ध–महावीर से पूर्व माना जाता है। इस ग्रन्थ का उल्लेख

आश्वलायन गृह्यसूत्र में पहली बार आया है। प्रथम शताब्दी ईसवी में इसका प्रचार दक्षिण भारत में हो गया था।

महाभारत का सांस्कृतिक महत्त्व– महाभारत का महत्त्व सांस्कृतिक दृष्टि से बहुत अधिक है। यह अपने आप में संपूर्ण साहित्य है। शान्तिपर्व में राजनीति के विषयों का व्यापक एवं गम्भीर प्रतिपादन है। इसके पात्रों को व्यास ने उपदेश का आधार बनाया है, जिससे लोग कर्तव्य की शिक्षा ले सकें। यह एक ऐसा धार्मिक ग्रन्थ है, जिसमें प्रत्येक श्रेणी का मनुष्य अपने जीवन के अभ्युदय की सामग्री प्राप्त कर सकता है। बाणभट्ट ने व्यास को कवियों का निर्माता कहा है, क्योंकि महाभारत से कवियों को काव्य सृष्टि के लिए प्रेरणा मिलती रही है। गीता में कर्म, ज्ञान और भक्ति का सुन्दर समन्वय है। महाभारत में व्यास ने कहा है कि धर्म शाश्वत है। अतः इसका परित्याग किसी भी दशा में भय या लोभ से नहीं करना चाहिए। शान्ति पर्व में कहा गया है कि राजधर्म के बिगड़ने पर राज्य तथा समाज का सर्वनाश हो जाता है। मानव जीवन को धर्म, अर्थ और काम के द्वारा मोक्ष की ओर ले जाने की प्रक्रिया महाभारत में अच्छी तरह बताई गई है। इसलिए धर्म, राजनीति, दर्शन आदि सभी विषयों का यह अक्षय कोष है।

गीता– महाभारत के भीष्म पर्व के अन्तर्गत १८ अध्यायों तथा ७०० श्लोकों में व्याप्त गीता एक स्वतंत्र ग्रन्थ के रूप में विश्व विख्यात है। युद्ध के आरम्भ में युद्ध में भयावह परिणाम की कल्पना करके अर्जुन विषादग्रस्त हो जाते हैं, तब उन्हें कर्म के लिए प्रेरित करते हुए कृष्ण उपदेश देते हैं। भगवान् कृष्ण के द्वारा उपदिष्ट होने से इसे मूलतः भगवद्गीता कहते हैं। यद्यपि अर्जुन को युद्ध के लिए प्रवृत्त करने का उद्देश्य दो–तीन अध्यायों में ही पूरा हो गया था, किन्तु जीवन की व्यवहारिक तथा अध्यात्मिक समस्याओं को सुलझाने के लिए अर्जुन के प्रासंगिक प्रश्नों का उत्तर देने के कारण गीता का आकार बड़ा हो गया।

गीता के अध्यायों को योग कहा गया है। गीता में योग का अर्थ है सम–दृष्टि **(समत्वं योग उच्यते)** अथवा कुशलतापूर्वक कर्म करना **(योगः कर्मसु कौशलम्)** जिसमें बंधन न हो। गीता में मुख्य रूप से तीन योगों का प्रतिपादन किया गया है – कर्मयोग, ज्ञानयोग तथा भक्तियोग। ये तीनों परम्परा सम्बद्ध तथा पूरक हैं।[१२]

कर्मयोग का अर्थ है अपने निर्धारित कर्तव्यों का निष्पादन, भौतिक लाभ की आशा रखे बिना काम करना। इसे 'निष्काम कर्म'' भी कहा जाता है। कामना से कर्म में आसक्ति होती है, जिससे बंधन की उत्पत्ति होती है। कृष्ण कहते हैं – **'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन'** (तुम्हारा अधिकार केवल कर्म करने में है, फल तुम्हारे वश में नहीं है)।[१३]

ज्ञान इसी की सिद्धि करता है। सर्वोपरि ज्ञान यह है कि विश्व पर नियंत्रण करने वाला परमात्मा (पुरुषोत्तम) है – **'वासुदेवः सर्वम्।'** यह ज्ञान हो जाने पर ही निष्काम कर्म संभव है, अन्यथा मनुष्य को स्वार्थ (सकाम कर्म) से पृथक् नहीं किया जा सकता। कर्म, कर्मफल, प्रकृति

आदि सब कुछ पुरुषोत्तम से नियन्त्रिण होकर चल रहा है।

भक्तियोग परमात्मा को ही सर्वस्व समर्पण का नाम है। इसे योग दर्शन में 'ईश्वर-प्रणिधान' कहते हैं। अपने सभी कर्मों को ईश्वरार्पण की दृष्टि से करें, तो मानव कभी असत्कर्म नहीं कर सकता। गीता का वाक्य है - '**तत्कुरुष्व मदर्पणम्।**'[१४]

श्रीमद्भगवद्गीता पर संस्कृत में अनेक टीकाएँ लिखी गई हैं। विश्व की प्रायः सभी भाषाओं में इसके अनुवाद, टीका, विवेचन, निबन्ध, भाष्य आदि लिखे गए हैं। यह संसार के सर्वाधिक लोकप्रिय ग्रन्थों में है।

महाभारत एवं आधुनिक समाज- महाभारत की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह एक शाश्वत धर्म-व्यवस्था का विधान करता है। यह शाश्वत धर्म व्यवस्था, अनेक दृष्टियों से भिन्न होते हुए भी अभिन्न रूप वाली है। इस तथ्य को इस रूप में समझा जा सकता है कि महाभारतकार धर्म को रूढ़ व्यवस्था नहीं मानते। वह उसे बदलते समाज एवं काल के साथ परिवर्तनीय स्वीकार करते हैं।

मनुस्मृति एवं रामायण आदि में प्रतिपादित धर्म प्रायः रूढ़ हैं जिनका उल्लंघन पर मनुष्य पाप का भागीदार बनता, परन्तु महाभारतकार का कहना है कि धर्म का निर्णय देश, काल तथा व्यक्ति के अनुसार होता है। अतः उसे रूढ़ नहीं माना जा सकता। शाश्वत् धर्म को वेदव्यास भी मानते हैं जो त्रिकालाबाधित है तथा सदैव एकरूप ही रहता है। उसका उलंघन अवश्य ही क्षम्य नहीं। परन्तु प्रत्येक युग का भी एक विशिष्ट धर्म होता है जिसे युगधर्म कहा जाता है। इसी प्रकार आपद्धर्म तथा व्यक्तिधर्म भी होते हैं। महाभारत-युगीन नियोग प्रथा और एक पाञ्चाली का पाँच व्यक्तियों से विवाह होना युगधर्म के सर्वोत्तम निदर्शन है। गोरक्षा के लिए अर्जुन का युधिष्ठिर एवं द्रोपदी के कक्ष में जाना (तथा प्रतिज्ञा तोड़ना) अथवा महर्षि विश्वामित्र का प्राणरक्षार्थ श्वान का मांस खाना आपद्धर्म का उदाहरण है। इसी प्रकार भीष्म का अम्बा से विवाह न करना उनके व्यक्तिधर्म का उदाहरण है।[१५]

इसी प्रकार महाभारत आज के समाज को धर्मभीरु नहीं, प्रत्युत धर्म के प्रति आश्वस्त बनाता है। 'पचानृतान्याहुरपातकानि' कहकर पितामह भीष्म मानो आज के समाज को आश्वस्त करते हैं कि धर्म हमारा सन्तापक बैरी नहीं, प्रत्युत सन्मित्र है, जो प्रत्येक परिस्थिति में हमारी रक्षा करता है।

सन्दर्भ

१. श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण, बालकाण्ड, द्वितीय सर्ग।

२. प्राचीन भारत का सांस्कृतिक इतिहास, के.सी. श्रीवास्तव, पृ. सं. ७५

३. https//ni.wikipedia.org

४. प्राचीन भारत का इतिहास, झा एवं श्रीमाली, पृ. सं. ९२

५. वाल्मीकीय रामायण, युद्धकाण्ड, ५६.१३

६. श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण, युद्धकाण्ड, ९९.३९

७. एवं द्वैपायनो यज्ञे सत्यवात्यां पराशरात्।
न्यस्ता द्वीपे स यद् बालस्तस्माद्, द्वैपायनः स्मृत।। महाभारत, स्वर्गारोहण पर्व, ५.५०
८. महाभारत, आदिपर्व, ६३.८६
९. NCERT, https://ncert.nic.in
१०. NCERT, https://ncert.nic.in
११. रिलिजियस मूवमेन्टस इन महाभारत – गोविन्द चन्द्र पाण्डेय।
१२. गीता माधुर्य – रामसुख, प्रस्तावना।
१३. श्रीमद्भगवद्गीता, २.४७
१४. श्रीमद्भगवद्गीता, ९.२७
१५. NCERT, https://ncert.nic.in

Shodh Navneet (International Peer-Reviewed Research Journal)
ISSN : 2321-6581, Vol. XXII, January - June 2024

महाभारत के शान्तिपर्व में वर्णित धर्म की साम्प्रतिक उपादेयता

ज्योति मिश्रा*

शोध सारांश– धर्म भारतीय संस्कृति का एक अपरिहार्य अंग है जो मनुष्यों में मानवीय मूल्यों का संचार करता है। इन मानवीय मूल्यों के अनुपालन से ही मनुष्य में सदाचार, सहिष्णुता, न्याय, अहिंसा, अस्तेय, सत्यनिष्ठा, कर्तव्यपरायणता जैसे गुणों का अभिवर्धन होता है। इन गुणों से युक्त मनुष्य ही एक सभ्य समाज का निर्माण कर सकता है। '**सत्यं वद, धर्मं चर, अतिथि देवो भव, आचार्य देवो भव, मातृ देवो भव, पितृ देवो भव, मनुर्भव, आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्**' आदि उपदेश धर्म के अंग हैं जो भारतीय संस्कृति को विशिष्ट बनाते हैं। किन्तु वर्तमान समाज के अधिकांश लोग धर्म के यथार्थ स्वरूप को नहीं समझते हैं और अपने मिथ्याज्ञान से समाज को दिग्भ्रमित करते हैं। अतः धर्म का न केवल मनुष्य के आध्यात्मिक जीवन से सम्बन्ध है प्रत्युत यह मनुष्यों के सामाजिक उत्कर्ष में भी सहायक है। धर्म के अनुपालन से मनुष्यों में सदाचार, नैतिक कर्तव्य, सत्यनिष्ठा, न्याय, सहिष्णुता आदि मानवीय मूल्यों का विकास होता है। उक्त मानवीय मूल्यों का वर्तमान समाज में उत्तरोत्तर ह्रास होता जा रहा है जिसका मूल कारण है धर्म के सम्यक् तथा यथार्थ ज्ञान का अभाव और उसे केवल कर्मकाण्ड का आडम्बर मानकर उससे विमुख होना। अतः मनुष्यों में धर्म के प्रति उत्तरोत्तर बढ़ता अविश्वास उसके ही विकास मार्ग का अवरोधक है जो कि किसी भी समाज के लिए कल्याणप्रद प्रतीत नहीं होता है।

वर्तमान लोक में यह धारणा विद्यमान हो चुकी है कि धर्म मनुष्य के विकास में बाधक है तथा मनुष्यों के लिए अनुपयोगी है। मनुष्यों में विद्यमान धर्म के प्रति नकारात्मक भावनाएँ उसे मानवीय मूल्यों के ज्ञान से विमुख करती है जिससे जीवन में अनेक अराजक तत्त्व जन्म लेने लग जाते हैं जो मनुष्य के सर्वाङ्गीण विकास के बाधक हैं। अतः प्रस्तुत शोधपत्र में महाभारत के शान्तिपर्व में वर्णित धर्म की यथार्थ विवेचना प्रस्तुत कर समाज की समग्र उन्नति में उसकी उपादेयता को प्रकाशित किया जायेगा। जिससे मनुष्य का समग्र व सुसंस्कृत रूप से विकास हो सके तथा भावी पीढ़ियों के लिए एक सुसभ्य समाज व वातावरण का भी निर्माण किया जा सके।

शब्दकुञ्जिका : महाभारत, शान्तिपर्व, धर्म, समाज आदि।

प्रस्तावना– प्राचीन भारतीय ज्ञान परम्परा का मूल आधार वेद को ही स्वीकार किया गया है

* शोधच्छात्रा, संस्कृत विभाग, महात्मा गाँधी केन्द्रीय विश्वविद्यालय, मोतिहारी, बिहार

और सम्पर्ण वेद धर्म के मूल हैं। मनु ने भी अपने ग्रन्थ मनुस्मृति में लिखा भी है- '**वेदोऽखिलो धर्म मूलम्।**'[१] वैदिक वाङ्मय ज्ञान के अनन्तर भी परवर्ती कालों में जितने भी शास्त्रीय ग्रन्थ लिखे गये उन सब में भी धर्म का अंश किसी न किसी रूप में दृष्टिगत होते हैं। महाभारत में भी धर्म का विशद विवेचन किया गया है। महाभारत के शान्तिपर्व में धर्म के विविध स्वरूप परिलक्षित होते हैं जो वर्तमान ह्रासोन्मुख समाज के लिए अत्यन्त ही प्रासंगिक हैं। वेद के 'मनुर्भव' की संकल्पना धर्म का आधार है। इसमें समस्त मानवीय मूल्य सूत्र रूप में सन्निहित हैं। मनुष्य के वे सभी व्यवहार जो अन्य प्राणियों से उसे भिन्न बनाते हैं और सभी प्राणियों के लिए कल्याणकारी हैं, उसका नैतिक मूल्य हैं और ये नैतिक आचार ही मानवीय मूल्य के पर्याय हैं। प्रत्येक मनुष्य में इन्हीं मानवीय मूल्यों का संचार करना प्राचीन भारतीय शिक्षा का उद्देश्य भी दृष्टिगत होता है। मनुष्य में विकसित नैतिक मूल्य की यही प्रक्रियाएँ ही 'मनुर्भव' सिद्धान्त की साधिका हैं। मनुष्य के इन्हीं कल्याणकारी नैतिक-मूल्यों को ही प्राचीन भारतीय ज्ञान परम्परा में धर्म के रूप में स्वीकार किया गया है। महाभारत के विभिन्न प्रसंगों में इन्हीं नैतिक-मूल्यों को श्रेष्ठ पारस्परिक व्यवहार के रूप में स्वीकार किया गया है। महाभारत के शान्ति-पर्व में वर्णित मनुष्य के श्रेष्ठ पारस्परिक नैतिक व्यवहार ही धर्म के रूप में प्रतिष्ठित है। अतः प्रस्तुत ग्रन्थ के शान्तिपर्व में वर्णित मनुष्य के इन्हीं श्रेष्ठ पारस्परिक नैतिक व्यवहारों को धर्म के रूप में प्रकृत शोधपत्र में विवेचन किया जायेगा।

धर्म शब्द की व्युत्पत्ति- धर्म शब्द का अर्थ बताते हुए वामन शिवराम आप्टे ने लिखा है- '**ध्रियते लोकोऽनेन धरति लोकं वा धृ+मन्** अर्थात् कर्तव्य, जाति, सम्प्रदाय आदि के प्रचलित आचार का पालन।[२] मोनियर विलियम्स ने धर्म का अर्थ बताते हुए कहा है- law, usage, practice, customary observance or prescribed conduct duty; right, justice, virtue, morality, religion, religious merit, good works etc.[3]

धर्म का लक्षण- ऋग्वेद में धर्म के सम्बन्ध में कहा गया है- '***धर्मणा मित्रावरुणा विपश्चिता व्रता रक्षते असुरस्य मामया।***'[४] अर्थात् धर्म का अर्थ निश्चित नियम, व्यवस्था या सिद्धान्त अथवा आचार नियम है। ऋग्वेद में अन्यत्र भी धर्म का लक्षण देते हुए कहा गया है- '***आ प्रा रजांसि दिव्यानि पार्थिवा श्लोकं देवः कृणुते स्वाय धर्मणे।***'[५] महाभारत में धर्म का वर्णन करते हुए कहा गया है -

धारणाद्धर्ममित्याहुः धर्मो धारयते प्रजाः।
यत्स्याद्धारणसंयुक्तं स धर्म इति निश्चयः।।[६]

महाभारत में धर्म का स्वरूप- यद्यपि '**धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः**' इस शास्त्र वचन से यह सिद्ध होता है कि मुख्यतः स्मृतियाँ ही धर्मशास्त्र हैं। किन्तु महाभारत के विषय विवेचन एवं कुछ अन्तःसाक्ष्यों से भी यह सिद्ध होता है कि महाभारत एक धर्मशास्त्र भी है- '**धर्मशास्त्रमिदं पुण्यं अर्थशास्त्रमिदं परम्।**'[७] धर्मशास्त्रों का मुख्य उद्देश्य यह है कि वह मनुष्य को धर्म के मर्म को समझा सके, शुद्ध आचरण एवं उनके महत्त्व का ज्ञान करा सके, पाप-पुण्य, नीति-अनीति आदि

को समझने की सामर्थ्य विकसित कर सके तथा देव, पितृ, अतिथि, गुरु आदि के प्रति अपने कर्तव्य को समझकर उसे अपने कर्तव्यपथ पर अग्रसर रहने के लिए प्रेरित करता रहे। धर्म की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए तैत्तिरीय आरण्यक में कहा गया है- '**धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा**'[८] अर्थात् सम्पूर्ण विश्व धर्म से ही संचालित होता है। यही सनातन धर्म सम्पूर्ण जगत् का जीवन है। महाभारत में मनुष्यों के आध्यात्मिक उत्कर्ष के कारक के रूप में धर्म का विशद वर्णन किया ही गया है, साथ ही सामाजिक उन्नयन में भी धर्म की महत्ता को विशिष्ट रूप से प्रतिपादित किया गया है। इस महनीय ग्रन्थ का वैशिष्ट्य यह है कि वह शाश्वत धर्म-व्यवस्था का विधान करता है। यह शाश्वत धर्म-व्यवस्था अनेक दृष्टियों से भिन्न होते हुए भी एक रूपता का प्रतिपादन करती है। स्वयं वेदव्यास ने धर्म को रूढ़ व्यवस्था के रूप में स्वीकार नहीं किया है, अपितु बदलते हुए समाज एवं काल के अनुरूप परिवर्तनीय स्वीकार किया है। सामाजिक विकास की दृष्टि से धर्म का वर्णन महाभारत में अनेकत्र देखने को मिलता है जिनमें से कुछ उद्धरण रूप में निम्न प्रकार से द्रष्टव्य हैं-

सत्यमेव गरीयस्तु शिष्टाचारनिषेवितम्।
आचारश्च सतां धर्मः सन्तश्चाचारलक्षणाः।।[९]

अर्थात् शिष्ट पुरुषों के आचार में निहित सत्य ही सर्वाधिक गौरव की वस्तु है। सदाचार ही श्रेष्ठ पुरुषों का धर्म है। सदाचार ही सन्तों की पहचान भी होती है। कहने का अभिप्राय यह है कि व्यक्ति का आचरण ही उसका सर्वस्व होता है। इसी से वह लोक में ख्याति प्राप्त करता है तथा समाज के लिए आदर्श भी बनता है। धर्म के रूप में प्रतिष्ठित मनुष्य के इन्हीं नैतिक आचरणों से मनुष्य की इहलौकिक और आमुष्मिक उन्नति सम्भव है। जब मनुष्य में सदाचार आदि नैतिक-मूल्य विकसित होते हैं तो समस्त प्राणियों के कल्याण में ही धर्मज्ञ पुरुषों की दृष्टि एकनिष्ठ हो जाती है।

महाभारत के शान्तिपर्व में धर्म स्वरूप- महाभारत के शान्ति पर्व में धर्म का विवेचन अनेक स्थलों पर किया गया है। धर्म विषयक मनुष्य के सभी चिन्तन या आचरण सामाजिक व्यवस्था तथा उसके विकास में अत्यन्त ही उपादेय हैं। इनमें से उद्धरण स्वरूप कुछ सन्दर्भ निम्न प्रकार से द्रष्टव्य हैं-

● **कल्याणकारी मानसिक चिन्तन ही धर्म है-** महभारत के शान्तिपर्व में सभी प्राणियों के प्रति मानसिक कल्याण की भावना को ही धर्म के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। इस सन्दर्भ में शान्तिपर्व में वर्णन भी प्राप्त होता है -

मानसं सर्वभूतानां धर्ममाहुर्मनीषिणाः।
तस्माद् सर्वभूतेषु मनसा शिवमाचरेत्।।[१०]

अभिप्राय यह है कि प्राणियों के प्रति ईर्ष्या न करना, उन पर दयाभाव रखना आदि

कल्याणपरक मानसिक सद्भाव ही धर्म है।

• **सद्भाव, दया और दान ही धर्म है-** महाभारत के शान्तिपर्व के अनेक स्थलों पर श्रेष्ठ मानवीय मूल्यों को ही धर्म के रूप में वर्णित किया गया है। किसी भी प्राणी के प्रति ईर्ष्याभाव न रखना, उस पर दया करना आवश्यकतानुसार दान करना तथा प्राणियों के लिए त्यागपूर्ण भावना ही मानवीय मूल्य है और यही मानव धर्म भी है। शान्तिपर्व के अन्य स्थलों पर भी इन्हीं मानवीय-मूल्यों के रूप में धर्म को उपस्थापित किया गया है। शान्तिपर्व में इस सन्दर्भ में उल्लेख भी प्राप्त होता है-

अद्रोहः सर्वभूतेषु कर्मणा मनसा गिरा।
अनुग्रहश्च दानं च सतां धर्म सनातनः।।[११]

महाभारत का उक्त विचार सम्पूर्ण जीवों के कल्याण की प्रेरणा भी प्रदान करता है।

• **पापरहित आचरण ही धर्म है-** महाभारत के शान्ति पर्व में ही पाप रहित कर्म को धर्म शब्द से अभिहित किया गया है- '**स वै धर्मो यत्र न पापमस्ति।**'[१२] सदाचार रूप में धर्म के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए कहा गया है- '**धर्मस्य निष्ठा त्वाचारस्तमेवाश्रित्य भोत्स्यसे।**'[१३]

• **सत्य ही धर्म है-** महाभारत के शान्ति पर्व में सत्य को ही धर्म स्वीकार किया गया है। अर्थात् सदाचरण आदि मानवीय मूल्य ही धर्म हैं जिसका पालन सत्पुरुषों ने किया है। इस रूप में धर्म का वर्णन करते हुए शान्तिपर्व में कहा गया है -

सत्यं सत्सु सदा धर्मः सत्यं धर्म सनातनः।
सत्यमेव नमस्येत सत्यं ही परमा गतिः।।[१४]

महाभारत के शान्ति पर्व में सत्य को धर्म के रूप में वर्णित करते हुए कहा गया है-

सत्यं धर्मस्तपो योगः सत्यं ब्रह्म सनातनम्।
सत्यं यज्ञः परः प्रोक्तः सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम्।।[१५]

धर्माचरण का फल- मानव जीवन का सार धर्म आचरण में ही सन्निहित है। धर्म के सकामभाव से आचरण करने से मनुष्य ऐहिक फल को प्राप्त करता है तथा निष्कामभाव से इसका आचरण करने से आमुष्मिक फल मोक्ष की प्राप्ति होती है। इस सन्दर्भ में महाभारत के शान्ति पर्व में अधोलिखित रूप में वर्णन प्राप्त होता है -

धर्मादपेतं यत्कर्म यद्यपि स्यान्महाफलम्।
न तत् सेवेत् मेधावी न तद्धितमिहोच्यते।।[१६]

महाभारत में वर्णित धर्म का स्वरूप मानवीय नैतिक आचरण पर आश्रित था। धर्म पर ही आश्रित होकर समस्त प्रजाओं के कार्य संचालित किये जाते थे। धर्म ही राज्य के सम्पूर्ण कार्य आधारित थे। महाभारत के शान्तिपर्व में वर्णित धर्म के सूक्ष्म अनुशीलन से ज्ञात होता है कि प्रारम्भ में न कोई राज्य था, न कोई राजा, न दण्ड था और न ही दण्ड देने वाला, समस्त प्रजाएँ धर्म पर

ही आश्रित होकर अर्थात् धर्म का आचरण करते हुए एक–दूसरे की रक्षा करती थीं। इस सन्दर्भ में महाभारत के शान्तिपर्व में कहा गया है–

न वै राज्यं राजाऽऽसीन्न च दण्डो न दाण्डिकः।
धर्मेणैव प्रजाः सर्वा रक्षन्ति स्म परस्परम्।।[१७]

धर्म ही सभी प्राणियों की वृद्धि और अवनति का कारण है। अर्थात् धर्म के बढ़ने या उसके आचरण करने से सभी प्राणियों की वृद्धि होती है जबकि धर्म का आचरण न करने से प्राणियों की अवनति होती है। महाभारत के शान्तिपर्व में धर्म का इस रूप में वर्णन करते हुए कहा गया है–

धर्मे वर्धति वर्धन्ते सर्वभूतानि सर्वदा।
तस्मिन् ह्रसति ह्रीयन्ते तस्माद्धर्मं न लोपयेत्।।[१८]

धर्म की महत्ता और उसके फल का वर्णन करते हुए शान्तिपर्व में कहा गया है–

प्रभवार्थाय भूतानां धर्मप्रवचनं कृतम्।
यः स्यात् प्रभवसंयुक्तः स धर्म इति निश्चयः।।[१९]

मनुष्यों के सात्त्विक प्रवृत्ति को ही धर्म बतलाते हुए शान्ति पर्व में कहा गया है–

मानसं सर्वभूतानां धर्ममाहुर्मनीषिणः।
तस्मात् सर्वेषु भूतेषु मनसा शिवमाचरेत्।।[२०]

अभिप्राय यह है कि समस्त प्राणियों के लिए मन द्वारा किया गया कल्याणकारी आचरण ही धर्म है। अतः मनुष्य को मन से समस्त जीवों के कल्याण के विषय में ही निमग्न रहना चाहिए। शान्तिपर्व का धर्मविषयक उक्त कथन अत्यन्त ही नैतिक, तार्किक और वर्तमान समाज के लिए उपादेय है। इस रूप में धर्म का आचरण करने से निश्चित रूप से एक सभ्य समाज तथा सभ्य राष्ट्र का निर्माण किया जा सकता है। इससे समाज या राष्ट्र के नैतिक मूल्यों में भी अभिवृद्धि होती है। जिससे समाज तथा राष्ट्र में शान्तिपूर्ण वातावरण का निर्माण भी किया जा सकता है। किसी भी राष्ट्र की समग्र उन्नति में शान्तिपूर्ण वातावरण की महती भूमिका होती है।

युधिष्ठिर तथा भीष्म पितामह के धर्म विषयक संवाद में भीष्म पितामह धर्म की महनीयता तथा उसकी व्यापकता का संकेत करते हुए कहते हैं–

सर्वत्र विहितो धर्मः स्वर्ग्यः सत्यफलं तपः।
बहुद्वारस्य धर्मस्य नेहास्ति विफला क्रिया।।[२१]

उपसंहार– यद्यपि अधिकांश जनमानस में यह धारणा विकसित हो चुकी है कि लौकिक एवं अलौकिक सुख या फल की प्राप्ति के लिए कर्मकाण्डीय क्रियाएँ अत्यन्त ही अनुकरणीय हैं और वे इन्हीं धार्मिक क्रियाओं का पालन करना ही धर्म मानते हैं। किन्तु इसे केवल धर्म के आध्यात्मिक स्वरूप का आंशिक रूप ही मानना तर्कसंगत होगा। अधिकांश तथाकथित बुद्धिजीवियों में भी यह

दृढ़ विश्वास उत्पन्न हो चुका है कि धर्म मनुष्य के सामाजिक उन्नति में बाधक है। किन्तु सत्य तो यह है कि मनुष्यों के अन्तःकरण में विद्यमान मानवीय मूल्य ही धर्म है जिसकी सामाजिक उपादेयता शाश्वत रूप में दृष्टिगत होती है। प्राचीन भारतीय शास्त्रों से लेकर अर्वाचीन समाजशास्त्रियों ने भी धर्म की सामाजिक महत्ता को बहुत ही वैज्ञानिक पद्धति से विश्लेषित किया गया है। इस प्रकार महाभारत शान्तिपर्व में अन्य अनेक स्थलों पर धर्म का विशद रूप में वर्णन किया गया है जिसका मनुष्यों के समग्र कल्याण तथा सामाजिक विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान है। महाभारत के शान्तिपर्व में वर्णित धर्म के सूक्ष्म अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि धर्म कर्मकाण्ड तक ही सीमित नहीं है, अपितु अत्यन्त ही व्यापक है। यह मनुष्यों के समग्र विकास व सुख आदि का मूल है। धर्म के बिना मनुष्य के किसी भी कार्य की सिद्धि सम्भव नहीं है। महाभारत के शान्तिपर्व में कहा भी गया है कि सम्पूर्ण विश्व का आधार धर्म ही है– **'सर्वो हि लोको नृपः धर्ममूलः।'**[२२]

सन्दर्भ

१. मनुस्मृति, २.६
२. आप्टे, वामन शिवराम, संस्कृत-हिन्दी शब्दकोश, पृ. ५२९
३. Monier William, A Sanskrit English Dictionary, MLBD Publishers, Delhi, P. 510
४. ऋग्वेद, ३.६३.७
५. ऋग्वेद, ४.५.३
६. महाभारत, शान्तिपर्व, १०.११
७. महाभारत, आदिपर्व, अंशावतरणपर्व, ६२.२३
८. तैत्तिरीयारण्यक, १०.७९.१००.७९
९. महाभारत, वनपर्व, मार्कण्डेयसमस्यापर्व, २०७.७५
१०. महाभारत, शान्तिपर्व, १९३.३१
११. महाभारत, शान्तिपर्व, १६२.२१
१२. महाभारत, शान्तिपर्व, १४१.७६
१३. महाभारत, शान्तिपर्व, २५९.६
१४. महाभारत, शान्तिपर्व, १६२.४
१५. महाभारत, शान्तिपर्व, १६२.५
१६. महाभारत, शान्तिपर्व, २९३.८
१७. महाभारत, शान्तिपर्व, ५९.१४
१८. महाभारत, शान्तिपर्व, ९०.१७
१९. महाभारत, शान्तिपर्व, १०९.१०
२०. महाभारत, शान्तिपर्व, १९३.३१
२१. महाभारत, शान्तिपर्व, १७४.२
२२. महाभारत, शान्तिपर्व, १२०.४

Shodh Navneet (International Peer-Reviewed Research Journal)
ISSN : 2321-6581, Vol. XXII, January - June 2024

कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी का हिन्दी प्रेम

डॉ. जितेन्द्र कुमार सिंह*

राष्ट्रभाषा सामाजिक, सांस्कृतिक स्तर पर देश के एकीकरण का कार्य करती है। राष्ट्रभाषा की प्राथमिक शर्त देश में विभिन्न समुदायों के बीच भावनात्मक एकता स्थापित करना है। इसका प्रयोग क्षेत्र विस्तृत और देशव्यापी होता है। यह सारे देश की सम्पर्क भाषा होती है तथा इसका व्यापक जनाधार होता है। राष्ट्रभाषा हमेशा स्वभाषा ही हो सकती है; क्योंकि उसी के साथ जनता का भावनात्मक लगाव होता है। राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन ने देशवासियों के भीतर राष्ट्रीय अस्मिता की भावना जगायी थी। राष्ट्रीय अस्मिता का एक अनिवार्य अंग है– राष्ट्रभाषा की अस्मिता। वैसे तो राष्ट्र की सभी भाषाएँ राष्ट्रभाषाएँ होती हैं, किन्तु राष्ट्र की जनता जब स्थानीय एवं तात्कालिक हितों एवं पूर्वग्रहों से ऊपर उठकर अपने राष्ट्र की कतिपय भाषाओं में से किसी एक भाषा को विशेष प्रयोजनों के लिए चुनकर उसे राष्ट्रीय अस्मिता एवं गौरव का एक आवश्यक उपादान समझने लगती है तो वही राष्ट्रभाषा कहलाती है।

१८८५ ई. में राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई। जैसे–जैसे काँग्रेस का राष्ट्रीय आन्दोलन जोर पकड़ता गया, वैसे–वैसे राष्ट्रीयता, राष्ट्रीय झंडा एवं राष्ट्रभाषा की संकल्पना भारतीयों के मन में बद्धमूल होती गई। कांग्रेस के राष्ट्रीय आन्दोलन से जुड़े हुए पहले समर्थ व्यक्ति हैं – लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक। कानपुर में जनता द्वारा अपने स्वागत के प्रत्युत्तर में उन्होंने कहा – ''यद्यपि मैं उन लोगों में से हूँ जो चाहते हैं और जिनका विचार है कि हिन्दी ही भारत की राष्ट्रभाषा हो सकती है।''[१]

गाँधी जी हिन्दी के प्रश्न को स्वराज्य का प्रश्न मानते थे। वे पहले गैर हिन्दी भाषी और आखिरी सर्वमान्य राष्ट्रीय नेता थे जिन्होंने हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में सामने रखकर भाषा–समस्या पर गंभीरता से विचार किया। गाँधीजी ने भी १९१७ ई. में भड़ौच में आयोजित गुजरात शिक्षा परिषद के अधिवेशन में राष्ट्रभाषा के लिए पाँच लक्षण या शर्तें बताई हैं–

१. अमलदारों के लिए वह भाषा सरल होनी चाहिए।

२. यह जरूरी है कि भारतवर्ष के बहुत से लोग उस भाषा को बोलते हों।

३. उस भाषा के द्वारा भारतवर्ष का अपनी धार्मिक, आर्थिक और राजनीतिक व्यवहार होना चाहिए।

४. राष्ट्र के लिए वह भाषा आसान होनी चाहिए।

---

* सह–आचार्य, हिन्दी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, राजस्थान

५. उस भाषा का विचार करते समय किसी क्षणिक या अल्पस्थायी स्थिति पर जोर नहीं देना चाहिए।

गाँधीजी के स्वदेशी आन्दोलन ने राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी के स्वीकार को सार्वजनिक बनाया। अंग्रेजी के विकल्प के रूप में हिन्दी सामने आयी। मोतिहारी के किसान आन्दोलन के पश्चात् गाँधी जी देश के शीर्षस्थ नेता हो चुके थे। उन्होंने हिन्दी को सिद्धान्त एवं व्यवहार दोनों स्तरों पर अपनाया। पहले उन्होंने प्रयासपूर्वक हिन्दी सीखी, फिर दूसरों को अपनाने की सलाह दी। १९२७ ई. में उन्होंने लिखा– ''वास्तव में ये अंग्रेजी में बोलने वाले नेता हैं जो आम जनता में हमारा काम जल्दी आगे बढ़ने नहीं देते। वे हिन्दी सीखने से इनकार करते हैं जबकि हिन्दी द्रविड़ प्रदेश में भी तीन महीने के अंदर सीखी जा सकती है।''

कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी भारतीय स्वतंत्रता संग्राम सेनानी, प्रखर राजनीतिज्ञ, लेखक और शिक्षाविद थे। वे लोगों के बीच के. एम. मुंशी के नाम से लोकप्रिय थे। इनका जन्म गुजरात के भरूच में हुआ था। उनकी प्रारंभिक शिक्षा भरूच में हुई। उच्च शिक्षा के लिए वे बड़ोदरा चले गए। बड़ोदरा कॉलेज से १९०७ में उन्होंने अंग्रेजी भाषा में सर्वोच्च अंक प्राप्त करके, बैचलर ऑफ आर्ट्स की डिग्री के साथ 'कुलीन पुरस्कार' प्राप्त किया। बड़ोदरा कॉलेज में अपने शिक्षकों में वे श्री अरबिंदो घोष से अधिक प्रभावित थे। बाद में वे महात्मा गाँधी, सरदार वल्लभभाई पटेल और भुलाभाई देसाई से भी प्रभावित हुए। १९१० ई. में उन्होंने मुंबई से कानून की पढ़ाई की, इसके बाद बांबे हाईकोर्ट में वकालत करने लगे। वे गुजराती और अंग्रेजी के अच्छे लेखक थे, लेकिन राष्ट्रीय हित में हमेशा हिन्दी के पक्षधर रहे। उन्होंने 'हंस' पत्रिका के संपादन में प्रेमचंद का सहयोग किया। वे राष्ट्रीय शिक्षा के समर्थक थे। वे पश्चिमी शिक्षा के अंधानुकरण का विरोध करते थे। मंत्री के रूप में उनका एक महत्त्वपूर्ण कार्य– वन महोत्सव आरंभ करना रहा। वृक्षारोपण के प्रति वे काफी गंभीर थे। मुंशी जी वस्तुतः और मूलतः भारतीय संस्कृति के दूत थे। सांस्कृतिक एकीकरण के बिना उनकी नजर में किसी भी सामाजिक–राजनीतिक कार्यक्रम का कोई महत्त्व नहीं था।

वह अपने लेख 'हिमालय की ओर' में वे लिखते हैं– ''हम कत्थूर राजाओं की पुरानी राजधानी गरुण गये, किन्तु इस बार आकाश पर बादल थे और हम घाटी में बरफ नहीं देख सके। गाँव का मुखिया शुद्ध हिन्दी बोलता था और हमारी उपलब्धियों में उसकी सहज पैठ थी। यदि वे लोग जो यह कहते हैं कि शुद्ध संस्कृतनिष्ठ हिन्दी (बाजारू किस्म की हिन्दी नहीं) एक कृत्रिम भाषा है, इन भागों में आयें और इन मुखियों की भाषा सुनें तो उन्हें आश्चर्य होगा। उन लोगों की बोलचाल की भाषा बनकर हिन्दी ने इतनी सामर्थ्य और प्रेषणीयता अर्जित कर ली है कि हम अंग्रेजी बोलने वालों में से बहुतों को उससे ईर्ष्या होगी।''[२] जीवन भर वकील, मन्त्री, राज्यपाल और एक अत्यन्त व्यस्त राजनीतिज्ञ रहते हुए भी श्री मुंशी ने अनेक ग्रन्थ लिखे हैं जो अधिकतर गुजराती में हैं, कुछ अंग्रेजी में । इनमें उपन्यास, कहानी, नाटक, इतिहास, ललित कलाएँ शामिल हैं। इसी कारण श्री मुंशी की गणना देश के महान् साहित्यकारों में होती है, और उनका नाम शरद,

बंकिमचन्द्र चटर्जी और रवीन्द्रनाथ टैगोर के साथ लिया जाता है। उनकी रचनाओं में अमर भारतीय साधना, उसकी मूलभूत ज्योति तथा आध्यात्मिकता और उसकी सार्वभौम उदारता के दर्शन होते हैं। यही उनकी प्रेरणा के स्रोत हैं और इन्हीं का निखरा हुआ रूप उनकी प्रत्येक रचना से मुखरित हुआ है। अतः मुंशी का साहित्य अधिकतर गुजराती में होते हुए भी किसी भाषा विशेष की सीमाओं में बँधकर रह जाने वाला साहित्य नहीं है। उसका भारतीय रूप, सामान्य प्रेरणास्रोत और प्रत्येक पंक्ति से झलकती राष्ट्रीयता अथवा भारतीयता उसे सहज सार्वदेशीय बना देती है।

भारतीय भाषाएँ एक दूसरे से इतनी निकट हैं कि किसी भी भाषा के महान् लेखक का कृतियों का अन्य भाषाओं के साहित्य पर प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता। मुंशी की साहित्यिक रचनाओं का परोक्ष रूप से हिन्दी पर प्रभाव पड़ा और इन रचनाओं के हिन्दी अनुवाद से यह प्रभाव प्रत्यक्ष हो गया है। इनके ऐतिहासिक उपन्यास और पौराणिक कथाओं पर आधारित रचनाएँ हिन्दी में इतनी अधिक लोकप्रिय हुई हैं; मानो मूलरूप से वे इसी भाषा में लिखी गयी हों।

हिन्दी के लिए उनके मन में सदा विशेष स्थान रहा है और अपने कृतित्व में उन्होंने इसका प्रमाण भी दिया है। डॉ. संपूर्णानंद के शब्दों में– ''हिन्दी उनको अपने प्रबल और अविकम्प्य समर्थक के रूप में जानती है।'' मुंशी की यह धारणा रही है– ''विद्या की कोई भी संस्था वास्तविक अर्थ में भारतीय नहीं कही जा सकती जब तक कि उसमें हिन्दी के अध्ययन–अध्यापन का प्रबन्ध नहीं है।''[३] उन्होंने हिन्दी प्रचार के कार्य में सक्रिय भाग लिया है। महात्मा गाँधी ने मुंशी को इस ओर खींचा था। उन्हीं के निर्देश से मुंशीजी ने प्रेमचन्द के साथ बम्बई से सर्वाङ्ग सुन्दर मासिक 'हंस' चलाया था जिसका उद्देश्य हिन्दी को अखिल भारतीय अन्तःप्रान्तीय रूप देना था। उसमें प्रत्येक भाषा का साहित्य हिन्दी और नागरी अक्षरों में प्रकाशित करने का आयोजन था। आज भी उनके द्वारा संचालित भारतीय विद्याभवन की पाक्षिक पत्रिका 'भारती' के द्वारा हिन्दी में समस्त भारतीय जीवन, साहित्य और संस्कृति की संदेशवाहिनी क्षमता का विकास हो रहा है।

हिन्दी के प्रति उनकी सेवाओं से प्रभावित होकर अखिल भारतीय साहित्य सम्मेलन ने मुंशी जी को सन् १९५६ ई. में होने वाले वार्षिक अधिवेशन का अध्यक्ष चुना गया था। इस अवसर पर हिन्दी के इतिहास और स्थिति के विषय में उन्होंने जो अध्यक्षीय भाषण दिया था उसमें उन्होंने कहा था– ''राष्ट्रभाषा हिन्दी एकमात्र संयुक्त प्रान्त की स्वभाषा नहीं है, उसको यदि राष्ट्रभाषा होना है तो राष्ट्र की अन्य भाषाओं की शक्ति और सौन्दुर्य इसमें लाना चाहिये ।''[४] हिन्दी ही हमारे राष्ट्रीय एकीकरण का सबसे शक्तिशाली और प्रधान माध्यम है। यह किसी प्रदेश या क्षेत्र की भाषा नहीं, बल्कि समस्त भारत की भारती के रूप में ग्रहण की जानी चाहिये। उन्होंने अपने 'हिन्दी और हिन्दी का भविष्य' शीर्षक लेख में हिन्दी का समर्थन इन शब्दों में किया है– ''हमें यह भी नहीं सोचना चाहिये कि हम हिन्दी को केवल व्यवहारमात्र या शासन की भाषा बनाना चाहते हैं। हमें तो जैसी इंग्लैंड की अंग्रेजी भाषा है और फ्रांस की फ्रेंच भाषा है उसी तरह की भारत की भारती हिन्दी को बनाना है।''[५]

भारतीय संविधान में हिन्दी को जो स्थान मिला, उसमें भी मुंशीजी का बड़ा हाथ था। जब हिन्दी के प्रश्न पर संविधान सभा में विवाद होना था, श्री मुशी संयोग से सभा की कांग्रेस पार्टी के स्थानापन्न अध्यक्ष थे, क्योंकि डॉ. पद्माभि सीतारमैया अस्वस्थ हो गये थे। राष्ट्रभाषा के प्रश्न पर स्वयं कांग्रेस पार्टी में कई मत वाले थे, जिनमें हिन्दी के कट्टर समर्थकों से लेकर इसके विरोधी तक शामिल थे। यह श्रेय मुंशी और उनके कुछ मित्रों को है कि उन्होंने समझौते का ऐसा सूत्र निकाला जिस पर सब कांग्रेसी ही नहीं बल्कि दूसरे सदस्य भी सहमत हो सकें और इस तरह हिन्दी को सर्वसम्मति से राष्ट्रभाषा का स्थान देने की व्यवस्था की जा सकी।

स्वतंत्रता आंदोलन के समय वैचारिक आदान-प्रदान और जनता के बीच संदेश पहुँचाने के लिए जब पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन शुरू किया गया, पर्चे छापे जाने लगे और जन सभाओं का आयोजन किया जाने लगा, तो सबके बीच एक सूत्र के रूप में हिन्दी भाषा ही थी। देश के सभी भाषा-भाषी पत्रकार, समाजसेवक, राजनेता, वकील, शिक्षक, जब एक मंच पर इकट्ठा होते थे तब उनके संवाद की भाषा हिन्दी ही होती थी। इन सबमें गैर हिन्दी भाषियों की संख्या अधिक होती थी। जब भी उन्हें अपनी बात राष्ट्रीय स्तर पर पहुँचानी होती थी, तब हिन्दी का सहारा लेना पड़ता था। इसलिए उस समय के सभी शीर्ष नेतृत्व को हिन्दी सीखना पड़ता था। हिन्दी सीखकर वे अपने कौशल में वृद्धि करने के साथ-साथ हिन्दी की सेवा भी कर रहे थे। उनके ऐसे पत्र और पत्रिकाएँ स्वतंत्रता आंदोलन के समय देश के गैर हिन्दी भाषी क्षेत्र से निकलती थीं, जिनके हिन्दी परिशिष्ट भी होते थे।

हिन्दी के महत्त्व को समझते हुए देश को एकसूत्रता में बाँधने का संकल्प स्वामी दयानंद सरस्वती जी ने जब लिया, उस समय अध्यात्म के क्षेत्र में संस्कृत के साथ-साथ देशज बोलियों का चलन था। किन्तु उन्होंने हिन्दी की शक्ति को पहचान लिया था। इसीलिए अपने सबसे प्रमुख ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' की रचना हिन्दी में की। वे गुजराती भाषी थे। संस्कृत के विद्वान् थे, फिर भी आर्य समाज के विस्तार, प्रचार-प्रसार का माध्यम हिन्दी को बनाया। चारों वेदों का भाष्य हिन्दी में लिखा। यद्यपि उनकी भाषा सामान्य हिन्दी थी, फिर भी अपने भावों को वे बहुत अच्छी तरह से प्रस्तुत कर सके हैं। सत्यार्थ प्रकाश की भूमिका में वे लिखते हैं, जिस समय मैंने यह ग्रंथ बनाया था उस समय और उससे पूर्व संस्कृत में भाषण करने, पठन-पाठन में संस्कृत ही बोलने और जन्मभूमि की भाषा गुजराती होने के कारण मुझे इस (हिन्दी) भाषा का विशेष ज्ञान न था। इससे भाषा अशुद्ध बन गई है। इतना सब होने पर भी हिन्दी भाषा के प्रति उनका आग्रह स्तुत्य है।

हिन्दी पत्रकारिता में जिन गैर हिन्दी भाषी पत्रकारों का महत्त्वपूर्ण योगदान हैं, उनमें बाबुराव विष्णु पराडकर का नाम बड़ी श्रद्धा के साथ लिया जाता है। वे कोलकाता के नेशनल कॉलेज में हिन्दी और मराठी के शिक्षक थे। उस समय योगीराज अरविंद घोष वहाँ प्राचार्य थे। पराडकर जी अपने मामा की पुस्तक देशेर कथा का हिन्दी में अनुवाद करके चर्चित हो गए। उन्होंने कोलकाता से ही भारतमित्र नामक पत्र हिन्दी में निकाला। उसके सम्पादक के नाते उन्हें कई बार जेल भी जाना

पड़ा। पराडकर जी के सहयोग से वाराणसी से हिन्दी का 'आज' दैनिक प्रकाशित हुआ। उन्होंने हिन्दी की पत्रकारिता की भाषा का गठन किया। हिन्दी के अनेक शब्द स्वयं गढ़े और अंग्रेजी का विकल्प प्रस्तुत किया। विदेशी शब्दों का गजब का भारतीयकरण कर दिया। मानकीकरण, मुद्रास्फीति और नेशन को राष्ट्र शब्द उन्होंने ही दिया। 'आज' अखबार वाराणसी सहित अनेक नगरों से आज भी निकल रहा है।

के. एम. मुंशी ने देश के स्वतंत्रता संग्राम में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। १९१५ ई. में भारतीय होम रूल आंदोलन में शामिल हुए और सचिव बने। १९१७ ई. में वे बांबे प्रेसीडेंसी एसोसिएशन के सचिव बने। १९२० ई. में उन्होंने अमदाबाद में वार्षिक कांग्रेस अधिवेशन में भाग लिया और इसके अध्यक्ष सुरेंद्रनाथ बनर्जी से प्रभावित हुए। १९२७ ई. में बांबे विधानसभा के लिए चुने गए। १९३० ई. में सविनय अवज्ञा आंदोलन में भाग लिया और छः महीने जेल में रहे। १९३२ ई. में पुनः गिरफ्तार हुए और दो साल जेल में रहे। १९३७ ई. के बांबे प्रेसिडेंसी चुनाव में उन्हें फिर से चुना गया और वे वहाँ के गृहमंत्री बने। सत्याग्रह आंदोलन में भाग लेने के कारण उन्हें १९४० ई. में गिरफ्तार किया गया। मतभेदों के कारण १९४१ ई. में कांग्रेस छोड़ दी, बाद में महात्मा गाँधी के कहने पर १९४६ ई. में वापस आ गए।

के. एम. मुंशी का संविधान निर्माण में भी बहुत बड़ा योगदान रहा। वह मसौदा समिति, सलाहकार समिति, मौलिक अधिकारों पर उप-समिति सहित कई समितियों का हिस्सा रहे। वे राष्ट्रीय ध्वज समिति के भी सदस्य रहे, जिसने वर्तमान भारतीय ध्वज को चुना। वे बी. आर. अंबेडकर के नेतृत्व में कार्यरत भारतीय संविधान समिति के सदस्य थे। केंद्रीय खाद्य और कृषि मंत्री रहते हुए उन्होंने १९५० ई. में देश में 'वनमहोत्सव' की शुरुआत की। मुंशी ने १९५२ से १९५७ ई. तक उत्तर प्रदेश के राज्यपाल के रूप में भी कार्य किया। १९५९ ई. में कांग्रेस पार्टी से किनारा कर लिया और बाद में जनसंघ में शामिल हो गए।

७ नवंबर १९३८ ई. को उन्होंने भारतीय विद्या भवन की स्थापना की। इसके बाद उन्होंने मुंबादेवी संस्कृत महाविद्यालय सहित दर्जनों स्कूल कॉलेजों की नींव रखी। वे इकतीस साल तक भारतीय विद्या भवन के अध्यक्ष रहे। वे घनश्याम व्यास के नाम से गुजराती और अंग्रेजी में लिखते थे। उन्होंने गुजराती मासिक 'भार्गव' की शुरुआत की। १९५४ ई. में 'यंग इंडिया' के संयुक्त संपादक रहे। उन्होंने गुजराती, हिन्दी, कन्नड़, तमिल, मराठी, अंग्रेजी आदि भाषाओं में एक सौ सत्ताइस पुस्तकें लिखीं। वे गुजराती के श्रेष्ठ साहित्यकार रहे। उन्होंने उपन्यास, नाटक, कहानी, निबंध, आत्मकथा, जीवनी आदि विधाओं में लिखा। के. एम. मुंशी गुजराती साहित्य परिषद और हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष भी रहे।

मुंबई में भारतीय विद्या भवन के संस्थापक और कुलपति स्व. कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी का हिन्दी प्रेम जगजाहिर है। वे एक विद्वान् राजनेता थे। उनके मार्गदर्शन में मुंबई से 'नवनीत' का

प्रकाशन शुरू हुआ। यह हिन्दी की पहली 'डाईजेस्ट' है। साहित्य और संस्कृति के प्रचार-प्रसार में इस पत्रिका का उल्लेखनीय योगदान रहा है। गुजराती भाषी मुंशी जी ने महाभारत के पात्रों में योगेश्वर श्रीकृष्ण, कुंती, युधिष्ठिर, पितामह भीष्म, द्रौपदी इत्यादि का जीवन चरित्र लिखकर हिन्दी की व्यापक सेवा की है। वाल्मीकि रामायण का हिन्दी में वृहद अनुवाद की भी उनकी योजना थी। राजनेता के रूप में और महामहिम राज्यपाल रहते हुए कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी ने हिन्दी भाषा में ही अधिकांश काम किया। उनकी प्रमुख कृतियों का हिन्दी अनुवाद ओंकारनाथ शर्मा, प्रफुल्लचंद्र ओझा और शिवरतन थानवी ने किया है जिनमें - 'लोमहर्षिणी', 'लोपामुद्रा', 'भगवान परशुराम', 'तपस्विनी', 'पृथ्वीवल्लभ', 'भग्नपादुका', 'पाटण का प्रभुत्व', कृष्णावतार के सात खण्ड- 'बंसी की धुन', 'रुक्मिणी हरण', 'पाँच पाण्डव', 'महाबली भीम', 'सत्यभामा', 'महामुनि व्यास', 'युधिष्ठिर' (उपन्यास), 'वाह रे मैं वाह' (नाटक), 'आधे रास्ते', 'सीधी चढ़ान', 'स्वप्नसिद्धि की खोज में' (आत्मकथा के तीन खण्ड) आदि का नाम लिया जा सकता है।

सन्दर्भ

१. 'सरस्वती', फरवरी, १९१७

२. धीरेन्द्र वर्मा, प्रधान संपादक, हिन्दी साहित्य कोश, भाग- २, (नामवाची शब्दावली), ज्ञानमण्डल लिमिटेड्, वाराणसी, द्वितीय संस्करण, संवत् २०४३ (१९८६ ई.), पृ. ६४-६५

३. मुंशी अभिनन्दन ग्रन्थ, डॉ. विश्वनाथ प्रसाद का लेख मुंशी और हिन्दी से।

४. 'अखिल भारतीय साहित्य सम्मेलन' के उदयपुर अधिवेशन में अध्यक्ष कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी का भाषण-१९५६

५. 'त्रिपथगा', दिसम्बर १९५५, पृ. १३२

Shodh Navneet (International Peer-Reviewed Research Journal)
ISSN : 2321-6581, Vol. XXII, January - June 2024

कमलेश्वर के उपन्यासों में चित्रित समाज

डॉ. श्रुति शर्मा*

कमलेश्वर पुराने नैतिक आदर्शों और आधुनिक व्यावहारिक मूल्यों की टकराहट और उससे उत्पन्न तनाव का यथार्थ चित्र अंकित करने में अत्यंत कुशल हैं। कमलेश्वर ने अपने साहित्य में जन सामान्य की जिन्दगी और जमीन से जुड़े मानवीय आशा-आकांक्षाओं व जीवन संघर्षों को उद्घाटित किया है तथा भौतिकता के युग में शून्य पड़ती मानवीय संवेदना के समक्ष सामान्यतः छोटी से छोटी समस्याओं को भी बड़ी गम्भीरता के साथ उठाया है। इन्होंने अपने साहित्य में कस्बाई जिन्दगी से लेकर महानगरीय चहल-पहल का पूरा दृश्य रेखांकित किया है। कमलेश्वर के साहित्य में जो सामान्य परिवार चित्रित हैं उनकी समस्याएँ मनोदशाएँ, अभिलाषाएँ और इन सबसे बड़ी बात विपरीत परिस्थितियों में संघर्ष करने की क्षमता व जिजीविषा आदि का बड़ा मार्मिक दृश्य प्रस्तुत किया गया है। उन्होंने समाज को विभिन्न दृष्टिकोण से देखा, समझा एवं परखा है तथा इसी को लेखन के माध्यम से उद्घाटित किया है।

कस्बाई पृष्ठभूमि पर लिखित 'एक सड़क सत्तायन गलियाँ' कमलेश्वर का पहला उपन्यास है, इसमें उन्होंने एटा-मैनपुरी क्षेत्र के जन जीवन का यथार्थ के धरातल पर बड़ा मार्मिक चित्रण किया है। इस क्रम में कई उपन्यास आए जो अपने मूल्य में मध्यवर्गीय जीवन चेतना को समेटे हैं। 'डाक बंगला' की पृष्ठभूमि तो सामाजिक विसंगतियों, टूटते जीवन मूल्य, वर्जनाओं के प्रति एक मुखर विरोध का स्वर लेकर आता है। मातृहीन 'इरा' का विमल के प्रति आकृष्ट होकर भी जीवन में अनेक लोगों से जुड़ने-बिछुड़ने और संघर्ष की कहानी है। इसी कड़ी में 'समुद्र में खोया हुआ आदमी' उपन्यास आया जो मात्र ६७ पृष्ठों का है जो निम्न मध्यवर्गीय जीवन का प्रतीक है। प्रमुख पात्र श्यामलाल बाबू, तारा, वीरन, हरवंश आदि हैं। वीरन इसका प्रमुख पात्र है, जो समुद्र में खो जाता है। समुद्र यहाँ प्रतीक है- समाज का। आर्थिक विषमता मानवीय मूल्यों को तोड़ रही है तथा निम्न मध्यवर्गीय उसे जीवित रखने का असफल प्रयास करता है।

'काली आँधी' में राजनीति के क्षेत्र में शिखर पर पहुँचने वाली आधुनिक नारी (मालती) का द्वन्द्व सफलतापूर्वक अंकित किया गया है। 'तीसरा आदमी' में प्रेम के त्रिकोण को दर्शाया गया है। छोटे कस्बे का आदमी जब महानगर की यांत्रिकता, भीड़, अकेलापन, निरर्थकता-बोध, संवेदनहीनता के परिवेश में आता है, तो कैसे टूट कर बिखर जाता है। आर्थिक अभाव के कारण

* सह आचार्य, हिन्दी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, राजस्थान

एक दाम्पत्य जीवन कैसे टूट जाता है तथा बीच में तीसरा आदमी प्रवेश कर जाता है। इसी आर्थिक विषमता का दर्द 'राजा निरबंसिया' का जगपाती भी झेलता है– ''देखो चंदा चादर के बराबर ही पैर फैलाये जा सकते हैं, हमारी औकात इन दवाइयों की नहीं है।'' व्यक्ति के अरमान व जज्बात एक पल में कैसे टूटकर बिखर जाते हैं। इसका दृश्य कमलबोस व चंदा के माध्यम से 'आगामी अतीत' में बड़ा हृदयग्राही ढंग से किया गया है। कमलबोस व चंदा में प्रेम होता है और चंदा घर बसाने की सोचती है लेकिन यह एक अधूरा ख्वाब सिद्ध होता है। कमलबोस चन्दा की आशा पर पानी फेरते हुए दूसरी शादी कर लेता है। 'वहीबात' में चीफ इंजीनियर प्रशान्त की पत्नी समीरा पति के यांत्रिक जीवन से ऊबकर उसके डिप्टी चीफ नकुल से प्रेम करने लगती है, किन्तु नकुल की व्यस्तता उसे फिर निराश करती है। यह रिक्तता का अनुभव करती है। उसके जीवन में फिर वही बात लौट आती है। उपन्यास में तीनों के अंतर्द्वन्द्व का मार्मिक चित्रण किया गया है। 'सुबह दोपहर शाम' कमलेश्वर रचित उपन्यास परतंत्र भारत की तनावपूर्ण स्थितियों का जीवन्त वर्णन प्रस्तुत करता है। इस उपन्यास में गुलामी से पीड़ित भारतीय जनता, देश भक्ति की भावना, क्रान्तिकारियों की भूमिका और तत्कालीन परिस्थितियों का प्रतिबिम्ब है। एक ओर उपन्यास में राजनैतिक संघर्ष है तो दूसरी ओर गाँव सरकार, धार्मिकता, त्यौहारों का भी मार्मिक चित्रण है। 'सुबह दोपहर शाम' में कमलेश्वर ने तीनों पीढ़ियों की दास्तान को अंकित किया है। उपन्यास की पृष्ठभूमि मध्यवर्गीय परिवार की देशभक्ति उनकी कुर्बानी को रोशन किया है। पात्रों में बड़ी दादी, जसवंत, संतो, शान्ता, प्रवीन, तहसीलदार इंस्पेक्टर आदि हैं, जिसमें सबसे सशक्त बड़ी दादी हैं। 'रेगिस्तान' यह मात्र ३८ पृष्ठों का लघु उपन्यास है। उपन्यास का सत्य एक कड़वा यथार्थ है। 'सुबह दोपहर शाम' अगर स्वतंत्रता पूर्व की संघर्ष गाथा है जो रेगिस्तान में स्वतंत्रता पश्चात् के उन लोगों के टूटते सपनों की कहानी है। जिन्होंने आजादी के साथ अपने बहुत सारे ख्याब जोड़ रखे थे। इनके सपने शीशे की तरह चूर–चूर हो गये। 'लौटे हुए मुसाफिर' व 'कितने पाकिस्तान' भारत–पाकिस्तान के विभाजन को बेहद संवेदनशीलता के साथ चित्रित करते हैं। हिन्दू व मुसलमान दोनों धर्मों के नाम पर देश–विभाजन करना चाहते थे, दंगे करवाते हैं। इस पर 'लौटे हुए मुसाफिर' की 'नसीबन' कुढ़ कर कहती है– ''दिमाग खराब हो गया है, इन लोगों का अरे पूछो को क्या बदलेगा। अपना नसीब, जो है, सो यही रहेगा।'' 'नसीबन' सामाजिक चेतना से ओत–प्रोत नारी है।

कमलेश्वर का उपन्यास 'समुद्र में खोया हुआ आदमी', 'तीसरा आदगी', 'डाक बंगला', 'काली आँधी', 'कितने पाकिस्तान' समाज के विभिन्न वर्गों का प्रतिनिधित्व करते हुए उपन्यास हैं। जो समाज के विभिन्न वर्गों की दास्तान को बयान करते हैं। कमलेश्वर के उपन्यासों की विशिष्टता है कि जहाँ वे अपने उपन्यासों में निम्नवर्ग एवं निम्न मध्यवर्ग के चित्रों को मुखरित करते हैं साथ–साथ यह प्रतीति करवाते हैं कि महानगरीय जीवन से कस्बा जीवन में कितना आनन्द एवं मधुरता है, कस्बों में आज भी अपनापन, विश्वास भाईचारा महसूस होता है। 'समुद्र में खोया हुआ आदमी' कथानक की पृष्ठभूमि निम्न मध्यवर्ग की है। श्यामलाल का पात्र निम्न मध्यवर्ग का प्रतिनिधित्व

करता है। श्यामलाल खुद और उसका परिवार दिल्ली महानगरीय समुद्र में खो गया है। महानगरीय समुद्र की धाराओं के थपेड़ों ने श्यामलाल के समय परिवार को खंडित कर दिया। आर्थिक विषमता के कारण श्यामलाल समाज के रीत-रिवाजों के खिलाफ जब समाज का प्राणी मानव जाता है तो अनेक प्रश्न खड़े हो जाते हैं। श्यामलाल की बेटी तारा का कुँवारी माँ बनना यह सबसे बड़ा दोष माना जाता है। आर्थिक परिस्थिति के कमजोर होने से व्यक्ति को समाज में रहना उसके लिए मुश्किल बन जाता है। समाज के नियमों का उल्लंघन होते ही परिवार सबकी नजरों से उतर जाता है।

'तारा' अपनी भी विवशता को पेश करती है अपनी माँ को अपने बच्चों की आया बनाकर रख देती है, यहाँ तक कि घर की नौकरानी को भी निकाल देती है और अपनी माँ से काम करवाती है। अगर वह चाहती तो एक आया का प्रबंध अपने बच्चों के लिए कर सकती थी, किन्तु यह अपनी माँ की विपरीत परिस्थितियों को भुनाती है और एक माँ अपनी ही बेटी के घर में आया बनकर रह जाती है। श्यामलाल लोहे की फैक्ट्री में चौकीदार बनकर रह जाता है। पति-पत्नी एक शहर में होते हुए भी साथ रह नहीं सकते, आर्थिक परिस्थिति के असर से श्यामलाल का सामाजिक जीवन, दाम्पत्य जीवन विघटित हो जाता है। कमलेश्वर ने एक बेबस बेरोजगार अर्थविहीन बाप की बेबसी का चित्र को प्रस्तुत किया है।

'तीसरा आदमी' उपन्यास में लेखक ने मनुष्य की कश्मकश को उभारा है। कमलेश्वर के 'तीसरा आदमी' उपन्यास में महानगरीय जीवन जीता निम्न मध्यवर्ग कितनी जद्दोजहद करता है। 'तीसरा आदमी' का नायक अपनी तनख्वाह में इजाफा हो इसलिए इलाहाबाद से दिल्ली आता है। किन्तु यह नायक 'नरेश' इलाहाबाद से दिल्ली तक के सफर में इतना पीसा जाता है कि उसका दाम्पत्य जीवन ही विघटित होता जाता है। महानगरीय जीवन उसके दाम्पत्य जीवन के लिए अभिशाप बन जाता है।

'डाक बंगला' कमलेश्वर का एक लघु उपन्यास है। इस उपन्यास के कथानक में नारी की दयनीय स्थिति के दर्शन होते हैं। उपन्यास की नायिका स्वच्छंद प्रेम में विश्वास रखती है। इसी कारण विवाह के बंधन से पूर्व ही वह बिरेन को समर्पित हो जाती है। 'इरा' जो इस उपन्यास की नायिका है, वह अपने प्रेमी बिरेन के प्रेम में अपनी मान-मर्यादा का उल्लंघन करती है। उपन्यासकार ने एक ओर उन नारियों की स्थिति की ओर अपनी कलम चलाई है जो प्रेम और विश्वास को सर्वस्व समझती है। तो दूसरी ओर बिरेन के पात्र के द्वारा समाज में जो बेरोजगारी व्याप्त है उसी की ओर भी अपने विचारों को व्यक्त किया है। आज भी युवा पीढ़ी पढ़-लिखकर अच्छी नौकरी की तलाश करने में जुट जाती है बिरेन का चरित्र बेरोजगार व्यक्ति का प्रतिनिधित्व करता है। आज की युवा पीढ़ी नौकरी न मिलने पर हताश और मायूस हो जाती है। अपने आप पर से उसका विश्वास उठ जाता है। विवशता एवं असफलता उसके आत्मविश्वास पर कुठाराघात करती है। वह युवा संभले उससे पूर्व ही वह बेजार हो जाता है और उसमें पलायनवादिता आ जाती है।

'काली आंधी' उपन्यास की पृष्ठभूमि राजनीति के धरातल पर अवतरित है। इस उपन्यास में लेखक ने अपने स्वानुभव को अभिव्यक्त किया है। राजनीति का खेल कैसे खेला जाता है? एवं राजनीति पक्ष के दाँव-पेंच और उठापटक के क्रूर खेल को अंकित किया है। 'काली आँधी' लघु उपन्यास के माध्यम से यह स्पष्ट किया है कि सफलता की आँधी अच्छे-अच्छे गुलिस्तान को उजाड़ कर रख देती है। जैसे मालती की सफलता ने उसके पारिवारिक जीवन को उधेड़ कर रख दिया। उपन्यासकार का सूक्ष्म निरीक्षण दाद माँग लेता है। आज के आधुनिक युग में समाज के द्वारा तय किये गये संबंध केवल नाम मात्र कहने तक ही सीमित रहे हैं। ''मालती की यह तीव्र इच्छा थी कि जग्गीबाबू होटल बंद कर कमेटियों के मेम्बर बनकर फायदा उठाएँ किन्तु- मैं...पति हूँ फायदा उठाने वाला गैर आदमी नहीं।''[१]

कमलेश्वर एक ऐसे जागरूक कथाकार हैं, जिन्होंने समकालीन राजनीतिक कुचक्र को भी आधार बनाया है। यह आतंरिक पहलुओं को निर्ममता से उद्घाटित करता है। राजनीति कितनी घिनौनी स्वार्थयुक्त झूठ और फरेब के धरातल पर उपस्थित रहती है। राजनीति कितनी दूर और यातनाजनक होती है इसका अनुभव जग्गीबाबू लगातार करते रहते हैं। राजनीति का खेल बड़ा ही भयंकर है। लोकतंत्र में चुनाव का महत्त्व निश्चित रूप से ऊँचा है, मगर उसमें कितनी चालें की जाती है तथा उसका लाभ किसको मिलता है। भारतीय जनता के प्रतिनिधि चुनाव में किन-किन हथकंडों का उपयोग करते हैं। यह मतदान करने वाली जनता बेदिमाग अनपढ़ और भुलायें में भटकन वाले लोगों का एक समुदाय भर है। ये जितने चुनाव हैं ये सिद्धांतों पर नहीं लड़े जाते। बेहताशा रूपया खर्च होता है। वोटों को खरीदने के लिए शराब पिलाई जाती है झूठे नारों पर लोगों को गुमराह किया जाता है तथा तरह-तरह के लालच दिये जाते हैं। कभी-कभी लाठी और जूते का सहारा लेना होता है। ''चुनाव में हमेशा वही विजयी होता है जिसके पास धन का बल होता है।''[२]

कमलेश्वर ने 'कितने पाकिस्तान' में वर्तमान परिस्थितियों का अवलोकन अपनी स्पष्ट दृष्टि एवं विचारों से पेश किया है। लेखक ने निर्भीक होकर देश के नेताओं की जबाबदारियों की ओर करारा व्यंग्य किया है। कारगिल के युद्ध में अनेक फौजियों ने अपनी जाने गवाईं और देश की रक्षा के लिए अपने प्राणों को दाँव पर लगा दिया, लेकिन नेता लोग क्या कर रहे हैं? कारगिल के युद्ध के पश्चात् किस नेता ने उन जख्मी सिपाहियों की सुध ली? नेता लोग विदेश भ्रमण में लगे हुए थे। जख्मी सिपाहियों को सड़ने के लिए सिविल हॉस्पिटल में भर्ती कर दिया। उनके इलाज के लिए देश के पास बजट नहीं है। बाजपेयी अपने घुटने का ऑपरेशन-चिकित्सा करवाने विदेश जा सकते हैं, परन्तु उनके जख्मी सिपाहियों के लिए उनके पास इलाज के लिए बजट नहीं है। यह कैसी राजनीति है? प्रत्येक व्यक्ति/इंसान स्वार्थ में रचा-पचा है? उन्हें लापता जवानों की खोज करनी चाहिए। सत्ता प्रेम के चलते लापरवाही बरतने का जघन्य अपराध आपसे हुआ है, उसके लिए आप इतना तो कर ही सकते हैं। ''देश के शोकग्रस्त समय में शामिल एक गरीब और पत्रकार नेताओं को सिर्फ गरीब और पत्रकार ही झाड़ लगा सकते हैं।''[३]

तत्पश्चात् लेखक ने देवताओं में व्याप्त काम, लालच और सत्ता लोलुपता को बताया है। लेखक ने संपूर्ण वैश्विक संस्कृतियों को लिया जो अपने अपने स्वार्थ से दबी हुई है । महाभारत, रामायण के समय से लेकर आज तक के इतिहास का ब्यौरा प्रस्तुत किया है। प्रत्येक युग में विष्णु रूपी राम का अवतार होना यह सूचित करता है कि ''जब जब अन्याय अत्याचार होता है, तब तब मनुष्य की चेतना और आत्मा को यह प्रलयकारी झंझावात झकझोरते हैं और काली आँधियाँ चलती हैं।''[४]

राजनीति एक ऐसा खेल है जिसमें काम की शक्ल ही बदल जाती है। लल्लूलाल मालती का दायिना हाथ है। लल्लूलाल मुख्य पात्र है वह जैसा कहता है वैसा करता है। शक्ल ही बदल जाती है.... ''हर काम करो पर उसकी शक्ल बदलकर करो समझे भइये। शराब पियो किंतु दवाई की शीशी में डालकर उसका लुफ्त उठाओ।''[५]

स्वातंत्र्योत्तर कालीन उपन्यासों की शृंखला में कमलेश्वर ने सामाजिक उपन्यासों की पृष्ठभूमि में नारी की विषमता को केन्द्रस्थ बिंदु बनाया है। 'समुद्र में खोया हुआ आदमी' की 'तारा', 'तीसरा आदमी' की नायिका 'चित्रा', 'डाक बंगला' उपन्यास की नायिका 'इरा', 'काली आंधी' उपन्यास की नायिका 'मालती' जो एक ऐसा नारी पात्र है जो अपनी मूलभूत जवाबदारियों से मुँह फेर लेती है। सफलता का नशा ऐसा लग जाता है कि पीछे मुड़कर देखने की कोशिश ही नहीं की। उनका आखिरी नया उपन्यास 'कितने पाकिस्तान' में तो वैश्विक नफरत की आँधी को उभारा है। लेखक की कलम दाद माँग लेती है, उन्होंने नारी के विविध रूपों को व्यक्त किया है। नारी अनेक रिश्तों से जुड़ी हुई है कहीं वह पत्नी है, माँ है, बहन है, बेटी है। जिसका रूप परिस्थितियों के अनुसार बदलता है। भारतीय संस्कृति में नारी की अदम्य सहनशक्ति, धीरज, रीति-नीति की परंपराओं से बँधी हुई बताया गया है। आधुनिक युग में जहाँ अन्य सभी क्षेत्रों में परिवर्तन आया है वहीं इन्सान में क्यों न आए? कमलेश्वर ने 'समुद्र में खोया हुआ आदमी' की 'तारा' उसकी माँ रम्मी में परिस्थितिजन्य परिवर्तन आया है। तीसरा आदमी की 'चित्रा', 'डाक बंगला' की 'इरा' में भी यहीं परिस्थितिजन्य परिवर्तन है।

'समुद्र में खोया हुआ आदमी' की तारा विषम परिस्थितियों से घिरी हुई माँ को साथ देने से अधिक उसका फायदा कैसे उठाया जाए यह सोचती है माँ का ममत्व, अपनापन प्रेम वह भूल चुकी है, हालाँकि वह खुद भी बनी है। भारतीय परंपरा बुजुर्गों का आदर भाव सिखाती है पर आधुनिक युग के परिवर्तन से वे संस्कार न जाने कहीं गायब हो गए। 'तीसरा आदमी' की 'चित्रा' शंकाशील पति के होने से उसका पत्नीत्व प्रेम गहन अंधकार में खो जाता है। 'तीसरा आदमी उपन्यास' में नरेश अत्यधिक महत्त्वाकांक्षी है और इसी वजह से वह अपना तबादला दिल्ली करवा देता है। जहाँ वह अपने मित्र भाई सुमन के साथ एक कमरे में आकर रहता है। वहीं से दाम्पत्य जीवन का विघटन शुरू हो जाता है। शंकाशील स्वभाव विषमताएँ और विश्वास का अभाव जिस दाम्पत्य जीवन में होगा वहीं दाम्पत्य जीवन में दरार पड़ जाती है जो कभी भी भरी नहीं जा सकती

है। कमलेश्वर ने चित्रा नायिका के माध्यम से आज की आधुनिक नारी का रूप चित्रित किया है। विषम से विषम परिस्थितियों में भी चित्रा अपना कर्तव्य निभाती है। अपने बच्चे की सही तरह से परवरिश करती है।

'डाक बंगला' की नायिका 'इरा' जो स्वच्छंद प्रेम में विश्वास रखती है साथ-साथ प्रेम के अभाव से जीवन को सूना समझती है। अपने इसी स्वभाव के कारण वह समाज की अनेक ठोकरें खाती है। पुरुष प्रधान समाज में पुरुष नारी की बेबसी का लाभ उठाने में कहीं भी कसर छोड़ता नहीं है। नारी सभी रिश्तों से, मौकों पर उसे छला जाता है। उसकी बेबसी का, विषमताओं के दायरों में घिरी हुई होने से कदम-कदम पर पुरुषों द्वारा कुचली गई है। 'डाक बंगला' की 'इरा' जो सिर्फ अपने जीवन में प्रेम की अभिलाषा रखती है लेकिन किस्मत की मारी 'इरा' को यह अंतरात्मा निहित सच्चा प्रेम नहीं मिलता है। जहाँ इसे प्रेम मिलता है वहीं अनमेल विवाह की समस्या आ जाती है।

कमलेश्वर ने 'डाक बंगला' उपन्यास में यह स्पष्ट करने की बेहतरीन कोशिश की है कि आर्थिक विषमताओं से दूसरी अनेक समस्याएँ उभरती रहें। निम्न मध्यवर्ग की नारी हो या चाहे मध्यवर्ग की नारी हो जब आर्थिक रूप से असहाय होती है, दयनीय स्थिति होती है तो समाज के ठेकेदार वर्ग, पुरुष वर्ग उसकी परिस्थितियों का संपूर्ण फायदा उठाने में जरा भी कसर छोड़ते नहीं है। समय की सताई हुई नारी, समय की मारी नारी किसी भी पुरुष की वासना का शिकार बन जाती है उसकी बेबसी उसे कहीं का नहीं छोड़ती है। कमलेश्वर ने बड़ी विशिष्टता से यह स्पष्ट किया है कि अन्य सारी विषमताओं की जड़ आर्थिक परिस्थिति हैं। कमलेश्वर ने अपने उपन्यासों में समाज का बहुत ही गहन अध्ययन एवं विश्लेषण प्रस्तुत किया है। उनके उपन्यास समाज की समसामयिक समस्याओं पर आधारित हैं तथा समाज को सुधारात्मक रवैये के लिए अनेक स्थानों पर करारा व्यंग्य प्रस्तुत किया गया है।

सन्दर्भ

१. गायत्री कमलेश्वर, मेरे हमसफर, राजपाल एंड सन्स, दिल्ली, २००५, पृ. ११०
२. योगेन्द्र दत्त शर्मा, 'कमलेश्वर को साहित्य जगत की श्रद्धांजलि' आलेख, आजकल, मार्च २००७, पृ.१०१
३. धनंजय वर्मा, हिन्दी कहानी का समकालीन सफर, पृ. २५४
४. कमलेश्वर, खोई हुई दिशाएँ, समग्र कहानियाँ, पृ. ३७८
५. धनंजय वर्मा, हिन्दी कहानी का समकालीन सफर, पृ. १८०-१८१

Shodh Navneet (International Peer-Reviewed Research Journal)
ISSN : 2321-6581, Vol. XXII, January - June 2024

कृष्णा सोबती के उपन्यास जिंदगीनामा में जीवन मूल्य

राधा सिंह*

हिन्दी की विख्यात बुद्धिजीवी लेखिका का जन्म १८ फरवरी १९२५ ई. को गुजरात में (अब पाकिस्तान के पंजाब में है) हुआ, जो झेलम-चिनाव नदियों के बीच का इलाका है। जो देश विभाजन के बाद पाकिस्तान का हिस्सा बन गया। स्वतंत्रता प्राप्ति के काल में कृष्णा जी २०-२२ वर्ष की थी। स्वतंत्र देश की लेखिका और नागरिक होने के नाते साधारण व्यक्ति की हैसियत से वह जी रही हैं। कृष्णा जी के जीवन का प्रारंभिक काल देश और समाज की दृष्टि से उथल-पुथल का काल था। भारतीय साहित्य के परिदृश्य पर हिन्दी की विश्वसनीय उपस्थिति के साथ कृष्णा सोबती अपनी संयमित अभिव्यक्ति और सुथरी रचनात्मकता के लिए जानी जाती है। कृष्णा सोबती कलम की दुनिया को आजीवन जीती हुई चिर विश्राम के लिए २५ जनवरी २०१९ ई. को अनन्त में विलीन हो गईं।

कृष्णा सोबती ने हिन्दी की कथा-भाषा को एक विलक्षण ताजगी दी है। उनके भाषा-संस्कार के घनत्व, जीवंत प्रांजलता और संप्रेषण ने हमारे समय के अनेक पेचीदा सच आलोकित किए हैं। उनके रचना- संसार की गहरी सघन ऐन्द्रियता, तराश और लेखकीय अस्मिता ने एक बड़े पाठक वर्ग को अपनी ओर आकृष्ट किया है और हिन्दी के आधुनिक लेखन के प्रति पाठकों में एक नया भरोसा पैदा किया है।

ज्ञानपीठ, साहित्य अकादमी पुरस्कार और उसकी महत्तर सदस्यता के अतिरिक्त, अनेक राष्ट्रीय पुरस्कारों और अलंकरणों से सुशोभित कृष्णा सोबती साहित्य की समग्रता में अपने को साधारणता की मर्यादा में एक छोटी-सी कलम का पर्याय ही मानती हैं। समय को लांघ जाने वाला लेखन ऐसे लेखन से कहीं अधिक बड़ा होना चाहिए। साहित्य को जीने और समझने वाले हर आस्थावान व्यक्ति की तरह यह निर्मल और निर्मम सत्य उनके सामने हमेशा उजागर रहता है।

सामान्यतः मूल्य का अर्थ होता है जीवन के प्रति दृष्टिकोण, मानवीय विचार-धारा, व्यक्ति का समग्र व्यक्तित्व मूल्य निर्धारण होता है। उसके कार्य-व्यवहार व आचरण पद्धति आदि। मूल्य का सामान्य अर्थ किसी वस्तु का भाव या तोल-मोल। मूल्यों का संबंध मानव से स्थापित किया गया है। समाज से मानव को अलग करके नहीं देखा जा सकता है। मूल्यों की सत्ता मानव के वैचारिक जगत पर निर्भर होता है। कोई भी व्यक्ति हो या समाज इन्हीं मूल्यों के आधार पर ही अपना

* शोधार्थी, हिन्दी विभाग, सहकारी पी.जी. कॉलेज, मिहरावाँ, जौनपुर (उ.प्र.)

अस्तित्व स्थापित करता है। श्री डब्लू. एम. अर्बन के अनुसार "वही वस्तु अंतिम रूप में स्वलक्ष्य दृष्टि से मूल्यवान है जो कि व्यक्तियों को आत्म विकास एवं आत्मानुभूति की ओर ले जाती है।"[१]

मूल्य मानव की चिंतन और विचरण परिणाम है। मानव की नैतिकता मूल्य को बचाए रखती है। डॉ. सुखदेव के अनुसार "प्रत्येक समाज में जो एक प्रकार की विशिष्ट आचार-पद्धति निर्धारित की जाती है। लक्ष्य यही होता है कि समाज के सामूहिक जीवन को समृद्ध और सुखी बनाए समुचित समाज द्वारा स्वीकृत वह विशिष्ट आचार पद्धति धीरे-धीरे एक सुस्पष्ट एवं सुनिश्चित व्यवस्था का रूप धारण कर लेती है और समाज के अंदर रहने वाले सभी व्यक्तियों के आचरण का निर्देश व नियंत्रण करने लगते हैं। यहाँ आकर इस सुनिश्चित एवं व्यवस्थित आचार पद्धति को नैतिकता की संज्ञा दी जाती है।"[२] प्रत्येक समाज व्यक्ति पर मूल्यों का अनिवार्यता थोपते हैं। मूल्यों के सामने कितना भी प्रतिष्ठित व्यक्ति क्यों न रहे उसे झुकना पड़ता है। उस मूल्यों की प्रक्रिया समाज के साथ निरंतर चलती रहती है।

डॉ. नामवर सिंह का कहना है कि "साहित्यकार जिन मूल्यों को असंगत पाता है पुराने हो या नये, उसकी सामाजिक आवश्यकता के अनुरुद्ध मूल्य असंगत हो गए उसकी निरर्थकता उनके खोखलेपन का उद्‌घाटन जीवंत मानव चरित्रों के द्वारा और वास्तविक मानव की स्थितियों द्वारा करता है।"[३] हमें कभी-कभी पुरातन मूल्यों को त्यागना पड़ता है और नवीन जीवन मूल्यों को अपना लेना पड़ता है। प्रेम, स्नेह, करुणा, वात्सल्य आदि मानव जीवन के मूलभूत मूल्य हैं। किसी भी समाज की संस्कृति का अध्ययन उस समाज में प्रचलित मानव मूल्यों के आधार पर ही संभव होता है। मूल्यों का महत्त्व व्यक्तिगत, सार्वजनिक एवं राष्ट्र व अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रकट होते हैं। सुखी समाज और शांति के साथ जीवन जीने के लिए मूल्यों की जरूरत होती है। पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति के संपर्क, अंग्रेजों का शासन, शिक्षा का प्रसार, वैज्ञानिक प्रगति आदि के कारण मूल्य में विघटन देखे जा सकते हैं।

मनुष्य की जन्मजात प्रवृत्तियों में काम-प्रवृत्तियाँ एक सहज एवं मूल प्रवृत्ति है। स्त्री पुरुष का आकर्षण इस कामवृत्ति का परिणाम है। काम व्यक्ति के शारीरिक एवं व्यक्तिगत आवश्यकता है। सामाजिक दृष्टि से यह मूल्य अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। वात्स्यायन के कामशास्त्र अनुसार "काम जो कि जीवन का अनिवार्य अंग है। मनुष्य की सद्गति और दुर्गति दोनों का कारण काम है। मनुष्य के लिए काम-सेवन स्वाभाविक और प्रकृति का नियम है, किन्तु उसका अति सेवन अहितकर है।"[४]

मनुष्य को आनन्दमय जीवन जीने के लिए कामेक्षा की पूर्ति आवश्यक है। नारी पुरुष की पारस्परिक आकर्षण एवं विकर्षण प्रवृत्तियों से संबंधित शक्ति है। डॉ. गणेशन के अनुसार "सेक्स जीवन का सबसे जघन्य किंतु सबसे पवित्र सत्य है। अनादिकाल से मनुष्य की आंतरिक तथा बाह्य प्रवृत्तियों को रूप देती है और आने वाली कामवासना सृजन की मूल प्रेरणा है, तो मनुष्य को पशुता से ऊपर उठने की बाधा देने वाली सबसे बड़ी शक्ति है।"[५]

समाज में रहकर मानव अपनी सामूहिक एकता का परिचय देता है। समाज में रहकर ही मानव अपना सर्वांगीण विकास करता है। मानव की परस्पर सहयोग वृत्ति, उन्नति और प्रगति में योगदान देती है। यह सहयोग उसके सामाजिक मूल्यों का क्षेत्र निर्धारित करता है। सोबती के उपन्यास साहित्य में सामाजिक व्यवस्था की प्रधानता दिखाई पड़ती है। परिवार एक ऐसी व्यवस्था है जहाँ व्यक्ति परस्पर संबंधों का निर्वाह करके अपने चारों ओर प्रेम और सद्भाव का प्रवेश निर्माण करता है। मानव परस्पर सहयोग एकता, दया, सहानुभूति आदि मानवतावादी दृष्टिकोण का परिचायक है। लेकिन स्वातंत्र्योत्तर समय में परिवार में वैमनस्य, द्वेष, घृणा आदि परिवार विघटन करने लगे हैं।

'जिंदगीनामा' उपन्यास में शाह परिवार संयुक्त परिवार के रूप में चल रहा है। जिसने मान-मर्यादा, प्रेम आपसी सहयोग, भातृ-प्रेम सभी कुछ रूप में विद्यमान है। चाची महरी भी अपने संयुक्त परिवार का स्मरण करती है। जिसका सुख-शांति, मान-सम्मान सब कुछ छोड़ कर वह शाहो की हवेली आ पहुँचती थी। इस प्रकार सोबती जी ने सामाजिक एवं पारिवारिक मूल्यों को दर्शाया है।

प्रेम मानव की प्रेम भावना उसकी रागात्मक वृत्ति की सूचक है। स्त्री-पुरुष प्रेम में दांपत्य प्रणय और शारीरिक आकर्षण के संबंध में कृष्णा सोबती का दृष्टिकोण सर्वथा नया है। सोबती ने अपने उपन्यासों में पंजाबी परिवेश की परंपरागत प्रेम भावना को उजागर की है। लोकजीवन की अमरत्व प्राप्त प्रेम कथाएं सामान्य जनजीवन को आकर्षण पाशों में बांधे हुए हैं। प्रेम में धर्म और बलिदान का एक सहज भाव है।

'जिंदगीनामा' उपन्यास के ज्यादातर पात्र प्रेम-गाथा लीन दिखाई देते हैं। इस सभी में निष्कपट प्रेम राबिया का है। उसका प्रेम वाणी में मौन और अनुभूति में अति तीव्र है। राबिया शाहजी के घर लालीशाह की देखभाल करती है। जब तक राबिया की दृष्टि शाह जी पर पड़ती है तो उसमें स्थिरता आ जाती है और उसे प्यार करने लगती है। राबिया का प्रेम सही तौर पर जाति-धर्म, आयु और संबंधों की बेड़ियों को तोड़कर प्रेम में लीन होती है, उसका प्रेम पवित्र प्रेम नजर आता है। जिसमें प्रेम की पूजा आराधना और मन ही मन वरण करने का भाव भी निहित है। तारे शाह एवं बरकाती की प्रेम जाति धर्म और घर परिवार की मान-मर्यादा को तोड़ता हुआ प्रेम है। तारे शाह महिपत की लड़की के साथ भागकर विवाह करता है। इस प्रेम में घर परिवार की मर्यादा को धक्का लगता है।

कृष्णा सोबती के उपन्यासों में यह तथ्य उभरकर सामने आता है कि जीवन मूल्यों में परंपरागत एवं आधुनिकता का टकराव दिखाई पड़ता है। हमारे समाज में परंपरागत आदर्शों के कारण विवाह पूर्व सेक्स या प्रेम को मान्यता नहीं है। लेकिन आज के समय विवाह पूर्व सेक्स हो या प्रेम आम हो गया है। प्रेम विवाह के संबंध में परंपरा से चली आ रही रूढ़ियाँ और आदर्श टूटने

लगे हैं।

सतीत्व एक परंपरागत यौन संबंधों की पवित्रता है। स्वयं कृष्णा सोबती के शब्दों में ''साफ हो यह बात की स्त्री पुरुष इस धरती पर जीवन की अटूट धारा को सुरक्षित रखने वाले हैं। एक दूसरे के निकटतम हैं, साथ-साथ पलते हैं। एक साथ घर बनाते हैं। बच्चों को जन्म देते हैं। इस दुनिया को खूबसूरत बना कर जीते हैं। लोगों की धड़कती ऊर्जा को जीवंतता से कायम करते हैं। इन दो मानवीय किस्मों के बनने वालों सपने को खंडित करते हैं। उसकी गरमाहट को ठंडा करते हैं।''[६] सबसे ज्यादा परंपरागत संस्कारों पर आघात सोबती की मित्रों ने की है। शायद उसके बचपन का वातावरण भी वैसा ही है। वस्तुतः हमेशा व्यक्ति के जीवन में परंपरागत एवं नवीन मूल्यों का टकराव होता आ रहा है। लेकिन आज ज्यादातर मूल्य जो फलदायी होते हैं उसकी ओर लोगों का झुकाव सहज ही दिखाई देता है।

'जिंदगीनामा' में फतेह और शेरा के विवाह पूर्व सेक्स व्यवहार सामने आते हैं। वे दिन और रात भर रति क्रीड़ा में मग्न हैं। उन्हें खोजने के लिए परिवार और गाँव के लोग निकलते हैं। शाहनी कहती है कि ''खुले आसमान तले नए नवेले आशिक उन्हें दिखाई दिए बिल्छों के झुरमुट में दोनों एक दूसरे से लिपटे नींद में बेखबर देखा।''[७] वे नींद में इस तरह सोए कि नींद से जागना नहीं चाहते शाहजी इस कार्य को उचित न मानते हुए उन दोनों का विवाह करवा देना चाहता है। सोबती ने 'दिलो-दानिश' उपन्यास में महक और कुटुंब प्यारी के यौन संबंध का चित्रण किया है। 'यारों के यार' में तमाशा और तमन्ना दोनों भी कार्यालय में सेक्स करती नजर आती हैं। डॉक्टर प्रमिला कपूर के अनुसार ''सेक्स और जीवन का जन्म एक साथ हुआ और वे एक दूसरे के भिन्न हैं। सेक्स की सहज प्रवृत्ति जीवन के गति चक्र में सदा ही शक्तिशाली प्रेरक तथा आगे बढ़ने वाली शक्ति रही है।''[८] इस प्रकार यौन संबंध आदिकाल में एक पवित्र विषय था जो उसे विवाह पूर्व या विवाह के बाद दूसरों से यौन संबंध रखना अपवित्र माना जाता था, आज उस मूल्यों में विघटन होने लगी है।

कृष्णा सोबती के उपन्यासों में आडंबर एवं अंधविश्वास देखने को मिलते हैं। 'जिंदगीनामा' के ग्रामीण पात्र अपनी अशिक्षा के कारण अंध विश्वास एवं बड़े आडंबर से घिरे नजर आते हैं। शिक्षित चिकित्सा का आभास ग्राम्य लोगों को अभिशाप बना हुआ है। शाह जी के छोटे भाई काशीशाह प्रत्येक रोग का दवा देता है। वह झाड़-फूंक भी करता है - ''गाँव में खेलते हुए बच्चों में एकाएक भागदौड़ मच गई। रहीम मुसल्लों में जुड़वा बेटे दौड़ते हांफते..... लड़का निकला और आरूढ़ियों पर गायब हो गया हमने अपनी आँखों से देखा है।''[९] भयभीत होकर घरों में बड़े बूढ़ों के शरण जा पहुँचे बेबो शेखनी, बाबा बालशाह से फरियाद करने लगी। बन्ने, कन्ने की माँ ने कहा - ''अरे बच्चों आरूढ़ियों की ओर न जाना। दिन दहाड़े जिन्हें ख्वास नजर आया है। रब्बे खैर करे।''[१०] जो बच्चा जिन्न देखा था और सुखनी का पुत्रवधू दूध पीते-पीते बेहोश हो गया फिर लोग ने रोने चिल्लाने लगे सुक्खनी छाती पीट-पीटकर रोने लगी, फिर बूढ़ी स्त्रियाँ उसे तंत्र -मंत्र का प्रयोग करने लगीं। बस बच्चे देखते-देखते ही आँख खोल लिया जमाल बच्चे के सिर पर हाथ फेर दिया। इस प्रकार

जमाल ने तंत्र-मंत्र द्वारा मृत बच्चों को जीवित कर दिया। जमालो कहती है कि "इसकी खेसी के नीचे निम्बू धरके पत्ते और लोहा रख डालना।"[११] भूत-प्रेत भगाने का प्रयोग लोग करते हैं। जिंदगीनामा में टिब्बेवाला बाला ने मिर्च की धुली जलाकर उसे धमकाकर भूत से बातचीत किया फिर भूत उसकी इच्छा बताता, फिर भूत भाग जाता है। गाँव में जब आर्य प्रचारक आए हुए थे। जो वैदिक धर्म आर्य समाज और ऋषि दयानंद के आदर्शों का वर्णन ग्रामवासियों के मध्य करते हैं। ब्राह्मणों पर उन्होंने गाँव की स्त्रियों को पितरों का वर्णन करते हुए देखा तो क्रोधित हो उठे - "मैं हर वर्ष बता कर जाता हूँ कि पितरों के नाम पर श्रद्धा करना वैदिक धर्म के विरुद्ध है; क्योंकि यह केवल अंधविश्वास है।"[१२] इस प्रकार गाँव के लोग अंधविश्वास में डूबे हुए हैं। ब्राह्मणों ने तंत्र-मंत्र और आचरण के स्थान पर विभिन्न प्रकार के जप-मालाएं देवी-देवता और अलग-अलग मूर्तियाँ बनाकर अशिक्षित लोगों को बहुत गहराई से उलझाते हैं। अमीर और गरीब की पूजा-पाठ अलग-अलग कर देते हैं।

सोबती के उपन्यासों में जाति-भेद एक विशेष मूल्य के रूप में चित्रण हुआ है। विवाह के संबंध में जाति का विशेष महत्त्व दिखाया गया है। कुल, गोत्र और धर्म को देखकर के विवाह का बंधन स्वीकारा जाता है। सोबती के 'जिंदगीनामा' उपन्यास में शाहजी कहता है कि "कुल गोत्र या खानदानी देखने जाँचने की टेब-टेक तो कोई बुरी बात नहीं है। हमारे पुरखों ने सोच समझ के ही सह बंधन बनाया था। जो मेल नहीं मिलते उन्हें तर्क कर दिया। धर्मशास्त्र कहते हैं कि किस्मत और तासीर का फर्क सात पीढियों में.....।"[१३]

निष्कर्षतः कह सकते हैं कि कृष्णा सोबती के उपन्यासों में नवीन जीवन मूल्यों को परखने पर पता चलता है कि ज्यादातर मूल्यों का ह्रास या विघटन होता हुआ नजर आता है। उनके सभी स्त्रीपात्र मूल्यों को तोड़ते हुए नजर आते हैं। अगर नैतिकता की हम बात करें तो सोबती की स्त्री नैतिकता या अनैतिकता का प्रवाह न करती हुई समाज में प्राचीन काल से प्रचलित मान्यताओं को तोड़ रही है। प्रेम के नाम पर वासना की पूर्ति और मूल्य विघटन से प्रभावित आधुनिक पीढ़ी आदि पर प्रकाश डाला है। आज समाज में हर कहीं पर भौतिक साधनों की माँगों में होड़ लग गई है। इस कारण भी आपसी संबंध टूटने लगे हैं। एक-दूसरों से व्यक्ति संबंध कायम करना नहीं चाहता। मूल्य विघटन से भारतीय संस्कृति का ह्रास हो रहा है। आज की नारी पाश्चात्य भोग वादी प्रवृत्ति के कारण नैतिकता के बंधनों का त्याग करने लगी है। रिश्ते, नाते, धार्मिक एवं सामाजिक समस्याएं आदि में मूल्य घटता जा रहा है।

सन्दर्भ

१. डॉ. मोहिनी शर्मा, हिन्दी उपन्यास एवं जीवन मूल्य, पृ. सं. १
२. डॉ. सुखदेव शुक्ल, हिन्दी उपन्यास एवं नैतिकता, पृ. सं. २
३. डॉ. नामवर सिंह, मूल्य संस्कृति साहित्य और समय, पृ. सं. ३१
४. डॉ. मोहिनी शर्मा, हिन्दी उपन्यास एवं जीवन मूल्य, पृ. सं. ६८

५. डॉ. गणेशन, हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन, पृ. सं. ३१६
६. प्रभाकर श्रोत्रिय, वागर्थ, पृ. सं. १८
७. कृष्णा सोबती, जिंदगीनामा, पृ. सं. ११५
८. डॉ. प्रमिला कपूर, विवाह, सेक्स और प्रेम, पृ. सं. १७१
९. कृष्णा सोबती, जिंदगीनामा, पृ. सं. १६८
१०. वही, पृ. सं. १६८
११. वही, पृ. सं. १६९
१२. वही, पृ. सं. २५३
१३. वही, पृ. सं. ३४९

Shodh Navneet (International Peer-Reviewed Research Journal)
ISSN : 2321-6581, Vol. XXII, January - June 2024

श्रीकृष्ण का गोकुलागमन लीला माहात्म्य और चित्रकला में उसकी अभिव्यक्ति

जसवन्त सिंह चौधरी*

श्रीमद्भागवत महापुराण व अन्य पौराणिक संस्कृत साहित्य में कृष्ण लीला के कथा प्रसंगों का उल्लेख विभिन्न स्थानों पर हुआ है। जिसकी अभिव्यक्ति परवर्ती भाषा साहित्य व ललित कलाओं (मूर्तिकला, चित्रकला, संगीत आदि) में भी देखने को मिलती है। इन्हीं लीलाओं में से एक गोकुलागमन या वृन्दावन आगमन लीला भी है। भागवत पुराण के अनुसार गोकुल में कृष्ण द्वारा की गई लीलाओं के बाद मुख्य लीला प्रसंगों में यमलार्जुन मोक्ष लीला के पश्चात् वृन्दावन में होने वाली लीलाओं का आरम्भ होता है। उससे पहले स्थान परिवर्तन या गोकुलागमन लीला का विशेष महत्त्वपूर्ण प्रसंग आता है।

पौराणिक व संस्कृत साहित्य में कृष्ण गोकुलागमन या वृंदावन आगमन लीला वर्णन– गोकुल से वृन्दावन जाने के वृत्तान्त का सुंदर चित्रण भागवत में देखने को मिलता है। गोकुल में अनिष्टकारी घटनाओं को देखकर एक दिन सभी गोप इकट्ठे हुए और उपनन्द[१] गोप के 'अन्यत्र चले चलें' उपाय के अनुसार सभी गोपों ने दूसरी जगह जाने का निश्चय किया।[२] इससे पहले अनिष्टकारी घटनाओं में पूतना के चंगुल से छूटना, छकड़े से बचना, बवंडर रूपधारी दैत्य को चट्टान पर गिराने, यमलार्जुन वृक्षों के गिरने की घटनाएँ हो चुकी थी। जिससे सभी गोकुल वासियों को भय लगा रहता था।[३] 'वृंदावन' नाम के सुरम्य वातावरण युक्त वन को अपने लिए व अपने पशु संवर्धन के लिए उपयुक्त जानकर वृंदावन जाने का निश्चय किया गया।[४] सब लोगों ने अपनी गायें व घर का सामान लेकर वृन्दावन की यात्रा की। 'धनुष–बाण लेकर, सींग और तुरही बजाते हुए चल रहे थे। गोपियाँ शृङ्गार करके गीत गाती हुई रथों पर सवार होकर जाती थी।'[५] इसी प्रकार का संक्षिप्त वर्णन विष्णुपुराण में भी प्राप्त होता है।[६] विष्णुपुराण व भागवत दोनों में इस लीला वर्णन का पूर्ण साम्य है।

हरिवंशपुराण में इस लीला का वर्णन कुछ अधिक विस्तार से किया गया है। हरिवंशपुराण के अनुसार भेड़ियों (वृक) के बढ़ने के कारण अन्यत्र जाने का विचार ब्रज के लोगों को उचित लगा। यह लीला कृष्ण द्वारा व्रज को अन्यत्र ले जाने की चेष्टा से की गई थी। क्योंकि व्रज में सूखा पड़

* शोधार्थी, हिन्दी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, राजस्थान

चुका था चारों तरफ की हरियाली जा चुकी थी। इसी कारण से कृष्ण ने अपने शरीर से भेड़ियों को उत्पन्न करके व्रजवासियों को डरा दिया था। वृन्दावन में बरगद के बड़े वृक्ष (भाण्डीर वट) के पास व्रज को बसाने का निर्णय लिया गया। कृष्ण के अपने शरीर से भेड़ियों को उत्पन्न करने का वृत्तान्त भी इसमें आता है।[७] ब्रह्मवैवर्तपुराण में बकासुर, प्रलम्बासुर और केशी वध आदि लीला प्रसंगो के पश्चात् वृन्दावन गमन की लीला का उल्लेख किया गया है। इस पुराण में वृंदावन यात्रा का सजीव व चित्रात्मक वर्णन किया गया है। राधा, सुशीला आदि सहेलियाँ[८] शिबिका व रथों पर सवार थी वही यशोदा व रोहिणी अलंकारों से विभूषित होकर रथ पर यात्रा कर रही थी। नंद, सुनंद, श्रीदामा, गिरिभानु, विभाकर, वीरभानु और चंद्रभानु गोप हाथी पर बैठकर यात्रा कर रहे थे। कुछ लोग बैलों पर सवार थे। सिन्दूर, काजल, भोग-द्रव्य और क्रीड़ा-द्रव्य, वेश रचना की सामग्री, फूलों की मालाएँ, हाथों में वीणा, चंदन, अगरु, कस्तूरी व केसर आदि सभी प्रकार के साज-सज्जा व गाने-बजाने के वाद्य यंत्रों से युक्त होकर हर्षोल्लास से पूर्ण एक प्रकार से त्योहार मनाने के रूप में इस लीला का वर्णन यहाँ देखने को मिलता है।[९] गर्ग संहिता के वृन्दावन खण्ड के प्रथम अध्याय में महावन में होने वाले उत्पातों को लेकर नंद बाबा व सत्रन्द गोप के मध्य वार्तालाप होता हैं जिसमें नंद बाबा के पूछने पर सत्रन्द गोप द्वारा वृन्दावन व मथुरा-व्रजमंडल की भौगोलिक स्थिति व उसके इतिहास के बारे में विस्तृत चर्चा की जाती है।[१०]

हिन्दी के भक्ति साहित्य में कृष्ण गोकुलागमन या वृंदावन आगमन लीला वर्णन- सूरदास ने सूरसागर में इस लीला का संक्षिप्त वर्णन किया है। इनके अनुसार नंद व यशोदा के मन में भावना जगी की गोकुल में आये दिन उत्पात होते रहते हैं। इस कारण हमें वृन्दावन चले चलना चाहिए। इस समय कृष्ण की आयु पाँच वर्ष की थी।

महर-महरि कै मन यह आई।
गोकुल होत उपद्रव दिन प्रति, बसिऐ वृन्दावन मैं जाई।
सब गोपनि मिलि सकटा साले, सबहिनि के मन मैं यह भाई।
सूर जमुना-तट डेरा दीन्हें, पाँच बरश के कुँवर कन्हाई।।[११]

भक्त कवयित्री मीरा की पदावली में भी बराबर गोकुल, वृंदावन, मथुरा और द्वारका की लीलाओं का महात्म्य देखा जा सकता है। पर यहाँ लीलाओं का क्रमबद्ध व विस्तारित रूप देखने को नहीं मिलता। लीला वर्णन के लिए मीरां ने काव्य रचना नहीं की। अपने आत्मसमर्पण, दैन्य व माधुर्य भाव को प्रकट करने के लिए ही मीरां ने जगह-जगह इन स्थानों से संबंधित कथा प्रसंगों का सहारा लेकर अपने भावोद्गार प्रकट किए हैं। जिसमें एक ओर मुख्य आधार भागवत पुराण है। जैसे- '**श्रीमद्भागोत श्रवण सुनी, रसना रटत हरी।।**'[१२] वहीं दूसरी ओर लोक में व्याप्त श्रुतियों व अन्य समसामयिक मध्यकालीन भक्ति परम्परा का आश्रय भी ग्रहण किया है। गोकुल लीला का

प्रसंग भी उसी रूप में देखा जा सकता है। जिसमें उपालम्भ का भाव भी देखा जा सकता है।

गोकुल उजाड़ दीनी, मथुरा बसाय लीनी,
कुबजा कूँ राज दिनों, राधे कूँ बिसारी।।[१३]

अन्य स्थानों पर भी मीरां ने गोकुल, वृंदावन आदि कृष्णलीला कुँजों की रूप माधुरी बिखेरी है। यथा–

गोकुल में काँई धेनु चरावो, मथुरा में काँई (थारे) राज लटै।।
राधाई रुकमण और सतभामा, कुब्जा काँई (थारे) संग पटै।।[१४]
इत गोकुल उत मथुरा नगरी, यमुना बह रही आडि।।[१५]

श्रीमद्भागवतमहापुराण में गोकुलागमन का चित्रण– 'राजस्थानी चित्रकला' की जन्मभूमि राजस्थान ही है और उसका केन्द्र मेदपाट (मेवाड़) ही माना जाता रहा है।[१६] वल्लभ सम्प्रदाय के प्रचार–प्रसार के कारण कृष्ण–भक्ति का महत्त्व दिन–प्रतिदिन बढ़ने से 'भागवत पुराण' को आधार बनाकर ग्रंथ चित्रण की परम्परा ने आकर्षक रूप ग्रहण किया।[१७] ग्रंथ चित्रण की परम्परा में 'भागवत पुराण' को मुख्य आधार मानकर मध्यकालीन राजस्थान की सभी चित्रशैलियों में इसका चित्रण किया गया है। भागवत पर आधारित शुरुआती चित्रणों में से प्रथम १५९८ ई. (पोथीखाना, जयपुर) व दूसरा १६१० ई. (पुस्तक प्रकाश, जोधपुर) में राजस्थान में ही कहीं चित्रित माना जाता है।[१८] इनके अलावा महाराणा जगतसिंह के समय में चित्रित अनेक चित्र 'भागवत पुराण' के ४ स्कन्ध (८.९.११.१२) कला की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण माने जाते हैं। जिसमें २३४ पन्नों में १२९ चित्र है। सवाई प्रातपसिंह[१९] (१७७८ से १८०३ ई.) ये पुष्टिमार्गी होने के कारण कृष्ण भक्ति में विशेष अनुराग रखते थे और 'ब्रजनिधि' उपनाम से काव्य रचना भी करते थे।[२०] इनके समय में भागवत पुराण का चित्रण जयपुर में हुआ। विनयसिंह के समय के लिपटवा पटचित्र जो राजकीय संग्रहालय अलवर में रखे हुए हैं।[२१] इनके अलावा कोटा लाइब्रेरी–सरस्वती भण्डार, राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली आदि स्थानों पर भी भागवत पुराण से संबंधित चित्र देखे जा सकते हैं।[२२]

भागवत पुराण से संबंधित प्रस्तुत चित्र मेवाड़ शैली का है। जिसका चित्रण १७५० ई. के लगभग या उससे पहले महाराणा जयसिंह (१६८० से १६९८ ई.) के समय हुआ होगा; क्योंकि उसके पश्चात् ग्रंथ चित्रण की परम्परा लगभग समाप्त हो चुकी थी।[२३]

यहाँ भागवत पुराण के दो सचित्र चित्र संख्या ४३ व ४४ दिये गए हैं, जिनके दो–दो भाग हैं। प्रथम चित्र सं. ४३ के ऊपर वाले चित्र में दोनों ओर भागवत पुराण के श्लोक और ऊपर 'नंदादिकमसलत कर न यहाँ थे अन्यत्र चल तें' अंकित है। इसमें तीन श्लोक २३,२४ व २५ है जो भागवत पुराण (गीताप्रेस गोरखपुर से प्रकाशित) के द्वादश स्कंध (पूर्वार्ध) के अध्याय ११ के श्लोक संख्या २६, २७ व २८[२४] के साथ मध्य भाग संभवतः नंद (हाथ में कमल का फूल लिए

हुए) व उपनंद को पीले व लाल रंग में चित्रित किया गया है। जिनके पीछे दो व्रजवासी व नीचे की पंक्ति में तीन व्रजवासियों को हाथ में पुष्प पकड़ हुए चित्रित किया गया है। नीचे वाले चित्र में ऊपर श्लोक २६,२७,२८ दिया हुआ है जो भागवत पुराण (गीताप्रेस गोरखपुर से प्रकाशित), दशम स्कंध (पूर्वार्ध), अध्याय ११, श्लोक सं. २९, ३०, ३१, ३२ का चित्रण किया हुआ है। चित्र में नंद आदि गोपों के साथ कृष्ण (नीले रंग में), बलराम, रोहिणी व यशोदा को दिखाया गया है। चित्र सं. ४४ में व्रज के गोप डपली, बांसुरी आदि बजाते हुए अपने पशु-धन (गाय, बैल आदि) आदि के साथ यात्रा कर रहे हैं। ऊपर 'ग्वाल गायें लेकर वृंदावन को चले' अंकित है। चित्र सं. ४४ के नीचे वाले चित्र में वृंदावन का दृश्य अंकित है जो हरे रंग, लाल, नीले रंग में चित्रित किया हुआ है। इस चित्रण में मेवाड़ शैली के अनुसार पीले, लाल, हरे और नीले रंगों का विशेष प्रयोग देखा जा सकता है।

उपसंहार- कृष्ण अपनी क्रीड़ामय सेवा के लिए विशेषकर वृन्दावन को अपना केन्द्र बनाना चाहते थे। वृन्दावन से पूर्व जो बालसुलभ लीलाएँ (पूतनावध, सकटभंजन, तृनावर्त उद्धार, यमलार्जुन उद्धार आदि) की गई थी वे सब गोकुल के रक्षार्थ थी। गोकुल के गोप इस सबसे अनजान थे, इसलिए सभी ने वृन्दावन जाने का निश्चय किया। महर्षि अरविन्द ने विश्व की चार महान् घटनाओं में से दो को कृष्ण से संबंद्ध बताया है। उनमें से एक कृष्ण का वृन्दावन निर्वास है, जो कृष्ण की महानतम सेवाओं के उत्कृष्टतम उदाहरण हैं।[२५] सामान्यतः देखने में भी आता है कि एक जाति, समुदाय या संघ अपनी आर्थिक, भौगोलिक परिस्थितियों, आर्थिक संसाधनों की पूर्ति के लिए लिए एक स्थान से दूसरे स्थान पर निवास करता आया है। गोकुल की बाललीलाओं के पश्चात् कृष्ण की वृन्दावन की माधुर्यपूर्ण लीलाओं का आरम्भ भी यही से हो जाता है।

इस प्रकार पौराणिक व संस्कृत साहित्य के साथ हिन्दी के भक्ति साहित्य में भी इस लीला का माहात्म्य कहा गया है। जिसमें कुछ अन्तर होते हुए भी नवीन सृजन की परिकल्पना, सांस्कृतिक महोत्सव, लोक संस्कृति का बहुरंगी चित्रण देखने को मिलता है। ग्रामीण (व्रज के लोग) जन किस प्रकार पर्यावरणीय, भौगोलिक और अमानवीय लोगों के दुष्कृत्यों से निजात पाने के लिए अपने समुदाय व परिवार के रक्षार्थ किए जाने वाल उपायों को भी एक उत्सव के रूप में ही मनाते हैं। वर्तमान में भी यही परम्पराएँ और संस्कार कार्य कर रहे हैं।

यन्न म्रियेत द्रुमयोरन्तरं प्राप्य बालकः।
असावन्यतमो वापि तदप्यच्युतरक्षणम्।।२६।।
यावदौत्पातिकोऽरिष्टो व्रजं नाभिभवेदितः।
तावद्बालानुपादाय यास्यामोऽन्यत्रसानुगाः।।२७।।
वनं वृन्दावनं नाम पाव्यं नवकाननम्।
गोपगोपीगवां सेव्यं पुण्याद्रितृणवीरुधम्।।२८।।

तत्तत्राद्यैव यास्यामः शकटान्युङ्क्तमाचिरम्।
गोधनानयग्रतो यान्तु शवतां यदि रोचते।।२९।।
तच्छ्रुत्वैकधियो गोपाः साधु साध्विति वादिनः।
व्रजान् स्वान् स्वान् समायुज्य ययू रूढपरिच्छदाः।।३०।।
वृद्धान् बालान् स्त्रियो राजन् सर्वोपकरणानि च।
अनस्स्वारोप्य गोपाला यत्ता आत्तशरासनाः।।३१।।
गोधनानि पुरस्कृत्य शृंगाण्यापूर्य सर्वतः।
तूर्यघोषेण महता ययुः सहपुरोहिताः।।३२।।

(श्रीमद्भागवतमहापुराण (द्वितीय-खण्ड), दशम स्कंध (पूर्वार्ध), ११.२६-३२, गीताप्रेस गोरखपुर, ११० वाँ संस्करण, २०२३, पृ. सं.१९९)

(प्रयागराज संग्रहालय, उत्तर प्रदेश से प्राप्त भागवत पुराण का चित्रण)

सन्दर्भ

१. अ. भक्तमाल के अनुसार पर्यनंद के नौ पुत्र में से तृतीय उपनंद थे। धरानंद, ध्रुवनंद के बाद उपनंद का नाम आता है। इन्हें परम चतुर कहा गया है। धरानंद ध्रुवनंद तृतीय उपनंद सु नागर।।२१।। भक्तमाल- २१, पृ. ३०४

२. श्रीमद्भागवतमहापुराण, गीताप्रेस गोरखपुर, दशम स्कन्ध (पूर्वार्ध), अध्याय- ११, पृ. १९८

३. वही पृ. १९९

४. वही पृ. १९९

५. श्रीमद्भागवतमहापुराण, दशम स्कन्ध (पूर्वार्ध), अध्याय- ११, पृ. १९०

६. विश्णुपुराण, पंचम अंश, गीताप्रेस गोरखपुर, २०१९, ५६वाँ संस्करण, पृ. ३२८, ३२९
७. हरिवंश पुराण, विष्णुपर्व, अध्याय- ८, पृ. ३०५
८. श्रीराधाकिशोरी की अष्ट सखियाँ परमप्रेष्ठसखी की गणना में मानी जाती है। श्रीललिता, विशाखा, चित्रा, इन्दुलेखा, चम्पकला, रंगदेवी, तुंगविद्या और सुदेवी। भक्तमाल, पृ. ३१८
९. ब्रह्मवैवर्त पुराण, श्रीकृष्णजन्मखण्ड, अध्याय- १६, पृ. ४९६
१०. गर्ग-संहिता, गीताप्रेस, गोरखपुर, २०१९, पृ. ७२, ७३
११. डॉ. वर्मा, धीरेन्द्र, सूरसागर सार सटीक, साहित्य भवन, प्रयाग, १९८६, पृ. ८०
१२. पुरोहित हरिनारायण, मीरां बृहत्पदावली, भाग- १, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, पृ. २३९
१३. पुरोहित हरिनारायण, मीरां बृहत्पदावली, भाग- १, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, पृ. ९९
१४. पुरोहित हरिनारायण, मीरां बृहत्पदावली, भाग- १, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, पृ. ७८
१५. पुरोहित हरिनारायण, मीरां बृहत्पदावली, भाग- १, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, पृ. १५३
१६. डॉ. नीरज जयसिंह, राजस्थानी चित्रकला और हिन्दी कृष्ण काव्य, महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश शोध केन्द्र, मेहरानगढ़, जोधपुर, पृ. ३४
१७. डॉ. नीरज जयसिंह, राजस्थानी चित्रकला और हिन्दी कृष्ण काव्य, महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश शोध केन्द्र, मेहरानगढ़, जोधपुर, पृ. ३४
१८. डॉ. नीरज जयसिंह, राजस्थानी चित्राकला और हिन्दी कृष्ण काव्य, महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश शोध केन्द्र, मेहरानगढ़, जोधपुर, पृ. ३४
१९. डॉ. गहलोत सुखवीरसिंह, राजस्थान का इतिहास कोश, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पृ. २३९
२०. डॉ. प्रताप रीता, जयपुर की चित्रांकन परम्परा, हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, पृ. ३४
२१. डॉ. नीरज जयसिंह, राजस्थानी चित्रकला और हिन्दी कृष्ण काव्य, महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश शोध केन्द्र, मेहरानगढ़, जोधपुर, पृ. ५२
२२. डॉ. नीरज जयसिंह, राजस्थानी चित्रकला और हिन्दी कृष्ण काव्य, महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश शोध केन्द्र, मेहरानगढ़, जोधपुर, पृ. ८३
२३. डॉ. प्रताप रीता, भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास, हिन्दी ग्रंथ अकादमी, २०२१, पृ. १८४
२४. श्रीमद्भागवतमहापुराण, दशम स्कंध (पूर्वार्ध), अध्याय- ११, श्लोक २६ से २८, गीताप्रेस, गोरखपुर, २०२३, पृ. १९९
२५. भारत भाव रूप श्रीकृष्ण, वृन्दावन शोध संस्थान, वृन्दावन, वृन्दावन बिहारी, पृ. ४१

———————

Shodh Navneet (International Peer-Reviewed Research Journal)
ISSN : 2321-6581, Vol. XXII, January - June 2024

प्रेमचन्द के साहित्य में नारी की स्थिति

रामकरण रावत*

प्रेमचन्द युग हिन्दी कहानी का वह दौर था जब भारतीय सभ्यता पर पाश्चत्य सभ्यता का प्रभाव आना प्रारम्भ हो गया था। हमारी संस्कृति में विवाह को पवित्र और अटूट बन्धन माना गया है, लेकिन पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव से यह बन्धन शिथिल ही नहीं हुआ, टूटने भी लगा। प्रेमचन्द इस नकारात्मक प्रभाव को देख रहे थे उसे अपने साहित्य में बचाने का प्रयास करते प्रतीत होते हैं। पहले कन्या स्वयंवर के माध्यम से वर तलास करती थी बाद में माता-पिता की सहमति लेने लग गए। वर्तमान में माता-पिता की स्वीकृति-अस्वीकृति, दहेज, अहंकार, बाजारी दुनिया के प्रभाव के कारण विवाह सफल नहीं हो पा रहे हैं। पुरुष की चरित्रहीनता, शंकालु दृष्टि, विलासिता, कलह, नारी की लिप्सा, स्वार्थ, अकर्मण्यता आदि ने वैवाहिक जीवन को दुःखद बना दिया है। प्रेमचन्द जी एक आदर्श के लिये आवश्यक मानते हैं कि अभाव, कष्ट, निर्धनता में पति के प्रति सत्यनिष्ठा, सेवा, भक्ति, त्याग, धैर्य बनाए रखने वाली नारियाँ सफल जीवन जीती हैं। भारतीय नारियाँ दुःख सहन करके भी अपने परिवार को बनाए रखती हैं और अपने पति के साथ मेहनत करती रहती हैं। प्रेमचन्द ने माना है कि स्त्री में त्याग, बलिदान, प्रेम, सेवा हो तो पति उसकी पूजा करने लगता है। प्रेमचन्द के इन विचारों से स्पष्ट है कि वे वैवाहिक जीवन की सफलता के लिए महिलाओं को ही अधिक उत्तरदायी मानते हैं बल्कि दोनों की जिम्मेदारी बराबर होनी चाहिए। प्रेमचन्द जी वैवाहिक जीवन की सफलता, सरसता और प्रसन्नता के लिए पुरुष और स्त्री दोनों में सद्‌गुणों और सामंजस्य को अनिवार्य मानते हैं लेकिन अधिक जिम्मेदारी महिलाओं को देते हैं।

प्रेमचन्द ने अपने साहित्य में स्त्री को आधुनिक नारीवाद से अलग सती, ममतामयी, त्याग, सेवा, सुख-दुःख की सहचरी के रूप में प्रस्तुत किया है। नारी को उन्होंने यथार्थ तथा आदर्श दोनों रूपों में अभिव्यक्त किया है। गोदान की मालती इग्लैंड़ पढ़कर आती है और स्वछन्द पुरुषों के साथ घूमती फिरती है शराब पीती है आखिर में वह समाज सेविका बन जाती है। प्रेमचन्द जी के नारी संबंधी विचार गोदान की मालती द्वारा बनाये गये विमेंश लीग में दिए गये मेहता के भाषण से स्पष्ट हो जाते हैं। प्रेमचन्द जी का मानना है कि पुरुष अपना कार्य करे स्त्री अपना कार्य करे 'स्त्री को पुरुष के रूप में, पुरुष के कार्य में रत देखकर मुझे उसी तरह वेदना होती है, जैसे पुरुष को स्त्री के रूप में, स्त्री के कर्म करते देखकर। मुझे विश्वास है, ऐसे पुरुषों को आप अपने विश्वास और प्रेम

* सहायक आचार्य-हिन्दी, राजकीय महाविद्यालय राजाखेड़ा, धौलपुर, राजस्थान

का पात्र नहीं समझती और में आपको विश्वास दिलाता हूँ, ऐसी स्त्री भी पुरुष के प्रेम और श्रद्धा का पात्र नहीं बन सकती।''[१]

मेहता कहते हैं ''मैं प्राणियों के विकास में स्त्री के पद को पुरुषों के पद से श्रेष्ठ समझता हूँ। उसी तरह जैसे प्रेम, त्याग व श्रद्धा को हिंसा, संग्राम व कलह से श्रेष्ठ। इससे समाज का कल्याण नहीं होगा। पुरुष अभिमान में कीर्ति चाहता है भाई को मारकर विजयी बनता है माताएँ बच्चों को रक्त से पालती हैं उन्हें वह बम, मशीनगन व टैंकों से मारता है इस प्रकार वह विनाश को संसार का कल्याण समझता है। पुरुष की दानवता संसार को कुचली है, आप उस दानवता को ग्रहण करोगी।''[२]

''स्त्री पुरुष से उतनी ही श्रेष्ठ है जितना प्रकाश अँधेरे से। मनुष्य के लिए क्षमा और त्याग और अहिंसा जीवन के उच्चतम आदर्श हैं। नारी इस आदर्श को प्राप्त कर चुकी है। पुरुष धर्म और अध्यात्म और ऋषियों का आश्रय लेकर उस लक्ष्य पर पहुँचने के लिए सदियों से जोर मार रहा है; पर सफल नहीं हो सका। मैं कहता हूँ उसका सारा अध्यात्म और योग एक तरफ और नारियों का त्याग एक तरफ।''[३]

गोदान में एक स्थान पर मेहता कहते हैं कि हंस को बाज का काम नहीं करना चाहिए, उसका काम मोती चुगना है चिड़िया का शिकार नहीं; क्योंकि ऐसा करने लायक उसकी चोंच व पंजे नहीं हैं बाज बनने के चक्कर में वह न बाज बन पायेगा और न हंस ही रह सकेगा।

प्रेमचन्द जी अपने साहित्य में नारी को उच्च गुणों से युक्त मानते हैं साथ ही स्त्री व पुरुष में स्वाभाविक, शारीरिक अन्तर भी स्वीकार करते हैं। वर्तमान नारीवाद में नारियाँ वे सभी काम करना चाहती हैं जो पुरुष कर सकते हैं और उनका मानना हैं कि पुरुषों ने जानबूझकर स्त्रियों को विभिन्न कार्यों को नहीं करने दिया। प्रेमचन्द जी नारी को सद्गुणों से निपुण, पति परायण, त्याग, श्रद्धा, सुख-दुःख की सहचरी के रूप में चित्रित किया है साथ ही सामाजिक यथार्थ रूप में चरित्रहीन नारियों का भी समावेश अपने साहित्य में किया है, लेकिन महिमा मण्डन सन्नारियों का ही किया है। 'पूस की रात' की मुन्नी सहना के कर्ज माँगने आने पर हल्कू के तीन रूपये माँगने पर चिंतित हो जाती है कि पैसे कंबल के लिए रखे थे अब कंबल कैसे लाओगे पूस की रात बिना कम्बल खेतों में कैसे व्यतीत होगी वह हर कष्ट सहती और पति का हित सोचती है।

गोदान की धनिया को एक पतिपरायण, सुख-दुःख की साथी, सत्य पर टिके रहने वाली, ममतामयी, दयालु, अन्याय व अत्याचार का विरोध करने वाली व कभी हार न मानने वाली नारी के रूप में चित्रित किया गया है। एक बार होरी कहते हैं कि साठ तक पहुँचने की नौबत न आने पायेगी धनिया! इसके पहले ही चल देंगे धनिया के बारे में लेखक लिखता है कि ''होरी कन्धे पर लाठी रखकर घर से निकला, तो धनिया द्वार पर खड़ी उसे देखती रही। उसके इन निराशा-भरे शब्दों ने धनिया के चोट खाये हुए हृदय में आतंकमय कंपन-सा डाल दिया था। उसके अन्तःकरण से जैसे

आशीर्वादों का व्यूह–सा निकलकर होरी को अपने अन्दर छिपाये लेता था। विपन्नता के इस अथाह सागर में सौहाग ही वह तृण था जिसे पकड़े हुए वह सागर पार कर रही थी। इन असंगत शब्दों ने यथार्थ के निकट होने पर भी मानो झटका देकर उसके हाथ से वह तिनके का सहारा छीन लेना चाहा।''[४]

झुनिया जब गोबर के साथ भाग कर आती है तो गाँव का विरोध करती है और उसे घर पर रख लेती है गाँव के पंचों को आड़े हाथों लेती है। झुनिया के होने वाले बच्चे का पालन–पोषण करती है उसे नहलाती है, उबटन लगाती है। हीरा गाय मारकर भाग जाता है पीछे से पुलिस घर की तलासी न लेने के बदले रिश्वत लेना चाहता है तब वह निड़र होकर थानेदार से भिड़ जाती है।

'घास वाली' कहानी की महावीर की पत्नी पुलिया महावीर के प्रेम के प्रति पूर्णतया आश्वस्त है– ''मेरे आदमी के लिए संसार में जो कुछ हूँ मैं हूँ। वह किसी दूसरी मेहरिया की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखता। संयोग की बात है कि मैं तनिक सुन्दर हूँ लेकिन मैं काली कलूटी भी होती तब भी वह मुझे इसी तरह रखता।''[५] इस कहानी में नारी का प्रेमचन्द जी ने पति पर अटल विश्वास दिखाया है। '**अहिंसा परमो धर्मः**' कहानी की नायिका इन्दिरा को अपने सतीत्व की रक्षा के लिए मुसलमानों से संघर्ष करना पड़ता है। काजी द्वारा कमरे में बन्द किए जाने और धर्म परिवर्तन कर एक मुसलमान युवक से निकाह करने के लिए जबरदस्ती करने पर वह उनके धर्म व कर्म की भर्त्सना करती है– ''क्या तुम्हें खुदा ने यही सिखाया है कि परायी बहू बेटियों को जबरदस्ती घर में बन्द करके उनकी आबरू बिगाडो?''[६] काजी उसे मारने की धमकी देता है लेकिन इन्दिरा निड़र होकर दृढ़ता से कहती है कि ''आबरू के सामने जान की कोई हकीकत नहीं है। तुम मेरी जान ले सकते हो पर मेरी आबरू नहीं ले सकते।''[७]

'स्वर्ग की देवी' कहानी की लीला अपने वेश्यागामी पति को भी गृहस्थी की ओर मोड़ देती है। इसलिए उसकी प्रशंसा करते हुए उसका पति अन्त में कहता है कि ''वह स्वर्ग की देवी है और केवल मुझ जैसे दुर्बल प्राणी की रक्षा करने के लिए भेजी गई है।''[८]

'सती' कहानी की पात्र रूपवती पुलिया अपने पति के प्रति पूर्ण समर्पित है चाहे उसका पति कुरूप व काला हो। जब तक वह घर नहीं आता मछली की भाँति वह तड़पती रहती है। गाँव में कितने ही युवक हैं, जो पुलिया से छेड़छाड़ करते रहते हैं पर उस युवती की दृष्टि में कुरूप कलुआ संसार भर के आदमियों से अच्छा है।''[९] कल्लू अपनी पत्नी को चचेरे भाई राजा द्वारा दी गई चुनरी पर पुलिया के सच बताने के बावजूद संदेह करता है। चिन्ता में वह चरस और ताड़ी का सेवन करने से असमय मृत्यु को प्राप्त होता है। विधवा होने के बाद राजा द्वारा प्रेमानुरोध को ठुकराती है और कहती है कि ''तुम्हारे लिए और दुनिया के लिए वह नहीं है, मेरे लिए अब भी वैसे ही जीते जागते हैं। मैं अब भी उन्हें वैसे ही बैठे देखती हूँ। पहले तो देह का अन्तर था अब तो वह मुझे और नगीच हो गये हैं।''[१०] पुलिया निम्न जाति की महिलाओं में भी शील, सदाचार व कर्त्तव्य का आदर्श

स्थापित करती है।

प्रेमचन्द जी ने ऐसी नारी पात्रों का भी अंकन किया है, जो विषम परिस्थितियों में भी पति के प्रति अपनी निष्ठा, विश्वास और प्रेम को जीवन का सहारा बनाए रखती हैं। ऐसी नारियों को प्रेमचन्द आदर्श की प्रतिमाएँ मानते हैं। 'माँ' कहानी की करुणा से जीवन के अन्त में अपने बारे में पूछता है तब वह कहती है कि "तुम्हारा जीवन देवताओं का जीवन था– निस्वार्थ, निर्लिप्त और आदर्श। अगर तुम मोह माया में फंसे होते कदाचित मेरे मन को अधिक संतोष होता, लेकिन मेरी आत्मा को वह गर्व और उल्लास न होता जो इस समय हो रहा है। मैं अगर किसी बड़े से बड़ा आशीर्वाद दे सकती हूँ तो वही होगा उसका जीवन तुम्हारे जैसा हो।"[११] अन्यत्र प्रेम खोजने वाली स्त्री को कहीं प्रेम नहीं मिलता है।

'नरक का मार्ग' कहानी की नायिका शक्की, वृद्ध व पौरुष विहीन पति से ऐसा प्रेम ना पाकर "जिस दिल के तार सदैव बजाते रहे, जिसका नशा नित्य छाये रहे।"[१२] उसे पति रूप में स्वीकार नहीं कर पाती तथा उसके रोगी होकर मर जाने पर भी दुःखी नहीं रहती। प्रेम की खोज में वह कुटनी द्वारा वेश्यालय पहुँच जाती है, लेकिन उस जगह वह संतुष्ट नजर आती है। "इस अधम दशा को भी मैं उस दशा से न बदलूँगी जिससे निकलकर आयी हूँ।"[१३] 'उन्माद' कहानी की नारी पात्र बागेश्वरी विदेश में अपने पति द्वारा ईसाई धर्म अपनाकर जेनी नामक मैम से शादी करने पर अपने पति मनहर के वापिस लौटने पर उसको वह पहले की अपेक्षा अधिक स्नेही व अनुरक्त लगता है।

प्रेमचन्द जी आदर्शोन्मुखी यथार्थवाद के रचनाकार है इसलिए उनके साहित्य में नारी का आदर्श व यथार्थ दोनों रूपों का चित्रण हुआ है, किन्तु प्रेमचन्द आदर्श को ज्यादा स्थापित करते नजर आते हैं। उन्होंने जिन नारी पात्रों की सृष्टि की है वे सत्य, त्याग, श्रद्धा, प्रेम, सेवा, पतिपरायणता, विश्वास व कर्त्तव्य निष्ठा के बल पर आदर्श रूप स्थापित करती हैं। वैवाहिक जीवन में पति व पत्नी दोनों सद्‌गुणों से युक्त आदर्श मानव हो यह प्रेमचन्द जी स्वीकार करते हैं, लेकिन वे नारी से अधिक आदर्श गुणों की अपेक्षा करते प्रतीत होते हैं। यह उस समय की परिस्थिति व विचारों का प्रभाव हो सकता है। प्रेमचन्द जी सही जीवन के लिए विवाह को एक परम पवित्र, दृढ़ स्थायी और अविच्छिन्न संबंध मानते हैं। तलाक उनकी नजर में अपराध है। उन्होंने इस कारण अनेक जोड़ों के दाम्पत्य सुख को नष्ट होते देखा था।

प्रेमचन्द ने चाहे सद्‌गुणों की अपेक्षा नारी से ज्यादा की हो लेकिन उनके साहित्य में देखने को मिलता है कि उन्होंने विवाहित नारी के आदर्श व विकृत दोनों रूपों की परिकल्पना की है। प्रेमचन्द जी के अनुसार कष्ट, निर्धनता, अभाव में भी पति के प्रति सत्यनिष्ठ सेवा, त्याग, भक्ति, श्रद्धा, धैर्य के साथ जीने वाली नारियाँ आदर्श व सफलतम जीवन जीती है। वे पतियों की रक्षक बनकर रहती हैं। उनको सन्मार्ग पर लाने वाली होती हैं, लेकिन विषम वैवाहिक जीवन जीने वाली नारियाँ पुरुष की पाश्विकता, परनारी गमन, स्वेच्छाचारिता, अपने स्वाभिमान, अज्ञान व व्यक्तित्व हीनता के

कारण दुःखी रहती हैं। विकृत वैवाहिक जीवन जीने वाली दुःखी व असफलतम जीवन जीती है।

अतः प्रेमचन्द जी ने अपने साहित्य में नारी के विभिन्न रूपों की परिकल्पना की है। सामाजिक ताना–बाना भारतीय संस्कृति के अनुसार रखते हुए पुरुष व नारी दोनों को सफल दाम्पत्य जीवन जीने की शिक्षा दी है। वैवाहिक जीवन की सार्थकता को सिद्ध करने में प्रेमचन्द पूर्ण सफल हुए। प्रेमचन्द जी की नारियाँ पुरुषों को अपने प्रेम, सेवा, श्रद्धा व आदर्शों से सन्मार्ग पर लाती हैं कई जगह गलत का पुरजोर निडरता से विरोध करती प्रतीत होती हैं।

सन्दर्भ

१. प्रेमचन्द, गोदान, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, संस्करण– २०११, पृ. सं. १३९
२. प्रेमचन्द, गोदान, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, संस्करण– २०११, पृ. सं. १३९
३. प्रेमचन्द, गोदान, पंचशील प्रकाशन, जयपुर संस्करण– २०११, पृ. सं. १४०
४. प्रेमचन्द, गोदान, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, संस्करण– २०११, पृ. सं. ६
५. प्रेमचन्द, मानसरोवर, भाग– ५, पृ. सं. ८०
६. प्रेमचन्द, मानसरोवर, भाग– ५, पृ. सं. ८०
७. प्रेमचन्द, मानसरोवर, भाग– ५, पृ. सं. ८१
८. प्रेमचन्द, मानसरोवर, भाग– ३, पृ. सं. ७३
९. प्रेमचन्द, मानसरोवर, भाग– ४, पृ. सं. १२४
१०. प्रेमचन्द, मानसरोवर, भाग– ४, पृ. सं. १३०
११. प्रेमचन्द, मानसरोवर, भाग– १, पृ. सं. ४२–४३
१२. प्रेमचन्द, मानसरोवर, भाग– ३, पृ. सं. २८
१३. प्रेमचन्द, मानसरोवर, भाग– ३, पृ. सं. ३०

Shodh Navneet (International Peer-Reviewed Research Journal)
ISSN : 2321-6581, Vol. XXII, January - June 2024

राजस्थानी साहित्य, कला एवं संस्कृति में लोकनाट्य का योगदान

हर सहाय शर्मा*

राजस्थान की संस्कृति प्राचीन होने के साथ-साथ जीवन्त भी है। राजस्थान में प्रदर्शन कलाओं व लोकनाट्यों की समृद्ध परम्परा रही है। रंगमंच की परम्परा भी लोकवार्ताओं और लोक गाथाओं की भाँति प्राचीन है। गाँव-गाँव और राजस्थान के नगर-नगर में प्रजा के मनोरंजन के साथ-साथ लोकनाट्य सामाजिक और सामुदायिक भावनाओं की अभिव्यक्ति के माध्यम भी बनें। प्रदर्शककलाएँ जिसके अन्तर्गत भोपा, भाण्ड, स्वांग, बहरूपिया, मदारी, नट, बाजीगर आदि का प्रदर्शन आता है वे भी यहाँ के जन साधारण के मनोरंजन के साधन रहे हैं। लोकनाट्यों के अन्तर्गत ख्याल, रम्मत, तमाशे, नौटंकी, लीला, भवाई, गवरी, फड इत्यादि आते हैं। राजस्थानी लोकनाट्यों के ये स्वरूप यहाँ बहुत प्रसिद्ध रहे हैं तथा मनोरंजन की दृष्टि से उत्पन्न होने वाले इन स्वरूपों ने यहाँ के जन जीवन में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बनाया है। ''राजस्थान के विभिन्न राज्य अपनी शक्ति एवं शौर्य के लिए जितने विख्यात हैं उतने ही अन्य कृत्यों के लिए भी प्रसिद्ध है, इसका मुख्य कारण यह है कि यहाँ के सामाजिक वातावरण एवं परिवेश में जीवन के प्रति पूर्ण सरसता रही है।''[१]

राजस्थान देश के सम्पूर्ण सांस्कृतिक परिदृश्य से भिन्न नहीं हैं, लेकिन खास प्रकार की भौगोलिक और राजनीतिक परिस्थितियों के कारण इसकी अपनी कुछ विशेषताएँ जरूर हैं। एकीकरण से पहले तक यह प्रदेश कई छोटी-छोटी रियासतों में बँटा हुआ था इसलिए मेलें और पर्व-त्योहार यहाँ कई हैं। इसी तरह रीति-रिवाजों और परम्पराओं का विकास भी अलग-अलग ढंग से हुआ है। रंग, राग, उल्लास और उत्सव राजस्थान के पर्याय हैं। एक तरफ जीवन की बड़ी चुनौतियों से सतत् टकराहट और दूसरी तरफ उत्सवों, मेलों, पर्वों और त्योहारों में उस तमाम थकान और अवसाद को बहा डालने की प्रेरणादायक कोशिशें, यहीं राजस्थान की खासियत है। रंग बिरंगी वेशभूषा, संगीत की मधुर स्वर लहरियाँ और जीवन के आनंद से सरोबार पर्व, उत्सव और त्योहार इन सब से मिलकर राजस्थान का मनोरम सांस्कृतिक परिदृश्य बनता है। ''मूर्धन्य कवि कन्हैयालाल सेठिया ने लिखा था - ''आ तो सुरगा ने सरमावै, इण पर देव रमण ने आवै, धरती धोरां री ..... अर्थात् राजस्थान की रेतीली धरती तो स्वर्ग को भी लज्जित करती है और देवता भी

* शोधार्थी, हिन्दी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, राजस्थान

यहाँ विचरण करने के लिए आते हैं।"[२] लोकनाट्य साहित्यिक नाटकों की भाँति समस्त लोकाचार और लोक से संबंधित तथ्यों को व्यक्त करने का साधन होता है। साहित्यिक नाटक का मुख्य उद्देश्य किसी घटना का सजीव वर्णन करना होता है। शारीरिक हावभाव के द्वारा किसी घटना का उल्लेख नाटक के द्वारा ही होता है। जिसमें कथोपकथन, वार्तालाप और सहायक रूप में गीत, संगीत और नृत्य का भी योग होता है। इसी प्रकार किसी चरित्र या पात्र जिसकी महत्ता और प्रधानता समस्त लोक में होती है इसके विशेष गुणों या कर्मों का अभिव्यक्तिकरण लोकनाट्यों या लोकनाटकों के द्वारा किया जाता है। "लोकनाट्यों या नाटकों में गीत, संगीत, नृत्य के साथ-साथ वार्तालाप भी हुआ करता है। वार्तालाप के समय नर्तक अपनी आतिशबाजी या कलाबाजी से वार्तालाप का समर्थन करता रहता है। वार्तालाप का कथन उपकथन द्वारा किसी भाव के व्यक्त करने की अपेक्षा कायिक संकेतों द्वारा हाव-भाव दिखाकर वह कथन का आशय या प्रसंग को व्यक्त कर देता है। साहित्यिक नाटकों में वार्तालाप के बाद परदा गिरने की प्रथा है और परदा खड़ा करने के बाद ही गीत या नृत्य का कार्य सम्पन्न होता है। लोक नाटकों में समस्त लोक की भावनाओं, अनुभवों और कल्पनाओं का समावेश होता है।"[३]

"रंगमंच एक व्यापक शब्द है, जिसका तात्पर्य उस प्रवृत्ति से है जो जनता की आनन्दमयी भावनाओं को कला के माध्यम से मूर्तरूप में तथा सार्वजनिक ढंग से अभिव्यक्त करती हो। इन प्रवृत्तियों में नाच, गान, नाट्य, खेल, तमाशे, व्यंग्य आदि सम्मिलित हैं। राजस्थान इस दृष्टि से भारत के किसी भी राज्य से पीछे नहीं रहा है, बल्कि उसने रंगीन राजस्थान होने का बहुत ऊँचा दर्जा भी प्राप्त किया है। प्रत्येक राजस्थानी के जीवन में यदि रंग नहीं होता तो शायद वह राजस्थान की भौगोलिक और प्राकृतिक अवस्थाओं के कारण बहुत अधिक विकल और कुंठित हो जाता। प्रकृति ने जिस अनुपम प्राकृतिक आनन्द से राजस्थान के निवासियों को वंचित रखा उसी आनन्द को उन्होंने रचनात्मक प्रवृत्ति से प्राप्त किया। जो रंग उसे प्रकृति में उपलब्ध नहीं हुआ उसे उसने अपने वस्त्रों के रंग वैविध्य से प्राप्त किया। जो आनन्द नदियों, घाटियों, पहाड़ियों तथा सुरम्य स्थानों के भ्रमण तथा अवलोकन से प्राप्त नहीं हुआ उसे उन्होंने अपने स्व-रचित गीतों, नृत्यों, नाट्यों तथा अन्य रंगमंचीय व्यवस्थाओं से प्राप्त किया। यहीं कारण है कि राजस्थान ने अपने निवासियों की वेशभूषा और उनकी राग-रंगीनियों के कारण रंगीन राजस्थान की पदवी प्राप्त की।"[४]

फड - लोक साहित्य में लोकगीत, लोकगाथाएँ, प्रेमगाथाएँ, लोकनाट्य, पहेलियाँ, फडें तथा कहावतें सम्मिलित हैं। राजस्थान में फड चित्रण बहुत ही प्रसिद्ध है। फड चित्रण वस्त्र पर किया जाता है जिसके माध्यम से किसी ऐतिहासिक घटना अथवा पौराणिक कथा का प्रस्तुतीकरण किया जाता है। फड चित्रण चारण भोपे करते हैं एवं भोपण साथ में नृत्य करती रहती है। फड में अधिकतर लोक देवताओं की यथा-पाबूजी, देवनारायण जी, रामदेव जी इत्यादि के जीवन की घटनाओं और चमत्कारों का चित्रण किया जाता है। राजस्थान में शाहपुरा (भीलवाड़ा) का फड चित्रण राष्ट्रीय स्तर पर पहचान बनाये हुऐ है। भीलवाड़ा के श्रीलाल जोशी ने फड चित्रण को

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पहचान दिलाने में सहयोग किया है। इस कार्य में उनके उल्लेखनीय योगदान के लिए भारत सरकार ने उन्हें 'पद्मश्री' से भी नवाजा है। फड चित्रण में पाबूजी री फड, देवजी री फड, तीज, गणगौर, शादी, संस्कारों, मेलों पर गाये जाने वाले लोकगीत आते हैं। फड का वाचन राजपूत, गुर्जर, जाट, कुम्हार, बलाई जाति के चारण भोपे करते हैं। ये फड को लकड़ी में लपेट कर गाँव-गाँव जाकर पारम्परिक वस्त्र एवं वाद्य यंत्र के साथ थिरकते हुए वाचन करते हैं। यह कला परम्परा लोकनाट्य, गायन, वादन, मौखिक साहित्य, चित्रकला व लोकधर्म का एक संयोजन है।

ख्याल- १८वीं सदी के प्रारंभ से ही राजस्थान में लोकनाट्यों के मंचित होने के प्रमाण मिलते हैं। भौगोलिक परिस्थितियों के कारण अलग-अलग क्षेत्रों में ख्यालों के भिन्न-भिन्न स्वरूप मिलते हैं। जैसे- कुचामणी, शेखावटी, जयपुरी, अली बख्शी, तुर्रा कलंगी, किसनगढ़ी, मांची, हाथरसी इत्यादि। प्रसिद्ध लोक नाट्यकार लच्छीराम ने परम्परागत ख्याल को अपनी निजी शैली से एक नया मोड़ देकर कुचामणी ख्याल का प्रारंभ किया। लच्छीराम ने स्वयं दस ख्यालों की रचना की और लच्छीराम की एक ख्याल मण्डली भी थी। इन दिनों इस ख्याल शैली के 'उगमराज' प्रसिद्ध कलाकार है। इस ख्याल में चाँद नीलगिरी, राब रिडमल तथा मीरा मंगल प्रमुख ख्याल हैं। इसी प्रकार चिडावा के नानूराम शेखावाटी ख्याल शैली के प्रसिद्ध नाट्यकार थे। नानूराम ने भी हीर-राँझा, हरिश्चन्द्र, भर्तृहरि, जयदेव इत्यादि कई ख्यालों की रचना की। इनके शिष्यों में दूलिये राणा का नाम शेखावाटी ख्यालों में बहुत प्रसिद्ध हुआ जो अपनी अस्सी वर्ष की अवस्था तक ख्यालों का मंचन करते रहे। दूलिये राणा का पुत्र सोहनलाल व पौत्र बंशी बनारसी ने भी इस ख्याल शैली की परम्परा को जीवित रखा, यूँ तो सभी ख्यालों की प्रकृति मिलती जुलती होती है, परन्तु फिर भी, जयपुरी ख्याल की अपनी कुछ अलग विशेषता भी है। सबसे बड़ी विशेषता है - स्त्री पात्रों की भूमिकाओं में स्त्रियों का भी हिस्सा लेना। इसके अतिरिक्त यह शैली मुक्त और लचीली होने के कारण इसमें नये प्रयोगों की अधिक संभावना है। जोगी-जोगन, कान-गूजरी, पठान, रसीली तंबोलन इत्यादि प्रसिद्ध जयपुरी ख्याल है। इन ख्यालों में गुणीजन खाने के कलाकार भी भाग लेते रहे हैं। मेवाड़ के शाह अली और तुकनगीर नामक दो मुसलमान संत पीरों ने लगभग चार सौ वर्ष पूर्व 'तुर्रा कलंगी ख्याल' की रचना की और इसके माध्यम से शिव और शक्ति के विचारों को लोकजीवन तक पहुँचाया। तुर्रा कलंगी ख्याल पूरे राजस्थान में लोकप्रिय रहा है। सोनी जयदयाल तुर्रा कलंगी ख्याल के लोकप्रिय कलाकार थे।

पारसी थियेटर - बीसवीं सदी के प्रारंभ में 'पारसी थियेटर' की एक नई किस्म की रंगमचीय कला का विकास हुआ। तीसरे दशक में नायक के क्षेत्र में पारसी थियेटर शैली का राजस्थान के रंगकर्मियों पर जबरदस्त प्रभाव पड़ा। अलवर के महबूब हसन ने पारसी थियेटर शैली के अनेक नाटक मंचित किये जिसमें अधिकांश नाटक आगा हश्र कश्मीरी के लिखे हुये थे। राजस्थान में माणकलाल डांगी और कन्हैयालाल पंवार पारसी थियेटर के प्रसिद्ध रंगकर्मी रहे हैं। गणपतलाल डांगी ने भी इस परम्परा का निर्वाह किया।

नौटंकी – ''भरतपुर, धौलपुर, करौली, अलवर, गंगापुर, सवाई माधोपुर इत्यादि क्षेत्रों में मेलों, उत्सवों, त्योहारों व शादियों के अवसर पर नौटंकी खेलना बहुत प्रसिद्ध है। भरतपुर और धौलपुर में नत्थाराम की मण्डली नौटंकी का खेल दिखलाती है। इसके अलावा दूसरे भी कई अखाड़े हैं जो इस क्षेत्र में नौटंकी दिखाते हैं। ये अखाड़े अपनी अपनी कम्पनियों के नाम से जाने जाते हैं। नौटंकी नाटकों में रूप बसंत, सत्यवादी हरिश्चन्द्र, राजा भरथरी आदि मुख्य हैं।''[५]

कठपुतली नाट्य – ''कठपुतली लोकनाट्य का नाटकों के विकास में एक विशिष्ट स्थान है। इसमें पुतलियों के द्वारा नाच भी होता है और पात्रगण भी होते हैं। मूक पुतलियों का वार्तालाप चलता है और गीत भी गाये जाते हैं। इससे यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि इसका रूप भी प्राचीन है; क्योंकि इसमें भी अभिनय, गीत और नृत्य का समन्वय मिलता है। कुछ लोगों का तो यहाँ तक लिखना है कि नाटकों की उत्पत्ति कठपुतली से हुई है। प्रो. रामचरण महेन्द्र लिखते हैं कि मानव अभिनय के अतिरिक्त हमें पुतली के नृत्य में एकांकी के प्रायः सभी तत्त्व मिलते हैं। एकांकी के विकास में पुतली के नृत्य का विशेष हाथ है।''[६]

गवरी – मेवाड़ में भीलों का यह सामुदायिक गीत नाट्य अत्यन्त चित्ताकर्षक एवं पारम्परिक रीति–रिवाज से युक्त है। गवरी का संचालन एवं नियंत्रण संगीत द्वारा होता है। अरावली क्षेत्रों में रहने वाले भील प्रत्येक वर्ष चालीस दिनों का गवरी समारोह उदयपुर शहर के आस–पास के क्षेत्र में आकर सम्पन्न करते हैं। यह समारोह मानसून की समाप्ति के अवसर पर किया जाता है। इस समारोह का रूप रंगमंचीय ही है, यह सांस्कृतिक, कलात्मक एवं रंगमंचीय तीनों ही दृष्टि से अत्यंत समृद्ध लोक नाट्यशैली है। भीलों जैसे आदिम कबीलों द्वारा सभी दृष्टि से उत्कृष्ट यह आयोजन विस्मय में डाल देता है। गवरी सुबह से शाम तक प्रतिदिन चलता है। इसमें भाग लेने वाले नर्तक, अभिनेता, गायक सभी उत्साह और उल्लास से भरे होते हैं। इसके खेलों में गणपति, कान गूजरी, जोगी, लाखा, बणजारा इत्यादि के खेल होते हैं।

रम्मत – बीकानेर की रम्मतों का अपना अलग ही रंग है। बीकानेर तथा जैसलमेर क्षेत्रों में होली और सावन के अवसर पर होने वाली लोक काव्य प्रतियोगिताओं से रम्मत नाट्य का उद्भव हुआ। इसमें राजस्थान के सुविख्यात लोक नायकों एवं महापुषों की ऐतिहासिक, धार्मिक काव्य रचना को मंच पर प्रस्तुत किया जाता है। इन रम्मतों के रचयिता मनीराम व्यास, तुसलीदास, फागु महाराज, सुआ महाराज और तेज कवि (जैसलमेरी) प्रमुख हैं। तेज कवि ने रंगमंच को क्रांतिकारी नेतृत्व प्रदान किया। उसने अपनी रम्मत का अखाड़ा श्रीकृष्ण कम्पनी से शुरू किया। १९४३ ई. में तेज कवि ने 'स्वतंत्र बावनी' की रचना कर इसे महात्मा गाँधी को भेंट किया। तेज कवि पर ब्रिटिश सरकार ने निगरानी रखी तथा कुछ समय पश्चात् उन्हें गिरफ्तार करने का वारंट जारी कर दिया। जब उन्हें गिरफ्तारी के वांरट की सूचना मिली तो वह पुलिस कमिश्नर के घर गये और उन्होंने अपनी ओजस्वी वाणी में कहा–

कमिश्नर खोल दरवाजा, हमें भी जेल जाना है,
हिन्द तेरा है न तेरे बाप का ?
हमारी मातृभूमि पर लगाया बन्दीखाना है।

इससे यह सिद्ध होता है कि रम्मत और ख्याल के खिलाड़ी सिर्फ मनोरंजक नहीं थे, बल्कि वे समाज में हो रही क्रांति के प्रति पूरी तरह से जागरूक भी थे। रम्मत शुरू होने से पहले मुख्य कलाकार मंच पर आकर बैठ जाते हैं ताकि प्रत्येक दर्शक उन्हें अपनी वेशभूषा और मेक-अप में देख सकें। रम्मत में मुख्य वाद्य नगाड़ा व ढोलक होते हैं। कोई रंगमंचीय साज-सज्जा नहीं होती। मंच का धरातल थोडा सा ऊँचा बनाया जाता है। रम्मत मुख्यतया चौमासा, लावणी, गणपति वंदना व रामदेवजी के भजनों पर केन्द्रित है।

तमाशा - जयपुर में तमाशे की गौरवशाली परम्परा है। यह लोक नाट्य १९वीं शती के पूर्व मध्यकाल में महाराज प्रतापसिंह के काल में शुरू हुआ। इसके खिलाड़ी इस तमाशे को लेकर देश के सुदूर दक्षिणी भाग से यात्रा करते हुए पहुँच गए। पं. बंशीधर भट्ट इसके मुखिया थे। इन्हें जयपुर राजघराने का संरक्षण भी मिला। यह परिवार आज भी विद्यमान है और यह परिवार परम्परागत विधि से आज भी तमाशा का लोक मंचन करता है। इस परिवार में उस्ताद परम्परा फूल जी भट्ट द्वारा स्थापित हुई एवं वे अपनी ध्रुपद गायकी के लिए प्रसिद्ध थे। गोपीकृष्ण भट्ट उस्ताद जो आज भी तमाशा का हर साल आयोजन करते हैं। इस परिवार में वासुदेव भट्ट एक अच्छे रंगमंच अभिनेता तथा गायक हैं और वे इस परम्परा को जीवित रखने में सक्रिय हैं। गोपीचन्द तथा हीर-राँझा इनके मुख्य तमाशे हैं। तमाशा खुले मंच पर होता है। यह महाराष्ट्र के तमाशे से भिन्न है तथा वर्तमान सिनेमा व टी.वी. के इस युग में भी तमाशा अत्यधिक लोकप्रिय है।

स्वांग - लोक नाट्य रूपों में स्वांग का अर्थ है - किसी विशेष, ऐतिहासिक, पौराणिक, लोक प्रसिद्ध या समाज में विख्यात चरित्र या देवी-देवता की नकल में मेकअप करना व वेशभूषा पहनना। कुछ लोग इसे अपना पेशा अपनाए हुए हैं। यह एक ऐसी विद्या है जिसे एक ही चरित्र सम्पन्न करता है, परन्तु आधुनिक माध्यमों के विकसित हो जाने से यह लोकनाट्य रूप शहर से दूर केवल गावों की धरोहर ही रह गया है और इसे केवल शादी/ब्याह तथा त्योहारों पर ही दिखलाया जाता है।

रासधारी - रासधारी का सामान्य अर्थ है - वह व्यक्ति जो रासलीला करता है, जो भगवान् कृष्ण के जीवन चरित्र पर आधारित होती है, परन्तु कालांतर में इस लोकनाट्य में अनेक और कथाएँ भी जुड़ गई हैं। सबसे पहला रासधारी नाटक अस्सी वर्ष पूर्व मेवाड़ में मोतीलाल जाट द्वारा लिखा गया। रासधारी विद्या में किसी अखाड़े या मंच निर्माण की जरूरत नहीं होती है। रास में मुख्य कथाएँ रामलीला, कृष्णलीला, हरिश्चन्द्र, नागजी और मोरध्वज की है। गाँव के चौराहों पर रासधारी देखने के लिए सैकड़ों ग्रामीण इकट्ठे हो जाते हैं। रसियों को गीत मौखिक याद होते हैं। नृत्य और गीत गाते हुए सारी कथा बयान कर दी जाती है। गाँव के लोग लोकनाट्य को मुफ्त में देखते हैं

एवज में इनके रहने, .. खाने पीने की व्यवस्था करते हैं तथा इन्हें पारिश्रमिक भी देते हैं लेकिन यह लोकनाट्य धीरे धीरे लुप्त होता जा रहा है।

बहरूपिये – बहरूपिये अपना रूप और अभिनय आदि चरित्र के अनुसार बदलने में माहिर होते हैं। अपने मेक–अप और वेशभूषा की सहायता से वे प्रायः वही लगने लग जाते हैं। जिसके रूप की वो नकल करते हैं। किसी गाँव में आ जाने पर बहुत दिनों तक बाल, वृद्ध, नर–नारियों का मनोरंजन करते रहते हैं। ये प्रायः गाँव में शादी ब्याह या मेलों के अवसर पर पहुँच जाते हैं। ये अपनी नकलची की कला में माहिर गाँव के धनी–मानी लोगों की नकल उतारते हैं। गाँव के बोहरा, सेठजी, गाँव का बनिया आदि इनके मुख्य पात्र होते हैं। ''बहरूपिया की कला राजस्थान की अपनी विशेष कला है, किन्तु आज के विकसित समाज में इनका प्रभाव लगातार घटता ही जा रहा है। इस कला का नामी कलाकार केलवा का परशुराम है। जानकीलाल बहरूपिया भी प्रसिद्ध है एवं इसने भारत उत्सवों में राजस्थान का प्रतिनिधित्व भी किया है।''[७]

निष्कर्ष– इस प्रकार राजस्थान में रंगमंच की दृष्टि से जो महत्त्वपूर्ण कार्य हुआ है उसकी सफलता से ही नयी रंग प्रतिभाएँ दिनों दिन प्रकाश में आती जा रही हैं। राज्य सरकार ने हाल में एक सांस्कृतिक विभाग की स्थापना की है और ऐसी अपेक्षा है कि इस विभाग की मदद से राजस्थान की रंगप्रेमी जनता तथा रंगकर्मियों को समुचित प्रोत्साहन तथा सम्बल मिलेगा और राज्य सरकार प्रदेश में रंगमंचीय कला को लोकप्रिय बनाने और प्रदर्शन कलाओं को लगातार सभी दृष्टियों से परिपुष्ट करने में अपनी महती भूमिका निभायेगी।

सन्दर्भ

१. राजस्थान का सांस्कृतिक इतिहास, डॉ. जे. के. ओझा, प्रकाशक– राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, संस्करण–१९८९, पृ. सं. १

२. राजस्थान अध्ययन, भाग– ४, कक्षा– १२ संयोजक एवं लेखक – डॉ. दुर्गा प्रसाद अग्रवाल, माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान अजमेर, संस्करण– २०११, पृ. सं. ११०

३. लोक साहित्य – इन्द्रदेव सिंह, प्रकाशक– प्रकाशन केन्द्र, अमीनाबाद, लखनऊ, संस्करण– १९७४, पृ. सं. २११

४. राजस्थानी साहित्य और संस्कृति, सम्पादक– मनोहर प्रभाकर, प्रकाशक– आशा पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, संस्करण– १९६५, पृ. सं. ११२

५. सांस्कृतिक राजस्थान, संपादक डॉ. जगमोहन सिंह परिहार, प्रकाशक– श्री जगदीश सिंह गहलोत, शोध संस्थान, जोधपुर, संस्करण– १९९१, पृ. सं. १४

६. राजस्थान का सांस्कृतिक इतिहास, डॉ. राम पाण्डे, प्रकाशक– शोधक, जयपुर, संस्करण– २०००, पृ. सं. १०४

७. राजस्थान की सांस्कृतिक परम्परा, डॉ. जयसिंह नीरज, डॉ. भगवती लाल शर्मा, प्रकाशक– राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, संस्करण– २०१४, पृ. सं. १६३

Shodh Navneet (International Peer-Reviewed Research Journal)
ISSN : 2321-6581, Vol. XXII, January - June 2024

अचलदास खीची री वचनिका का अनुशीलन

कुलदीप बारहठ*

अचलदास खीची री वचनिका डिंगल-वाङ्मय की एक प्राचीन और महत्त्वपूर्ण कृति है। इसमें गागरोण के शासक अचलदास खीची और मांडू (मालवा) के सुल्तान अलपखां गोरी (उर्फ होशंगशाह) के बीच हुए संग्राम का वर्णन है, जिसमें गागरोण की रक्षार्थ अप्रतिम वीरता से लड़ते हुए अचलदास ने वीरगति प्राप्त की तथा उसकी रानियों ने दुर्ग की सहस्त्रों ललनाओं सहित जौहर का अनुष्ठान किया। गाडण शिवदास ने प्रस्तुत वचनिका में अचलदास के उसी लोकविश्रुत साके का ओजस्वी वर्णन किया है, जो काव्य की दृष्टि से तो उत्कृष्ट है ही, ऐतिहासिक दृष्टि से भी अन्यतम महत्त्व की रचना है; क्योंकि काव्योचित अतिरंजना के उपरांत भी शिवदास ने पात्रों के नामोल्लेख एवं घटनाओं के वर्णन में यथा सम्भव ऐतिहासिक सत्य की रक्षा की है। फलतः वर्णन की इस तथ्याश्रितता एवं सत्यनिष्ठता के कारण प्रस्तुत वचनिका डिंगल-काव्य-प्रेमियों के साथ-साथ इतिहास के विद्वानों के लिए भी एक प्रामाणिक एवं महत्त्वपूर्ण साक्ष्य-ग्रन्थ के रूप में उपादेय हो गई है, जिसमें तत्कालीन घटना-प्रसंगों पर प्रकाश डालने वाली अलभ्य सामग्री गर्भित है, जिसका शोधानुसन्धान हेतु अद्यावधि पूरी तरह उपयोग नहीं हो पाया है। इसका मुख्य कारण ग्रन्थ की भाषागत दुरुहता है, जिसके फलस्वरूप डिंगल से अपरिचित विद्वानों के लिए प्रस्तुरत वचनिका में निहित ऐतिहासिक सामग्री का सम्ययक् उपयोग कर सकना सम्भव नहीं हो सका।

इस सम्बन्ध में स्मरणीय है कि मालवा सल्तनत से सम्बद्ध फारसी तवारीखों-तबकाते-अकबरी, गुलशने-इबराहीमी अथवा तारीखे फिरिश्ता, वाके-आते-मुश्ताकी, जफरूल-वालेह आदि से गागरोण के उस इतिहास-प्रसिद्ध युद्ध का, जो अपने समय में एक 'लीजेन्ड' बनकर लोक में विख्यात हो गया था, केवल चलते ढंग से उल्लेख किया गया है। ख्वाजा निजामुद्दीन और फिरिश्ता ने तो गागरोण के शासक अचलदास का नामोल्लेख तक नहीं किया है। ऐसी स्थिति में, उक्त युद्ध विषयक जानकारी का एकमात्र मुख्य स्त्रोत यह वचनिका ही है, जिसमें प्राथमिक महत्त्व की पुष्कल ऐतिहासिक सामग्री गर्भित है, जिसका सम्यक् परीक्षण एवं परिशीलन होना अभी शेष है।

'अचलदास खीची री वचनिका' एक ऐतिहासिक प्रबंध काव्य है, जिसका नायक तथा उससे सम्बद्ध युद्ध-घटना इतिहास पर आधारित है। यह युद्ध आज से लगभग ६०० वर्ष पूर्व (सन् १४२३ ई.) हुआ था। इस युद्ध का फारसी तवारीखों के अलावा अन्य किसी इतिहास ग्रंथ में इतना

* शोधार्थी, हिन्दी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, राजस्थान

विशद और विस्तृत वर्णन नहीं मिलता जितना इस वचनिका में मिलता है। फारसी तवारीखों में भी जो विवरण प्राप्त है, वह अत्यंत संक्षेप में और पूर्वाग्रहपूर्ण है। यहाँ तक उसमें अचलदास का नामोल्लेख तक नहीं है। ऐसी स्थिति में गागरोण के उक्त युद्ध व तत्संम्बन्धी घटनाक्रमों के बारे में हमारी जानकारी का प्रमुख स्रोत प्रस्तुत वचनिका ही रह जाती है और यही कारण है कि काव्यगत वैशिष्ट्य के साथ-साथ यह ऐतिहासिक दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण हो गई है। इसके साहित्यिक कलेवर में इतिहास की जो प्रभूत सामग्री गर्भित है, उससे विवेच्य युद्ध-घटना पर तो प्रकाश पड़ता ही है, प्रासंगिक रूप से उससे जुड़े अनेक ज्ञात-प्रज्ञात पात्रों व स्थानों के नामों की भी जानकारी मिलती है, जो शोध की दृष्टि से बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

वचनिका के ऐतिहासिक महत्त्व पर विचार करते समय हमें उसमें उल्लेखित तथ्य या घटनाओं, पात्र एवं तिथियों पर अनिवार्यतः ध्यान देना होगा। यदि वचनिका में उल्लेखित तथ्यों या घटनाओं पर विचार किया जाए तो हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि 'वचनिका' में वर्णित युद्ध-घटना जो इसका प्रतिपाद्य विषय है, इतिहास सम्मत है। जैसा कि पूर्व में बताया जा चुका है कि फारसी तवारीखों, जैसे तबकाते-अकबरी, तबकाते-फरिश्ता आदि में यद्यपि इस युद्ध का उल्लेख हुआ है, तथापि वह अत्यन्त संक्षेप में है, जिसमें उक्त युद्ध एवं तत्संबंधी घटनाओं के बारे में हमें कोई विस्तृत जानकारी उपलब्ध नहीं होती। अतः 'वचनिका' का सर्वाधिक ऐतिहासिक महत्त्व तो इसी बात में है कि गागरोण के उक्त साके को लेकर लिखी गई, यही एकमात्र स्वतन्त्रत रचना है, जो उस पर विशद एवं प्रामाणिक प्रकाश डालती है। विवेच्य रचना का महत्त्व तब और भी बढ़ जाता है जब काव्य-परम्परा और अनुश्रुति इसके रचयिता को उस युद्ध-घटना के प्रत्यक्ष द्रष्टा के रूप में स्वीकार करती है। गढ़रोध के समय कवि की उपस्थिति अथवा अचलदास से उसकी समकालीनता के प्रश्न को हम निर्विवाद न भी माने तो भी डॉ. दशरथ शर्मा के शब्दों में यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि "उसके (कवि के) और अचलदास के समय में विशेष अन्तर नहीं है और उसे तत्कालीन राजनैतिक स्थिति की पूर्ण जानकारी थी।"[१]

रही बात फारसी तवारीखों की तो इस संबंध में हमें विचार करना चाहिए कि मुस्लिम इतिहासकारों द्वारा लिखित ये तवारीखें प्रायः हमें वस्तु स्थिति का तटस्थ और निष्पक्ष ज्ञान नहीं कराती। इनमें लेखक के धार्मिक व राजनीतिक पूर्वाग्रहों से ग्रस्त होने के कारण उसकी दृष्टि केवल अपने आश्रयदाता बादशाह या सुल्तान की उपलब्धियों तक ही केन्द्रित रही। इसका उदाहरण है कि इन तवारीखों में अचलदास के नाम का उल्लेख तक नहीं है। वहीं अगर 'वचनिका' में उक्त विषय की ओर दृष्टिपात करें तो हम देखते हैं कि वचनिकाकार ने युद्ध पूर्व होशंग के आक्रमण के फलस्वरूप चारों ओर व्याप्त आंतक के चित्रण से लेकर जौहर के अनुष्ठान, अचलदास के अन्तिम युद्ध तथा दुर्ग के पतन तक का ब्योरा दिया है, जिससे हमें दुर्ग के बाहर और भीतर की अंतरंग स्थिति का पता चल जाता है। यह ब्योरा संक्षिप्त होते हुए भी क्रमबद्ध और तथ्यकपरक है, जिसमें कुछ भी अनैतिहासिक नहीं है। उदाहरणतः होशंग के प्रचण्ड बल-पराक्रम के आगे सभी हिन्दू

राजाओं का नमित हो जाना, होशंग की सेना में खेरला के शासक नरसिंह-सहित अनेक हिन्दू राजा-सामन्तों का सम्मिलित होना, होशंग का अचलदास के पास दूत भेजकर उसे गढ़ छोड़ अपने सगे-सम्बन्धियों राणा मोकल, ग्वालियर के तंवरो या आंबेर के कछवाहों के पास चले जाने हेतु कहलवाना, अचलदास के सुभट-सामन्तों द्वारा उसे समयोचित परामर्श देना एवं राजा का अपना दुर्ग शत्रु को न सौंपने का अटल संकल्प प्रकट करना, उसकी रानियों द्वारा तदर्थ अपने स्वामी को वीर-वचनों से प्रोत्साहित करना, अचलदास का सहायतार्थ अपने पुत्र धीरा को राणा मोकल के पास भेजना, राजा का वंश के सर्वनाश की आशंका से चिन्तित होना एवं पाल्हणसी को दुर्ग से निष्क्रमण करने हेतु प्रेरित करना तथा अन्त में रानियों का जौहर व अचलदास का गढ़ की तलहटी में उतर कर अपने जीवन का अन्तिम युद्ध करना आदि वर्णन पूर्णतया ऐतिहासिक नहीं तो और क्या है? सिवाय 'वचनिका' के उक्त युद्ध का इतना सटीक, साधार और सर्वांगीण विवरण हमें अन्य किसी स्रोत से उपलब्ध होता है? ये वर्णन हालाँकि कहीं-कहीं निश्चय ही अत्युक्तिपूर्ण है, जैसा कि डॉ. टैसीटरी ने आरोप लगाए हैं। लेकिन ये अतिशयोक्तियाँ काव्योचित होने से क्षम्य है। यदि हम 'वचनिका' में वर्णित तथ्यों एवं घटनाओं पर समग्रता में विचार करें तो उसके ऐतिहासिकता एवं महत्त्व को अमान्य नहीं कर सकते।

'वचनिका' में उल्लिखित पात्र एवं उनसे संबंद्ध संस्थानों पर यदि विचार किया जाए तो हम देखते हैं कि 'वचनिका' में उपलब्ध यह सामग्री, इसमें गर्भित ऐतिहासिक संदर्भों के कारण अत्यधिक महत्त्व की एवं मूल्यवान है। कारण, 'वचनिका' में जिन अनेक ज्ञात-अज्ञात पात्रों एवं स्थानों का नामोल्लेख हुआ है, उससे हमें न केवल विवेच्य युद्ध में भाग लेने वाले योद्धाओं के बारे में सुनिश्चित जानकारी मिलती है, अपितु तत्कालीन राजनीतिक स्थिति एवं परिवेश की भी एक व्यापक झलक देखने को मिलती है। मध्ययुगीन मालव-इतिहास के विद्वानों के लिए 'वचनिका' में प्राप्त योद्धाओं तथा उनके संस्थानों के परिचायक ये उल्लेख निश्चय ही अनुसंधान की दृष्टि से बहुत उपयोगी सिद्ध है।

यदि पुस्तकान्त में दी गई टिप्पणियों में दिये गये कुछ प्रमुख पात्रों व स्थानों पर ऐतिहासिकता की दृष्टि से प्रकाश डालने का प्रयास करें, तो इन प्रमुख पात्रों में उस्मानखां, फतेहखां, गजनीखां, उमरखां, हैबतखां, मलिक मुगीस, खेरला का शासक नरसिंह, रावल गेपा, अचलदास की रानी पुष्पावती व उसके पुत्र पाल्हणसी, धीरा आदि का उल्लेख दिया गया है। ये सब पात्र ज्ञात और इतिहास सम्मत हैं। अतः इनकी ऐतिहासिकता को लेकर कोई विवाद नहीं है। परन्तु इनके अतिरिक्त 'वचनिका' में और भी अनेक पात्रों का नामोल्लेख हुआ है, जैसे मातापुरी (मातंगपुरी) का लखमराव, नरसिंह के पुत्र चांदजी-खेमजी, पउली का देवसिंह, देवड़ा समरसिंह आदि जो अचलदास के विरुद्ध होशंग की मालव-सेना में सम्मिलित हुए थे। इसी भाँति, इसमें अचलदास के पक्ष में लड़ने वाले उसके अनेक सुभट-सामन्तों का भी नामोल्लेरख हुआ है, जैसे बाला का पुत्र पाल्हणसी, भोजदव का पोमा, महिराज और भीमा, परम यशस्वी राजा जूणसी, धीरा, बाहड़ और

कल्याणसिंह, जोतिपुरा का करमसिंह, गोदों में राजधर, सोलंकियों में सत्रसाल, हाडाओं में बीझा-उधरण, नाथू डोड, डूंगरबागड़ी आदि-आदि। साथ ही, कवि ने अचलदास के अपने निजी परिग्रह के योद्धाओं का भी उनकी जाति सहित नामोल्लेख किया है, जो उसकी उक्त युद्ध विषयक सूक्ष्म एवं अंतरंग जानकारी का ही प्रमाण है।

इस दृष्टि से हम वचनिकाकार के गहन एवं व्यापक इतिहास-बोध की प्रशंसा किए बिना नहीं रह सकते, जिसने न केवल अपने चरित्र नायक के पक्ष के सुभट-सामन्तों की विस्तृत नामावली दी है, बल्कि उसके प्रतिपक्षी सुल्तान होशंग के पक्ष के अमीर-उमरावों तथा हिन्दू राजाओं का भी उतनी ही विशदता से नामोल्लेख किया है, जिसके फलस्वरूप हमें उस युद्ध में भाग लेने वाले उभयपक्षीय योद्धाओं के बारे में इतनी स्पष्ट और सुनिश्चित जानकारी मिल जाती है, जो अन्यत्र अप्राप्य है। हालाँकि कुछ विद्वानों ने कुछ पात्रों की ऐतिहासिकता पर सवाल उठाया है, लेकिन उनकी ऐतिहासिकता सिद्ध न होने के कारण पूरे ग्रंथ की ऐतिहासिकता पर संशय करना 'वचनिका' के प्रति अन्याय होगा और हमारी भूल भी। डॉ. शंभू सिंह मनोहर ने अपनी पुस्तक में इस समस्या के निराकरण में इसका कारण प्रामाणिक पाठ-निर्णय की समस्या, डिंगल की प्राचीन शब्दावली एवं उसके रूढ़ प्रयोगों का अर्थ ठीक से न समझने के कारण कभी-कभी नामों की सही पहचान नहीं करने की भूल बताया है।

जहाँ तक तिथिगत प्रामाणिकता का प्रश्न है 'वचनिका' में कवि ने केवल एक स्थान पर तिथि निर्देश किया है, जो गागरोण के युद्ध की निश्चित अवधि का ज्ञान कराने की दृष्टि से अतीव महत्त्वपूर्ण है। फारसी तवारीखों से यद्यपि यह तो पता चल जाता है कि गागरोण पर होशंग ने हिजरी सन् ६२६ (ई. सन् १४२३, वि. संवत् १४८०) में आक्रमण किया था, तथापि उससे यह पता नहीं चलता कि उक्त युद्ध कितने दिन चला तथा दुर्ग का पतन कब हुआ 'प्रकारांतर से, दुर्ग के पतन की तिथि ही अचलदास के वीरगति प्राप्त करने की भी तिथि है। उपर्युक्त सूचनायें इस 'वचनिका' से मिल जाती है, जिससे युद्धावधि का सुनिश्चित ज्ञान हो जाता है। 'वचनिका' में कवि का युद्ध विषयक उल्लेख निम्नांकित है-

''इसी परि त्यां लड़ता-लागतां, मरतां-मारतां,
जिण महा-अष्टमी जुध मातउ थउ,
दूसरी अष्टमी आणि संप्राप्ति हुयी।।''[२]

यहाँ कवि का महाष्टमी से आशय आश्विन शुक्ल ८ से है तथा दूसरी अष्टमी का कार्तिक कृष्ण ८ से। यह महाष्टमी सोमवार, १३ सितंबर १४२३ को पड़ी थी तथा कार्तिक कृष्ण ८ सोमवार, २७ सितंबर सन् १४२३ को। इस प्रकार गागरोण का यह युद्ध कुल १५ दिन चला था। तदनुसार अचलदास की मृत्यु-तिथि कार्तिक कृष्ण ८, संवत् १४८० अर्थात् २७ सितंबर सन् १४२३ निश्चित हो जाती है।

'वचनिका' का यह साक्ष्य ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि इससे न केवल गागरोण-युद्ध की अवधि ही, अपितु अचलदास की मृत्यु-तिथि भी सुनिश्चित हो जाती है। साथ ही, इससे उक्त युद्ध की तिथि विषयक कुछ विद्वानों की भ्रान्त स्थापनाओं का भी निराकरण हो जाता है।

निष्कर्षतः 'वचनिका' पर समग्र दृष्टि से विचार करने पर हम कह सकते हैं कि कवि ने इसमें, काव्योचित सीमाओं में, ऐतिहासिकता के निर्वाह के प्रति अपनी प्रशंसनीय सचेष्टता का परिचय दिया है। इससे अधिक एक कवि से अपेक्षा भी नहीं की जा सकती।

अतः गाडण शिवदास-कृत 'अचलदास खीची री वचनिका' प्राचीन डिंगल-वाङ्मय की एक महत्त्वपूर्ण कृति है। इसका यह महत्त्व अनेकरूपेण है। काव्यरूप की दृष्टि से 'वचनिका' संज्ञक विधा में, इसे राजस्थानी साहित्य की आदि वचनिका होने का गौरव प्राप्त है। इतिहास की दृष्टि से अपने तथ्याश्रित विवरणों तथा इसमें वर्णित युद्ध-घटना पर प्रकाश डालने वाली प्राचीनतम एवं एकमात्र उपलब्ध राजस्थानी काव्य-रचना होने के कारण यह इतिहासकारों के लिए एक प्रथम कोटि के प्रामाणिक एवं आधार-ग्रन्थ के रूप में स्वीकृत हुई है। साथ ही, इसका साहित्यिक महत्त्व तो सुविदित है ही। वीर अचलदास के अप्रतिम शौर्य तथा उसकी रानियों के अनुपम त्याग के आख्यान द्वारा जहाँ इसमें वीरत्व की विदग्धतम व्यंजना हुई है, वहाँ भाषा की दृष्टि से यह प्राचीन डिंगल की एक प्रमुख एवं प्रतिनिधि रचना के रूप में मान्य हुई है। भाषाशास्त्रीय दृष्टि से भी इसका महत्त्व अन्यतम है। कारण, इसमें डिंगल के अनेक ऐसे विशिष्टार्थक शब्द व्यवहृत हुए हैं, जिनकी प्रयोग-परम्परा आज प्रायः निःशेष हो चुकी है। अतः तत्कालीन भाषा-स्थिति एवं भाषा-स्वरूप का परिचय कराने के साथ-साथ तद्युगीन डिंगल-शब्दावली के अर्थ वैज्ञानिक अध्ययन का मार्ग प्रशस्त करने की दृष्टि से भी विवेच्य 'वचनिका' का महत्त्व असंदिग्ध है।

इसके अतिरिक्त 'वचनिका' में तत्कालीन सामन्ती परिवेश, परम्पराओं राजनीतिक स्थिति, युद्धविधि, युद्धोपकरणों आदि का भी जो आनुषांगिक रूप से चित्रण हुआ है, वह समाजशास्त्र के अध्येता के लिए अनुसंधान के नए आयाम प्रस्तुत करता है। परन्तु विवेच्य 'वचनिका' के अध्ययन का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पक्ष है- इसके माध्यम से जीवन के उच्चतम आदर्शों एवं शाश्वत मूल्यों की प्रतिष्ठा। ये मूल्य हैं- शौर्य, स्वाभिमान, स्वातन्त्र्य-प्रेम, स्वधर्म-रक्षा, स्वामिभक्ति (आज के सन्दर्भ में कृतज्ञता), वचन-पालन, निःस्वार्थ त्याग आदि, जो किसी काल विशेष के लिए ही सार्थक न होकर सार्वभौमिक एवं सार्वकालिक हैं। यह मूल्य धर्मिता ही वस्तुतः राजस्थानी काव्यों की मौलिक विशेषता एवं सर्वोपरि सम्पदा है।

सन्दर्भ

१. वचनिका : ऐतिहासिकता परीक्षण, दीनानाथ खत्री, पृ. सं. ३
२. वचनिका : ऐतिहासिकता परीक्षण, दीनानाथ खत्री, पृ. सं. ३

सहायक-ग्रंथसूची

- अचलदास खीची री वचनिका, सं. श्री दीनानाथ खत्री, सार्दूल रिसर्च इंस्टीट्यूट बीकानेर।
- अचलदास खीची री वचनिका गाडण शिवदास री कही, सम्पा. डॉ. शंभू सिंह मनोहर, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर।
- राजस्थानी वचनिकाएँ, डॉ. आलम शाह खान, राजस्थान साहित्य अकादमी (संगम) उदयपुर।
- वचनिका अचलदास खीची री : अन्वेषण एवं मूल्यांकन, मुकुंद नारायण पुरोहित, राजस्थान एजुकेशनल स्टेट, बीकानेर।

———————————

Shodh Navneet (International Peer-Reviewed Research Journal)
ISSN : 2321-6581, Vol. XXII, January - June 2024

'गवेषणा' का रामधारी सिंह 'दिनकर' विशेषांक : एक परिचय

नवीन कुमार जोशी*

'गवेषणा' केंद्रीय हिन्दी संस्थान आगरा की एक महत्त्वपूर्ण पत्रिका है। "इसके प्रथम अंक का प्रकाशन जनवरी १९६३ में हुआ था। प्रारंभ में यह पत्रिका अर्धवार्षिक रूप में तत्पश्चात् त्रैमासिक रूप में निकलने लगी।[१] लगभग इकसठ वर्षों से जिस प्रतिबद्धता के साथ निरंतर यह पत्रिका निकल रही है। इससे यह प्रतीत होता है कि उस समय से आज तक केंद्रीय हिन्दी संस्थान ने अनुसंधान और शिक्षण का एक लंबा सफर तय किया है। 'गवेषणा' के अंकों में शोधपरक लेख छपते रहे हैं, जिनसे किसी को भी पता चल सकता है कि भाषाविज्ञान ही नहीं, भाषाशिक्षण तथा साहित्य चिंतन की त्रैमासिक शोध पत्रिका के क्षेत्र में भी संस्थान की कितनी दिलचस्पी रही है और इस पत्रिका का कितना बड़ा योगदान है। संपूर्ण भारत के हिन्दी विद्वान् इसमें समय-समय पर छपते रहे हैं। उनके विषयों में काफी विविधता रही है। इससे इस पत्रिका के नियमित पाठकों और हिन्दी भाषा-साहित्य में रुचि रखने वाले बुद्धिजीवियों, शोधार्थियों और विद्यार्थियों को साहित्यिक लाभ प्राप्त हुआ है।

इस पत्रिका में शोधपरक लेखों के साथ ही समय-समय पर विशेषांक भी निकलते रहे हैं। जिनमें रामधारी सिंह 'दिनकर' विशेषांक महत्त्वपूर्ण है। इस विशेषांक के अंतर्गत अनेक साहित्य मनीषियों ने अपनी-अपनी रचना दृष्टि से दिनकर को भापने का प्रयास किया है।

दिनकर ने अपनी रचनाओं में सामाजिक कुरीतियों को भेदने का और व्यक्ति में एक नई ऊर्जा भरने का सफल प्रयास किया गया है। प्रो. रामवीर सिंह ने अपने आलेख में बताया कि "दिनकर की कविता सोते हुए व्यक्ति को उठाकर दौड़ने की शक्ति देती है। असमानता, विभेद, वैषम्य, विद्वेष जैसे बहुकोणीय सामाजिक कुरीतियों को भेदने के लिए वह गजब का हौसला पैदा कर देती है और तब तक अपने पाठक के साथ रहती है जब तक वह अपने अभीष्ट को पा नहीं लेता। वास्तव में दिनकर जी का जैसा व्यक्तित्व था उनका रचना संसार भी उसी कद का था। कहीं कोई झोल झाँसा नहीं, केवल गर्जना थी जिसे सुनकर आततायी घुटने टेक कर समर्पण करता था। वे अपने पाठक का बहुत सम्मान करते थे।"[२]

दिनकर की रचनाओं में ज्ञान और विचार का समन्वय देखने को मिलता है। प्रो. एस. शेषारत्नम् ने अपने आलेख में बताया कि "दिनकर के कुरुक्षेत्र का सारा प्रतिपाद्य ज्ञान और भावना

* शोधार्थी, हिन्दी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, राजस्थान

का समन्वय ही है। दिनकर की विशेषता यह है कि उनकी रचनाएँ ऐतिहासिक परिपार्श को ग्रहण करते हुए भी वर्तमान समस्याओं से असंपृक्त नहीं हैं। विश्वयुद्धों ने यह और प्रमाणित किया है कि अस्त्र-शस्त्रों के निर्माण से ही देशों की रक्षा हो सकती है और उनके निर्माण के पीछे वैज्ञानिक ज्ञान का प्रचुर प्रयोग हुआ है, इससे प्रत्येक देश अपनी सुरक्षा के लिए अस्त्र-शस्त्रों का निर्माण बड़ी संख्या में करने लगा। इससे युद्ध की संभावना निरंतर बनी रहने लगी।''[३]

दिनकर शौर्य, शृङ्गार और संस्कार के कवि हैं। इनकी इस विशेषता को उद्घाटित करते हुए प्रो. अलका पाण्डेय ने अपने आलेख में बताया कि ''अतीत का गौरवगान करने वाले स्वर उनके काव्य 'रेणुका' में हैं। इसमें मुख्यतः तीन प्रकार की रचनाएँ हैं। एक तो वे जिनमें राष्ट्रीयता के साथ युगीन परिस्थितियों का चित्रण है तथा कहीं-कहीं क्रांति एवं विद्रोह के स्वर हैं। दूसरी वे जिनमें शृङ्गार, प्रार्थना और उद्बोधनादि वैयक्तिक अनुभूतियाँ हैं।''[४]

दिनकर की कविताएँ आज के समय में प्रासंगिक है या नहीं? इसको उद्घाटित करते हुए प्रो. जगमल सिंह ने अपने आलेख में बताया कि ''प्रश्न यह उठता है कि क्या दिनकर की कविता आज भी प्रासंगिक है अथवा नहीं हैं इस प्रश्न का उत्तर दिनकर के तीन प्रबंध काव्यों के आधार पर दिया जा सकता है। रश्मिरथी में दलित विमर्श, कुरुक्षेत्र में हिंसा-अहिंसा विमर्श और उर्वशी में नारी विमर्श आज की ज्वलंत समस्याओं को स्थान देकर कवि ने इनकी प्रासंगिकता सिद्ध कर दी है। विस्तार भय से बचने के लिए यहाँ उर्वशी की प्रासंगिकता का विवेचन किया जा रहा है।''[५]

दिनकर की आलोचनात्मक अवधारणाओं और उनके आलोचक रूप उद्घाटित करते डॉ. रेणु व्यास ने अपने आलेख में बताया कि ''आलोचना के क्षेत्र में दिनकर की अपनी कुछ मान्यताएँ हैं। पहली यह कि रचना प्राथमिक है और आलोचना द्वितीयक। दूसरे इनका मानना है कि प्रत्येक युग विभिन्न कवियों के माध्यम से एक ही कविता लिखता है और इसी कारण एक युग के भिन्न-भिन्न प्रतीत होने वाले कवियों की कविता भी अन्य युग के कवियों की अपेक्षा अपने युग के कवियों के अधिक समीप होती है। दिनकर यह भी मानते हैं कि प्रत्येक कवि जीवन-भर एक ही कविता लिखता है, अर्थात् उसकी सभी कविताओं को समग्र रूप से देखा जाना चाहिए। साथ ही यह भी कि काव्य/साहित्य का आकलन साहित्येतर मापदण्डों से न किया जाए।''[६]

दिनकर की अपनी रचनाओं में राष्ट्रीय चेतना बखूबी देखने को मिलती है। इसको अपने आलेख में उद्घाटित करते हुए डॉ. सभापति मिश्र ने बताया कि ''दिनकर का काव्य सतत् जागरण का काव्य है। वहाँ राष्ट्रीय चेतना के साथ-साथ विप्लव, विद्रोह, क्रान्ति और प्रतिशोध की अग्निशिखा निरंतर दहकती रहती है। उनकी भावप्रवणता को क्षणिक आवेश नहीं कहा जा सकता; क्योंकि यहाँ पर स्वतंत्रता के लिए उत्कट चाह और युग-संघर्ष के साथ जीर्ण-क्षीर्ण को ध्वस्त कर डालने वाली क्रान्ति की आग निरंतर दहकती रहती है। राष्ट्र-प्रेम और वीरोचित भावनाओं की अभिव्यक्ति उनके काव्य को निरंतर गतिशील बनाए रहती है। इनमें आवेग और धुँधली राष्ट्रीय-

चेतना की झलक कहीं नहीं दिखाई पड़ती। सर्वत्र विराट अनुभूति का उदात्त प्रस्तुतीकरण हुआ है। उनकी तेजस्विता और ओजमयी वाणी उनकी राष्ट्रीय चेतना से एकाकार होकर अभिन्न रूप में प्रकट हुई है। उनके काव्य में राष्ट्रीयता के प्रति जो जागरूकता दिखाई पड़ती है, वह प्रकारान्तर से यथास्थिति से उबरने के प्रति आस्था है और यही जीव के लिए सही अर्थों में प्रगतिशील दृष्टि है।''[७]

दिनकर गाँधीवादी होते हुए भी उन्होंने उस गाँधीवादी दृष्टिकोण को पूर्णतः नहीं अपनाया, जो अहिंसा की पूजा करता रहे। दिनकर के इस दृष्टिकोण को उद्घाटित करते हुए डॉ. ज्योति शर्मा ने अपने आलेख में बताया कि ''गाँधीवादी होते हुए भी युद्ध के संबंध में 'दिनकर' जी ने महात्मा जी के दृष्टिकोण को पूर्णतः नहीं अपनाया है। इस समस्या के संबंध में कवि का समाधान यह है कि पृथ्वी पर मनुष्य की चेतना अभी इतनी विकसित नहीं हुई है कि युद्ध एकदम बंद हो जाए। ऐसी दशा में न्याय के पक्ष में यदि हम युद्ध करने के लिए विवश हों, तो ऐसा युद्ध पाप कभी नहीं हो सकता। वर्तमान परिस्थितियों में यह समाधान बहुत विवेकपूर्ण प्रतीत होता है। सांस्कृतिक दृष्टि से भी इस कृति का मंतव्य एक आशावादी जीवन-दृष्टि का परिचायक रहेगा। क्योंकि इसके अंत में जीवन की विरक्ति को जीवन के प्रेम में बदलकर एक मांगलिक स्वर का सूत्रपात किया गया है।''[८]

दिनकर ओज, क्रांति और मूल्यबोध के कवि हैं। इसको उद्घाटित करते हुए डॉ. दिनेश चमोला 'शैलेश' ने बताया कि ''रचनाधर्मिता की यह ऊर्ध्वमुखी यात्रा फिर बालक 'दिनकर' की ओजस्वी लेखनी से अपने स्वरूप व क्षेत्र को विस्तार देती हुई पद्य से गद्य व साहित्य की अन्यान्य विधाओं को महिमा मंडित/गौरवान्वित करती रही। 'रेणुका', 'हुंकार', 'रश्मिरथी', 'उर्वशी', 'कुरुक्षेत्र', 'संस्कृति' के चार अध्याय सहित अनेक उत्कृष्ट पुस्तकें 'दिनकर' के ओजस्वी लेखन के रूप में हिन्दी साहित्य की अमूल्य धरोहर हैं। 'दिनकर' की कविताएँ जीवन मूल्यों की रत्नगर्भा भाव वसुंधरा से उपजी हैं जो अपने साथ स्वाभिमान, त्याग व उत्सर्ग की उत्कट अभिलाषा लिए अपने जीवन लक्ष्य को उकसाती प्रतीत होती हैं। वे अपने आदर्शों की रक्षा व लक्ष्य की रक्षा प्राप्ति के लिए प्राणोत्सर्ग तक करने का भी संकोच नहीं करते।''[९]

दिनकर जीवन आनंद के कवि हैं। उनका काव्य प्रेम, त्याग और समर्पण की सीख देता है। इसको उद्घाटित करते हुए डॉ. राजाराम यादव ने अपने आलेख में बताया कि ''दिनकर का काव्य प्रेम सिखाता है, त्याग सिखाता है, समर्पण सिखाता है और जीवन को स्नेह-सौंदर्य से पूरित करने के समस्त साधन उपलब्ध कराता है। दिनकर का काव्य नैसर्गिक न्याय का भाषिक उद्घोष है। एक संवेदनशील की सहज प्रतिक्रिया है। जीवन के यथार्थ को अब तक इस वेबाकी से किसी ने शायद ही प्रस्तुत किया हो। समाज और साधन-विहीनों की दुर्दशा को इतने ऊँचे स्वर में शायद ही किसी ने कलमबद्ध किया हो। इनके काव्य में मौसम के मिजाज को भाँपने और फिजा को बदलने की असीम क्षमता है। प्रारंभ से ही 'विजय-संदेश' जैसी श्रेष्ठ कृति से आरंभ उनका रचना-कर्म प्रणभंग, रेणुका, हुँकार, रसवंती, द्वंद्वगीत, सामधेनी, रश्मिरथी और परशुराम की प्रतीक्षा के मार्ग से अजस्र प्रवाहित होते हुए उर्वशी की भाव-भूमि पर उतरता है। जहाँ कविता कविता न रहकर जीवन दर्शन

बन जाती है और काव्य–काव्य न रहकर वेद का स्वरूप ग्रहण कर लेता है।"[१०]

इस विशेषांक में दिनकर की रचनाओं में वैज्ञानिक प्रगति और मानवता विषय के साथ उनकी वैचारिकी को लेखकों द्वारा उद्घाटित करने का सफल प्रयास किया गया है। दिनकर की राष्ट्र के प्रति समर्पण भावना को लेखकों द्वारा उद्घाटित करने का प्रयास किया गया है। दिनकर के शौर्य, शृङ्गार और संस्कार के कवि रूप को निखारने का लेखकों द्वारा सफल प्रयास किया गया है। दिनकर के आलोचक रूप को बखूबी उद्घाटित करने का सफल प्रयास लेखकों द्वारा किया गया है।

इससे यह स्पष्ट होता है कि दिनकर ने संपूर्ण लेखन और विचार के केंद्र में भारतीय इतिहासकार, सभ्यता, संस्कृति और परंपरा को रखा। विचार के केंद्र में केवल भारत देश हो, यह उनका चिंतन रहा था। इस चेतना को प्रचारित और प्रसारित करने के हर उपक्रम का प्रयोग उन्होंने किया। जिसके परिणाम स्वरूप उनकी प्रतिष्ठा राष्ट्रकवि के रूप में हुई। विद्यार्थी जीवन से अपने लेखन को प्रारंभ करके अंतिम समय तक इसी साधना में लीन रहने वाले दिनकर ने भांति–भांति के क्षेत्र को खूबदेखा, खूब समझा और खूब लिखा।

निश्चित रूप से गवेषणा पत्रिका में प्रकाशित रामधारी सिंह 'दिनकर' विशेषांक साहित्य में रुचि रखने वाले विभिन्न प्रकार के पाठक वर्ग के लिए उपयोगी है।

सन्दर्भ

१. गवेषणा संचयन, केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा।
२. रामधारी सिंह दिनकर विशेषांक, गवेषणा पत्रिका, पृष्ठ सं. १८
३. वही, पृष्ठ सं. २८
४. वही, पृष्ठ सं. ३३
५. वही, पृष्ठ सं. ९२
६. वही, पृष्ठ सं. १४३
७. वही, पृष्ठ सं. १७६
८. वही, पृष्ठ सं. १८९
९. वही, पृष्ठ सं. २३७
१०. वही, पृष्ठ सं. २५८

Shodh Navneet (International Peer-Reviewed Research Journal)
ISSN : 2321-6581, Vol. XXII, January - June 2024

कुमारसम्भवम् महाकाव्य में हिमालय : एक वर्णन

(प्रथम सर्ग के विशेष सन्दर्भ में)

कुलदीप कुमार गुप्ता*

महाकवि कालिदास संस्कृत के ही नहीं अपितु सम्पूर्ण मानव-चेतना की साहित्यिक समृद्धि के एकमात्र प्रतिनिधि कवि हैं। एक सफल महाकाव्यकार, सर्वोत्कृष्ट नाटककार एवं गीतकाव्य के प्रणेता के रूप में संस्कृत वाङ्मय में प्रसिद्ध रहते हुए महाकवि कालिदास ने स्वयं के व्यक्तित्व को साहित्य-साधकों, अन्वेषकों एवं जिज्ञासुओं के समक्ष नही रख सके या रखना न चाहा हो। यद्यपि कालिदास के सम्बन्ध में विभिन्न किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं। एक पारम्परिक मान्यता के आधार पर कालिदास उज्जयिनी (उज्जैन) के राजा विक्रमादित्य के नवरत्नों में से एक थे। मेरुतुङ्गाचार्य के प्रबन्धचिन्तामणि एवं बल्लालसेन के भोजप्रबन्ध आदि ग्रंथों में भी कालिदास के विषय में अनेक कथाएँ मिलती हैं, जो कि ऐतिहासिक दृष्टि से सत्य नही कही जा सकती है। एक प्रसिद्ध कथा उनके सम्बन्ध में इस प्रकार से प्रचलित है कि वे बचपन में वे एक महान् मूर्ख थे और पंडितों ने राजा विक्रमादित्य की पुत्री राजकुमारी विद्योत्तमा से बदला लेने के लिए उसका विवाह छल से कालिदास से करा दिया गया, किन्तु कालिदास की लोकप्रियता उनके काव्यों (ग्रन्थों) के कारण है।

महाकवि कालिदास की रचनाओं को तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं-

१. महाकाव्य - (क) रघुवंशम् (ख) कुमारसम्भम्।

२. खण्डकाव्य - (क) मेघदूतम् (ख) ऋतुसंहारम्।

३. नाटक - (क) अभिज्ञानशाकुन्तलम् (ख) विक्रमोर्वशीयम् (ग) मालविकाग्निमित्रम्।

महाकाव्यों में कुमारसम्भव का स्थान अद्वितीय है। महाकवि ने इसे १८ सर्गों में विभक्त किया है। इसमें कुमार अर्थात् कार्तिकेय के जन्म की कथा वर्णित है। कुमारसम्भव की कथा का मूल स्रोत पौराणिक परम्परा में है। कुछ के अंश तक कालिदास इस कथा के लिए रामायण तथा महाभारत के भी ऋणी प्रतीत होते हैं। जिस रूप में कुमारसम्भव में शिवपार्वती के परिणय का कथानक प्रस्तुत किया गया है, वह पद्मपुराण तथा शिवपुराण में उसी रूप में मिलता है, किन्तु ये दोनों पुराण कालिदास के पहले के हैं या बाद के इस विषय में विद्वानों में मतभेद है। यह सत्य है कि कालिदास ने परम्परा से प्राप्त कथानक को नई परिकल्पनाओं या उद्भावनाओं के साथ अपने जीवन-दर्शन व मानव-विज्ञान के अध्ययन से संकलित करके अत्यन्त सुन्दर स्वरूप दे दिया है।

* शोधच्छात्र, संस्कृत विभाग, नेहरू ग्राम भारती (मानित विश्वविद्यालय), प्रयागराज (उ.प्र.)

यद्यपि कुमारसम्भव के नायक शिव दिव्य कोटि के हैं। उनका चरित्र अलौकिक है। कवि ने उनकी मर्यादा का पूरा निर्वाह करते हुए उनमें मानवीय गुणों की प्रतिष्ठा की है। वे **'विकारहेतौ सति विक्रियन्ते येषां न चेतांसि त एव धीराः'** कवि की इस उक्ति को पूरी तरह चरितार्थ करते हैं। कुमारसम्भव नायिका प्रधान महाकाव्य है। इसमें आद्यन्त पार्वती का कर्तृत्व छाया हुआ है। वे ही शिव को पाने के लिए उनकी आराधना करती हैं और अपने रूप से उन्हें रिझाना भी चाहती हैं। जब उन्हें अनुभव होता है कि शिव बाहरी सौन्दर्य पर नहीं रीझते, वे चित्त की निष्ठा और साधना देखते हैं, तो वे शिव को पाने के लिए घोर तप करती हैं। पार्वती के चरित्र की महनीयता कवि के द्वारा उनके लिए कहलाये गये निम्नलिखित कथनों से की जा सकती है- **'यदुच्यते पार्वति! पापवृत्तये न रूपमित्यव्यभिचारि तद्वचः।'**[१] अर्थात् रूप पापाचरण के लिए नहीं, पुण्य के आचरण के लिए होता है, यह जो बात कही जाती है, हे पार्वती, तुम्हें देखकर उसकी चरितार्थता समझ में आ जाती है।

'ध्रुवं वपुः काञ्चनपद्मनिर्मितं मृदु प्रकृत्या च ससारमेव च।'[२]

अर्थात् उसका तन जैसे सोने के कमल का बना था, देखने में जितना ही कोमल उतना सार या प्राण से युक्त था।

उपर्युक्त कथानक का उल्लेख 'कुमारसम्भवम् महाकाव्य' में सत्रह सर्गों में मिलता है, पर विद्वान् इस विषय में मतैक्य नहीं दिखते हैं। टीकाकार मल्लिनाथ की टीका आठ सर्गों तक ही है। विवरण टीका के प्रणेता नारायण पंडित के अनुसार कालिदास का लक्ष्य इस महाकाव्य में पार्वती के द्वारा शिव के चित्त का आकर्षण दिखाना था, जो कुमार कार्तिकेय के जन्म का कारण बना। अतः आठवें सर्ग में शिव और पार्वती के विवाह के वर्णन के बाद उनके समागम के वर्णन के साथ ही महाकाव्य की समाप्ति मान लेना उचित लगता है। इसीलिए विद्वान् मात्र आठ सर्ग तक ही कालिदास द्वारा विरचित स्वीकार करते हैं, अवशिष्ट नौ सर्ग किसी परवर्ती महाकवि द्वारा जोड़ा गया स्वीकार करते हैं। इन सर्गों में कालिदास की लेखनी का चमत्कार देखने को नहीं मिलता है। इनकी भाषा-शैली प्रथम आठ सर्गों की तुलना में निकृष्टतम लगती है। साथ ही साथ वस्तुनिरूपण में भी कालिदास जैसे कवि के अनुरूप सामंजस्य नहीं दिखाई पड़ता है तथा पुनरुक्तियाँ भी इनमें देखने को मिलती है। कुमारसम्भव महाकाव्य में शिव पार्वती के विवाह की कथा है।

कवि ने ग्रन्थ का प्रारम्भ हिमालय पर्वत के वर्णन से किया है, जिसे अपनी कुशलता के कारण सभी पर्वत श्रृंखलाओं का राजा कहा जाता है। पर्वतराज हिमालय को अपनी पत्नी मेना देवी से मैनाक नाम का एक पुत्र और पार्वती नाम की एक पुत्री हुई, जो अपने पूर्व जन्म में दक्ष-प्रजापति की पुत्री और शिव की पत्नी थी। जब वह विवाह योग्य आयु प्राप्त कर लेती है, तो ऋषि नारद, जो हिमालय की यात्रा पर हैं। उन्होंने भविष्यवाणी की कि वह अपने पति के लिए शिव को जीत लेगी। इस भविष्यवाणी पर भरोसा करते हुए, हिमालय अपनी बेटी पार्वती के लिए दूल्हे की तलाश करने

में विशेष रूप से सक्षम नहीं हैं। इस बीच, भगवान् शिव ने, अपनी पत्नी सती को खोने के बाद, खुद को हिमालय की एक चोटी पर स्थापित कर लिया था और वहाँ तपस्या कर रहे थे। जब हिमालय को इस बात का पता चला, तो उन्होंने अपनी बेटी पार्वती को, उनकी दो दासियों के साथ, शिव की तपस्या के दैनिक कार्यों में शिव की प्रतीक्षा करने के लिए नियुक्त किया।

इस देश की उत्तरी सीमा पर, जो देवताओं की हृदयस्थली है, पृथ्वी को एक मापने वाली छड़ी की तरह पूर्वी और पश्चिमी महासागरों में खुद को जोड़ता है, वहाँ पर्वतराज हिमालय के रूप में प्रसिद्ध बर्फीले पहाड़ों का साम्राज्य खड़ा है।

कुमारसम्भव महाकाव्य में महाकवि ने हिमालय का वर्णन अपने ग्रंथ के मंगल श्लोकों से ही किया है। जिसमें यह प्रतिपादित किया गया है कि भारत के उत्तर में देवता के समान पूजनीय हिमालय नाम का वृहद् पर्वत है। जो पूर्व और पश्चिम के समुद्र तक फैला हुआ है।

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः।
पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः।।[३]

पुनः महाकवि कालिदास ने हिमालय वर्णन के प्रसंग में वर्णित किया कि राजा पृथु के कहने से सब पर्वतों ने मिलकर इसे बछड़ा बनाया और दुहने में चतुर मेरु पर्वत को ग्वाला बनाकर पृथ्वी रूपी गौ से सब चमकीले रत्न और जड़ी बूटियाँ निकाली।

यं सर्वशैलाः परिकल्प्य वत्सं मेरौ स्थिते दोग्धरि दोहदक्षे।
भास्वन्ति रत्नानि महौषधीश्च पृथूपदिष्टां दुदुहुर्धरित्रीम्।।[४]

पुनः प्रथम सर्ग के तीसरे श्लोक में हिमालय का वर्णन करते हुए कहा है कि अनगिनत रत्न उत्पन्न करने वाले इस हिमालय की शोभा हिम के कारण कुछ कम नहीं हुई; क्योंकि जहाँ अनेकों गुण हों वहाँ यदि एकाध अवगुण आ भी जाए तो उसका वैसे ही पता नहीं पड़ता जैसे चन्द्रमा की किरणों में उसका कलंक छिप जाता है।

अनन्तरत्नप्रभवस्य यस्य हिमं न सौभाग्यविलोपि जातम्।
एको हि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः।।[५]

महाकवि कालिदास ने प्रथम सर्ग के चौथे श्लोक में हिमालय की सुन्दरता का वर्णन करते हुए कहते हैं कि हिमालय की कुछ चोटियों पर गेरु आदि धातुओं की अनेक रंग-बिरंगी चट्टानें हैं इसलिये कभी-कभी उन चट्टानों के पास पहुँचे हुए बादलों के टुकड़े उनके रंग की छाया पड़ने से सन्ध्या के बादलों-जैसे रङ्ग-बिरङ्गे दिखाई पड़ने लगते हैं। उन्हें देखकर सन्ध्या होने से पहले ही वहाँ की अप्सराओं को यह भ्रम हो जाता है कि सन्ध्या हो गई और इस हड़बड़ी में वे सायंकाल के नाच-गाने के लिये अपना शृङ्गार करना प्रारम्भ कर देती हैं।

यश्चाप्सरोविभ्रममण्डनानां संपादयित्रीं शिखरैर्बिभर्ति।
बलाहकच्छेदविभक्तरागामकालसंध्यामिव धातुमत्ताम्।।[६]

महाकवि कालिदास ने वर्णन किया है कि हिमालय के कुछ चोटियाँ इतनी ऊँची उठी हुई हैं कि मेष भी उनके बीच तक ही पहुँचकर रह जाते हैं, उनके ऊपर का आधा भाग मेषों के ऊपर निकला रहता है। इसलिये निचले भाग में छाया का आनन्द लेने वाले सिद्ध लोग जब अधिक वर्षा से घबरा उठते हैं तब वे बादलों के ऊपर उठी हुई उन चोटियों पर रहते हैं जहाँ उस समय भी धूप बनी रहती है।

आमेखलं संचरतां घनानां छायामधःसानुगतां निषेव्य।
उद्वेजिता वृष्टिभिराश्रयन्ते शृङ्गाणि यस्यातपवन्ति सिद्धाः।।[७]

महाकवि कालिदास ने हिमालय का वर्णन करते हुए बताते हैं कि यहाँ के सिंह जब हाथियों को मारकर चले जाते हैं तब रक्त से लाल रंगे हुए उनके पञ्जों की पड़ी हुई छाप तो हिम की धारा से घुल जाती है पर सिहों के नखों से गिरी हुई गजमुक्ताओं को देखकर ही वहाँ के किरात जान लेते हैं कि सिंह किधर से होकर गए हैं।

पदं तुषारस्रुतिधौतरक्तं यस्मिन्नदृष्ट्वाऽपि हतद्विपानाम्।
विदन्ति मार्ग नखरन्ध्रमुक्तैर्मुक्ताफलैः केसरिणां किराताः।।[८]

हिमालय पर्वत पर उत्पन्न होने वाले जिन भोज-पदों पर लिखे हुए अक्षर हाथी की सूँड़ पर बनी हुई लाल बुँदकियों-जैसे दिखाई पडते हैं, उन्हें विद्याधारियाँ अपने प्रेम-पत्र लिखने के काम में लाया करती हैं।

न्यस्ताक्षरा धातुरसेन यत्र भूर्जत्वचः कुञ्जरबिन्दुशोणाः।
व्रजन्ति विद्याधरसुन्दरीणामनङ्गलेखक्रिययोपयोगम्।।[९]

इस पहाड़ पर ऐसे छेद वाले बाँस बहुतायत से होते हैं जो वायु भर जाने पर ऐसे बजने लगते हैं, मानो ऊँचे स्वर से गाने वाले किन्नरों के गीतों के साथ ये संगत कर रहे हों।[१०] यहाँ के हाथी जब अपनी कनपटी खुजलाने के लिये देवदारु के पेड़ों से माथा रगड़ते हैं तब उनसे ऐसा सुगन्धित दूध बह निकलता है और उनकी महक से इस पर्वत की सभी चोटियाँ एक साथ गमक उठती हैं।

कपोलकण्डूः करिभिर्विनेतुं विघट्टितानां सरलद्रुमाणाम्।
यत्र स्नुतक्षीरतया प्रसूतः सानूनि गन्धः सुरभीकरोति।।[११]

हिमालय की गुफाओं में रात को चमकने वाली जड़ी-बूटियाँ भी बहुत होती हैं। इसलिये यहाँ के किरात लोग जब अपनी-अपनी प्रियतमाओं के साथ उन गुफाओं में विहार करने आते हैं तब वे चमकीली जड़ी-बूटियाँ ही उनकी काम-क्रीडा के समय बिना तेल के दीपक बन जाती हैं।

वनेचराणां वनितासखानां दरोगृहोत्सङ्गनिषक्तभासः।
भवन्ति यत्रौषधयो रजन्यामतैलपूराः सुरतप्रदीपाः।।[१२]

हिमालय पर निवास करने वाले किन्नरों की स्त्रियाँ जब जमे हुए हिम के मार्गों पर चलने लगती हैं तब उनकी उँगलियाँ और एड़ियाँ ऐंठ जाती हैं पर वे करें क्या? अपने भारी नितम्बों और

स्तनों के बोझ के मारे वे बेचारी झपटकर चल नहीं पाती और चाहते हुए भी वे अपनी स्वाभाविक मन्द गति को छोड़ नहीं पाती।[१३] हिमालय की लम्बी गुफाओं में दिन में भी अँधेरा छाया रहता है मानो अँधेरा भी दिन से डरने वाले उल्लू के समान इसकी गहरी गुफाओं में दिन में जा छिपता है और हिमालय भी उसे अपनी गोद में शरण दे देता है; क्योंकि जो महान् होते हैं वे अपनी शरण में आए हुए नीच लोगों से भी वैसा ही अपनापन बनाए रहते हैं जैसा सज्जनों के साथ।

दिवाकराद्रक्षति यो गुहासु लीनं दिवाभीतमिवान्धकारम्।
क्षुद्रेऽपि नूनं शरणं प्रपन्ने ममत्वमुच्चैः शिरसां सतीव।।[१४]

जिन हरिणियों की पूँछों के चँवर बनते हैं वे चमरी हरिणियाँ जब यहाँ चन्द्रमा की किरणों के समान अपनी धौली पूँछे इधर-उधर घुमाती चलती है तब ऐसा प्रतीत होता है मानो वे इस पर्वतराज पर पूँछ के चँवर डुलाकर इसका गिरिराज नाम सच्चा किए डाल रही हों।[१५] जब हिमालय की गुफाओं में किन्नरियाँ अपने प्रियतमों के साथ काम-क्रीडा किया करती हैं। उस समय जब वे शरीर पर से वस्त्र हट जाने के कारण लजाने लगती हैं तब बादल उन गुफाओं के द्वारों पर आकर ओट करके अँधेरा कर देते हैं।

यत्रांऽशुकाक्षेपविलज्जितानां यदृच्छया किंपुरुषाङ्गनानाम्।
दरीगृहद्वारविलम्बिबिम्बास्तिरस्करिण्यो जलदा भवन्ति।।[१६]

गंगा के झरनों की फुहारों से लदा हुआ, बार-बार देवदारु के वृक्ष को कँपाता हुआ और किरातों की पेटी में बंधे हुए मोरपंखों को फरफराता हुआ, यहाँ का शीतल-मन्द-सुगन्ध पवन उन किरातों की थकान मिटाता चलता है जो मृगों की खोज में हिमालय पर इधर-उधर घूमते रहते हैं।

भागीरथीनिर्झरसीकराणां बोढा मुहुः कम्पितदेवदारुः।
यद्वायुरन्विष्टमृगैः किरातैरासेव्यते भिन्नशिखण्डिबर्हः।।[१७]

पर्वतराज हिमालय की ऊँची-ऊँची चोटियों पर स्थित तालाबों में मिलने वाले कमलों को जब स्वयं सप्तर्षिगण पूजा के लिये अपने सप्तर्षिमण्डल से आ-आकर तोड़ ले जाया करते हैं तब उनके चुनने से जो कमल बचे रहते हैं उन्हें नीचे उदय होने वाला सूर्य अपनी किरणें ऊँची करके खिला दिया करता है।

सप्तर्षिहस्तावचितावशेषाण्यधो विवस्वान्परिवर्तमानः।
पद्मानि यस्याऽग्रसरोरुहाणि प्रबोधयत्यूर्ध्वमुखैर्मयूर्खः।।[१८]

यज्ञ में काम आने वाली सामग्रियों को उत्पन्न करने के कारण और पृथ्वी को सँभाले रखने की शक्ति होने के कारण इस हिमालय को स्वयं ब्रह्मा ने उन पर्वतों का स्वामी बना दिया है जिन्हें यज्ञ में भाग पाने का अधिकार मिला हुआ है।

यज्ञाङ्गयोनित्वमवेक्ष्य यस्य सारं धरित्रीधरणक्षमं च।
प्रजापतिः कल्पितयज्ञभागं शैलाधिपत्यं स्वयमन्वतिष्ठत्।।[१९]

इस प्रकार महाकवि कालिदास ने हिमालय और उसके गुणों का अत्यन्त मार्मिक चित्रण किया है।

सन्दर्भ-सूची

१. कुमारसंभवम्, ५.३६
२. कुमारसंभवम्, ५.१९
३. कुमारसंभवम्, १.१
४. कुमारसंभवम्, १.२
५. कुमारसंभवम्, १.३
६. कुमारसंभवम्, १.४
७. कुमारसंभवम्, १.५
८. कुमारसंभवम्, १.६
९. कुमारसंभवम्, १.७
१०. कुमारसंभवम्, १.८
११. कुमारसंभवम्, १.९
१२. कुमारसंभवम्, १.१०
१३. कुमारसंभवम्, १.११
१४. कुमारसंभवम्, १.१२
१५. कुमारसंभवम्, १.१३
१६. कुमारसंभवम्, १.१४
१७. कुमारसंभवम्, १.१५
१८. कुमारसंभवम्, १.१६
१९. कुमारसंभवम्, १.१७

Shodh Navneet (International Peer-Reviewed Research Journal)
ISSN : 2321-6581, Vol. XXII, January - June 2024

जनपद फिरोजाबाद के विकास में कृषि की भूमिका : एक सूक्ष्म स्तरीय भौगोलिक अध्ययन

रूम सिंह*, प्रो. मौकम सिंह यादव*

भूमिका (Preface) : कृषि मानव के जीवनयापन एवं उसकी विकास यात्रा का महत्त्वपूर्ण साधन रही है। जिसमें प्राचीन पशुपालन, आखेट व वनोत्पादों के संग्रहण से लेकर आधुनिक तकनीक से की जाने वाली कृषि को शामिल किया जाता है।

कृषि आज भी न केवल भारत वरन् वैश्विक स्तर पर भी जनसंख्या के एक बड़े भाग की जीविका का आधार बनी हुई है। राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक (NABARD) के अनुसार वर्तमान में विश्व की लगभग ५० प्रतिशत जनसंख्या कृषि कार्यों में संलग्न है। विकसित देशों में यह प्रतिशत ५ से १० तथा विकासशील देशों में २५ से ८२ है। भारत की लगभग ५८ प्रतिशत जनसंख्या कृषि कर्म से अपनी आजीविका प्राप्त करती है। इस प्रकार कोई भी देश–प्रदेश या जनपद अपनी विकास प्रक्रिया में कृषि को नजर अन्दाज नहीं कर सकता है, फिर जनपद फिरोजाबाद तो गंगा–यमुना दो–आब के कृषि प्रधान भाग में स्थित है।

मुख्य शब्द (Keywords) : कृषि, प्रौद्योगिकी, विकास, जल एवं पर्यावरण प्रदूषण, रासायनिक उर्वरक, कीटनाशक, प्रमुख रोग, समस्या एवं समाधान आदि।

अध्ययन क्षेत्र का परिचय (Introduction to the Study Area) : जनपद फिरोजाबाद भारतीय राज्य उत्तर प्रदेश के पश्चिमी भाग में स्थित है। इसका कुल क्षेत्रफल २४०७ वर्ग किलोमीटर एवं कुल जनसंख्या २४९६७६१ (जनगणना २०११) है। जनपद का ज्यामितीय विस्तार २७°१५' उत्तरी अक्षांश से २७°९०' उत्तरी अक्षांश तक तथा ७८°१०' पूर्वी देशान्तर से ७८°९५' पूर्वी देशान्तर के बीच है। इसके उत्तर में जनपद एटा, पूर्व में मैनपुरी व इटावा, पश्चिम में आगरा तथा दक्षिण में यमुना नदी एवं राजस्थान का धौलपुर जनपद स्थित है।

विधि तंत्र (Methodology) : शोध पत्र को पूर्णता प्रदान करने हेतु प्राथमिक एवं द्वितीयक ऑकड़ों का संकलन किया गया है। प्राथमिक समंक क्षेत्र भ्रमण एवं साक्षात्कार के

* शोधार्थी एवं असि. प्रोफेसर, भूगोल विभाग, ए. के. (पी.जी.) कॉलेज, शिकोहाबाद, फिरोज़ाबाद (उ.प्र.)
* शोध–निर्देशक, भूगोल विभाग, ए.के. (पी.जी.) कॉलेज, शिकोहाबाद, फिरोज़ाबाद (उ.प्र.)

माध्यम से एवं द्वितीय समंकों हेतु जिला सांख्यिकीय पत्रिका (२०२३) एवं इंटरनेट का सहयोग लिया गया है।

उद्देश्य (Objectives) : उद्देश्य विहीन कोई भी कार्य पूर्णता को प्राप्त नहीं करता है। अतः प्रत्येक कार्य का कोई न कोई उद्देश्य अवश्य होता है। उसी प्रकार प्रस्तावित शोध पत्र का प्रमुख उद्देश्य जनपद फिरोजाबाद के विकास में कृषि की भूमिका का प्रतीकात्मक अध्ययन प्रस्तुत करना है। इसके अतिरिक्त शोध प्रपत्र के कुछ प्रमुख सह-उद्देश्य निम्नलिखित हैं-

१. शोधपत्र के भौगोलिक स्वरूप का विश्लेषणात्मक अध्ययन।

२. कृषि उत्पादकता का समीक्षात्मक ऑकलन प्रस्तुत करना।

३. कृषि नवाचारों के पर्यायवरणीय दुष्प्रभावों को उद्घाटित करना।

४. कृषि प्रणाली को और अधिक उपयोगी बनाने हेतु सुझाव प्रस्तुत करना।

५. कृषि खाद्य पदार्थों की घटती गुणवत्ता के प्रति कृषकों एवं अन्य उपभोक्ताओं का ध्यान आकर्षित करना।

परिभाषा (Defination) : हिन्दी के 'कृषि' शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा के 'कृष' धातु से हुई है। जिसका तात्पर्य 'जोतना या खीचना' होता है। इसी प्रकार कृषि के अंग्रेजी पर्याय "Agriculture" शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के दो शब्दों "Agre + Cultura" से हुई है। जिसमें Agre का अर्थ भूमि तथा Cultura का अर्थ देखभाल करना होता है। इस प्रकार अन्तः कृषि शब्द का संक्षेपित एकात्मक अर्थ भूमि को जोतकर फसल पैदा करना होता है।

लॉगमैन के आधुनिक अंग्रेजी शब्दकोश के अनुसार- ''कृषि फसलों के उत्पादन के लिये बड़े पैमानों पर खेती करने का विज्ञान या कला है।''

मैकार्टी के अनुसार- ''फसलों एवं पशुओं की सो-उद्देश्य देखरेख को कृषि की संज्ञा प्रदान की जाती है।''

इस प्रकार मैकार्टी एवं जिम्मरमैन सहित अनेक विद्वान् पशुपालन को भी कृषि के अन्तर्गत सम्मिलित करते हैं तथा कृषि (Agriculture) और खेती (Farming) को समानार्थी मानते हैं।

जनपद के विकास में कृषि का योगदान (Contribution of Agriculture in the Development of District) : जनपद फिरोजाबाद पश्चिमी उत्तर प्रदेश का एक कृषि प्रधान जिला है। जिसकी लगभग ६४ प्रतिशत जनसंख्या प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से अपनी आजीविका कृषि से प्राप्त करती है। यद्यपि फिरोजाबाद जनपद काँच उद्योग के लिये विश्व विख्यात है और फिरोजाबाद के मुख्य कर्मकारों का आधे से अधिक भाग भी निर्माण उद्योगों में लगा हुआ है। तथापि कृषि जनपद के मुख्य कर्मकारों के एक बड़े भाग को रोजगार प्रदान करती है। मुख्य कर्मकारों का २८.८५ प्रतिशत भाग कृषक है। जबकि १५.४३ प्रतिशत भाग कृषि श्रमिकों के रूप में

संलग्न है। इस प्रकार मुख्य कर्मकारों का ४४.२८ प्रतिशत भाग कृषि से सम्बन्धित है।

कुल मुख्य कर्मकारों में विभिन्न कर्मकारों का प्रतिशत वर्ष- २०११ जनपद फिरोजाबाद

कृषक २८.८५ प्रतिशत – कृषि श्रमिक १५.४३ प्रतिशत

पारिवारिक उद्योगों में लर्ग कर्मकार ७.१ प्रतिशत – अन्य कर्मकार ४८.६२ प्रतिशत

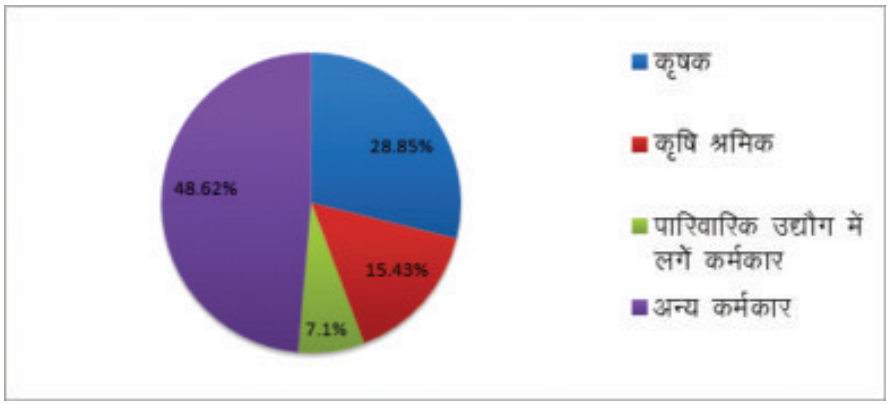

कुल मुख्य कर्मकार - ५७४२१९

इसके अतिरिक्त जनपद फिरोजाबाद के कुल ग्रामीण जनसंख्या १६२६७७३ (६५.१६ प्रतिशत) है। जो अपनी अतिरिक्त आय हेतु पशुपालन भी करती है। जो पूरी तरह से कृषि पर आश्रित है। वर्ष २०१८-१९ में पशुधन उत्पादन १५६३.८२ करोड रूपये का था। जो जनपद के सकल घरेलू उत्पाद, १७९२८.४९ करोड़ रूपये का ८.७३ प्रतिशत है। इसके साथ ही श्रमिकों के लिये उद्योग एवं छात्र/छात्राओं के लिये विद्यालय एवं महाविद्यालय कृषक परिवारों पर ही आश्रित है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि जनपद फिरोजाबाद के विकास में कृषि का महत्त्व निर्विवाद है।

कृषि में प्रयुक्त नवाचार (Innovation Used in Agriculture) : जनपद की आय में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने वाली कृषि की उत्पादकता बढ़ाने के लिये रासायनिक उर्वरक एवं कीटनाशक, नवीन कृषि यंत्र एवं आधुनिक सिंचाई के साधन जैसे नवाचारों का प्रयोग किया जा रहा है।

उर्वरक एवं कीटनाशक (Fertilizers and Pesticides) : सामान्यतः उर्वरक दो प्रकार के होते हैं - रासायनिक एवं जैविक उर्वरक, किन्तु जनपद फिरोजाबाद में कृषि उत्पादन बढ़ाने हेतु नाइट्रोजन, फॉस्फोरस एवं पोटाश जैसे रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग निरन्तर बढ़ता जा रहा है। जो निम्न तालिका से स्पष्ट है।

जनपद फिरोजाबाद में विभिन्न वर्षों में उर्वरकों का प्रयोग (मी. टन)

वर्ष	नाइट्रोजन	फॉस्फोरस	पोटाश	योग
२०१९–२०	७१६९४	२७७२८	३४८०	१०२९०२
२०२०–२१	७२४९४	२७९२८	३४८०	१०३९०२
२०२१–२२	४३७५०	१८४७०	५२१०	६७४३०

स्रोत : जिला साख्यिंकीय पत्रिका जनपद फिरोजाबाद– २०२३

विकास खण्ड स्तर पर प्रति हेक्टेयर सर्वाधिक रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग शिकोहाबाद विकासखण्ड में किया जाता है एवं उसके बाद टुण्डला का स्थान आता है।

कृषि यंत्र (Agricultural Machinery) : जनपद फिरोजाबाद की कृषि प्रणाली में परम्परागत कृषि यंत्रों, लकड़ी के हल, कुदाल, मड़ाई मशीन, ट्रैक्टर एवं उन्नत हैरो, कल्टीवेटर, उन्नत थ्रेसिंग मशीन, उन्नत बुवाई मशीन, स्प्रेयर आदि का प्रयोग किये जाने लगा है। पशु गणना २००७ के अनुसार जनपद में ९२६७ उन्नत हैरो व कल्टीवेटर तथा ३८८० उन्नत थ्रेसिंग मशीन चलन में थी।

सिंचाई के साधन (Means of Irrigation) : २०वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में वर्तमान जनपद फिरोजाबाद के तत्कालीन क्षेत्र में सिंचाई के प्रमुख साधन नहरें, नाले, रहट, डोल आदि थे। २०वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में यंत्र तंत्र राजकीय नलकूपों की स्थापना हुई और निजी स्तर पर डीजल पम्पसेट लगाये गये। परन्तु २१वीं सदी में समर सेविल के आगमन ने जनपद की सिंचाई व्यवस्था में क्रांति आयी। जो आलू, मक्का, गेहूँ, चावल आदि की कृषि के लिये रामबाण साबित हुई। इन सभी नवाचारों के प्रयोग के कारण जनपद के कृषि उत्पादन में आशातीत वृद्धि हुई।

फसल उत्पादन (जनपद फिरोजाबाद) करोड़ रूपये में (आधार वर्ष २०११–१२)

वर्ष	उत्पादन
२०१८–१९	१९९८.१३
२०१९–२०	२८१२.२०
२०२०–२१	३५२१.९४

स्रोतः भारत सरकार, प्रेस विज्ञप्ति ३१.०१.२०२२

समस्या (Problem) : निःसन्देह कृषि, जनपद फिरोजाबाद की आधारशिला है, परन्तु उर्वरकों एवं कीटनाशकों के अत्यधिक व असन्तुलित प्रयोग तथा अवैज्ञानिक कृषि प्रणाली व सिंचाई व्यवस्था के कारण कुछ समस्या उत्पन्न हुई है। जिनमें से प्रमुख समस्याएँ निम्नवत् है।

१. रासायनिक उर्वरकों एवं कीट व त्रणनाशकों के अत्यधिक प्रयोग से भूमिगत जल में आयरन, आर्सेनिक एवं फ्लोराइड की मात्रा बढ़ी है।

२. 'जल जीवन मिशन' के तहत हुई जाँच में फिरोजाबाद के २२ गाँवों का पानी पीने योग्य नहीं रह गया है। इन २२ गाँवों में कचमई, कटोरा, गदनपुर, यागमपुर, पनरई, कपावली, अरॉव खुर्द आदि प्रमुख है। जिनके भू-जल में फ्लोराइड का स्तर २.० से ५.३४ पी.पी.एम. तक पाया गया है। जबकि मानकानुसार यह स्तर १.५ पी.पी.एम. होना चाहिये।

३. जल स्तर के अति दोहन से भू जल स्तर तेजी से गिर रहा है। इसके चलते फिरोजाबाद, टुण्डला, नारखी, हाथवंत, अरॉव एवं शिकोहाबाद ब्लॉक को डार्क जोन में आ चुके हैं।

४. भू-समतलीकरण, रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशकों के अत्यधिक प्रयोग से जैव विविधता का पर्याप्त विनाश हुआ है।

५. कीटनाशकों के अंश के कारण बासमती चावल एवं अन्य खाद्य पदार्थों की गुणवत्ता प्रभावित हुई है।

६. कैंसर, मधुमेह, उच्च रक्तचाप एवं अवसाद आदि रोगों का एक प्रमुख कारण प्रदूषित जलवायु एवं खाद्य पदार्थ भी है।

निष्कर्ष एवं सुझाव (Conclusion and Suggestions) : प्रस्तुत शोध पत्र एक प्रतीकात्मक अध्ययन है। जिसमें उपर्युक्त समस्याओं के निराकरण हेतु कुछ सुझाव निम्नांकित हैं-

१. रासायनिक उर्वरकों के विकल्प के रूप में गोबर खाद, जैविक खाद एवं हरी खाद के प्रयोग को बढ़ावा देना।

२. रोग प्रतिरोधक एवं जैविक खादों के अनुरूप विभिन्न फसलों के बीजों को तैयार करना।

३. कृषि के अतिरिक्त खाली पड़ी भूमि पर वृक्षारोपण अभियान एवं सामाजिक वानिकी के तहत रोपे गये पौधों की सुरक्षा पर अधिक ध्यान देना।

४. किफायती जल प्रयोग एवं भूमिगत जल रिचार्ज हेतु तालाब आदि का निर्माण करना।

सन्दर्भ-सूची (References) :

- तिवारी, आर. सी., सिंह, बी. एन., कृषि भूगोल, प्रवालिका पब्लिकेशन, इलाहाबाद, २०१६
- कुरुक्षेत्र पत्रिका, जनवरी, २०२३
- योजना पत्रिका, अप्रैल, २०२३
- घटना चक्र आर्थिकी, २०२०-२१
- गौतम, डॉ. अलका, रस्तोगी, सोनल, संसाधन भूगोल, शारदा पुस्तक भवन, प्रयागराज, प्रथम संस्करण २०१९
- जिला सांख्यिकीय, पत्रिका २०२३, जनपद फिरोजाबाद।

Shodh Navneet (International Peer-Reviewed Research Journal)
ISSN : 2321-6581, Vol. XXII, January - June 2024

ग्रामीण क्षेत्र में अनुसूचित जाति की महिलाओं के समक्ष शैक्षणिक चुनौतियाँ एवं बदलता परिदृश्य

डॉ. सुमित्रा शर्मा*

सार संक्षेप– प्राचीनकाल से ही भारतीय समाज मेंअनुसूचित जाति की महिलायें जाति तथा लैंगिक आधार पर उपेक्षित होती रही हैं। वर्तमान में इस भेद के साथ वर्ग की अवधारणा भी जुड़ गई है। अतः अब अनुसूचित जाति की महिलायें जाति तथा लिंग के साथ वर्ग के आधार पर भी भेदभाव को सहन करने को बाध्य हैं। ऐसे में प्रश्न उठता है कि क्या अनुसूचित जाति की महिलायें समाज में एक पृथक् श्रेणी हैं? वर्तमान में अनुसूचित जाति की महिलाओं के समक्ष कौन–कौन की चुनौतियाँ हैं, व उनका समाधान क्या हो सकता है? किसी भी देश की महिलायें उस देश की आधी आबादी का निर्माण करती हैं जो देश के विकास में अपना योगदान प्रदान कर सकती है, यदि उसे भी समान भागीदारिता का अवसर मिले ? अनुसूचित जाति की महिलायें आबादी के इस आधे भाग का बड़ा हिस्सा हैं, जो अभी तक भी पिछड़ा हुआ है। ऐसी स्थिति में देश विकास व समृद्धि के प्रतिमानों को कहाँ तक प्राप्त कर पायेगा, यह एक बड़ी चुनौती है। भारतीय समाज समानता के लक्ष्य को कहाँ तक प्राप्त कर पाया है? विशिष्ट रूप से अनुसूचित जाति की महिलाओं के संदर्भ में। शिक्षा समाज में सामाजिक गतिशीलता एवं परिवर्तन लाने का सबसे सशक्त साधन है। शिक्षा के द्वारा ही समाज में जागरूकता, समानता, एवं न्याय व्यवस्था को स्थापित किया जा सकता है एवं समाज तथा समूह के पिछड़ेपन को दूर किया जा सकता है। विशिष्ट रूप से महिलाओं की शिक्षा द्वारा। प्रस्तुत प्रपत्र में आनुभाविक अध्ययन के आधार पर राजस्थान में ग्रामीण क्षेत्र में रहने वाली अनुसूचित जाति की महिलाओं की शिक्षा के विभिन्न आयामों, चुनौतियों एवं बदलते परिदृश्यों पर चर्चा की गई है।

मुख्य शब्द – शिक्षा, सामाजिक संस्तरण, सामाजिक गतिशीलता, गैर बराबरी, समानता।

प्रस्तावना– भारतीय सामाजिक पद सोपान व्यवस्था में अनुसूचित जाति की महिलायें प्राचीनकाल से ही निम्नतर स्तर पर रहीं है। भारत में असमानता के प्रमुख आधारों में जाति, वर्ग व लिंग महत्त्वपूर्ण आधार हैं। अनुसूचित जाति की महिलायें इन तीनों आधारों के कारण असमानता व उपेक्षा झेलने को मजबूर होती हैं। परम्परागत समाज व्यवस्था ही नहीं वरन् वर्तमान आधुनिक वैश्वीकृत समाज में हम इस समानता के लक्ष्य को कहाँ तक प्राप्त कर पाये हैं। यह मात्र एक प्रश्न

* सहायक आचार्य, समाजशास्त्र विभाग, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर, राजस्थान

बनकर ही रह गया है।

स्वतत्रंता प्राप्ति के पश्चात् से ही संविधान द्वारा अनुसूचित जाति की सामाजिक आर्थिक स्थिति को उच्च करने के लिए संवैधानिक प्रावधान किये गये। यद्यपि इन संवैधानिक प्रावधानों का लाभ लेकर इन अनुसूचित जातियों की स्थिति में परिवर्तन आना प्रारम्भ हो गया था, लेकिन उस समय इन जातियों में आने वाले परिवर्तन की गति बहुत धीमी थी। परिवर्तन की इस धीमी गति का कारण था संचार के साधनों की कमी व इस अनुसूचित जाति के लोगों में अशिक्षा का होना। अशिक्षा से इस जाति में जागरूकता का अभाव था जिसके कारण संवैधानिक प्रावधानों की जानकारी सीमित लोगों को ही थी। हालांकि संवैधानिक प्रावधानों की जानकारी का आम आदमी में आज भी अभाव है, जिससे इन प्रावधानों का लाभ कुछ ही लोग उठा पाते हैं। इन संवैधानिक प्रावधानों का लाभ उठाने में असमानता होने के कारण अनुसूचित जाति में ही वर्ग निर्मित होने लगे। अनुसूचित जाति के वे समूह जिन्होंने इन संवैधानिक प्रावधानों का लाभ उठाया। उन्होंने अपनी शिक्षा, आय, व्यवसाय, जीवन स्तर, जीवन शैली आदि में बदलाव लाकर समाज में अपनी सामाजिक प्रस्थिति अपने समूह में उच्च कर ली इससें अनुसूचित जाति में वर्ग का निर्माण प्रारम्भ हो गया। इन्हीं अनुसूचित जातियों के उच्च वर्गों की महिलायें शिक्षा व व्यवसाय में आगे बढ़ने लगीं। अनुसूचित जाति के उच्च वर्ग की महिलाओं में परिवर्तन तीव्रगति से आने लगा, लेकिन अनुसूचित जाति की निम्नवर्ग की महिलाओं की स्थिति पूर्ववत् अर्थात् निम्न ही रही।

साहित्य समीक्षा– भारतीय संविधान द्वारा समानता के लक्ष्य को निर्धारित कर उस निर्धारित लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए कई संवैधानिक प्रावधान किए गए। विशिष्ट रूप से संविधान के अनुच्छेद १४, १५ १६, १७, ४६, ३३० तथा ३३२ द्वारा केन्द्र सरकार व राज्य सरकार द्वारा कमजोर वर्गों के उत्थान व उन्हें अन्य उच्च व मध्यम वर्ग के समान स्तर पर लाने के लिए योजनायें बनाई गई व उन्हें लागू भी किया गया। संवैधानिक प्रावधानों व सरकारी योजनाओं का प्रमुख उद्देश्य समाज में जाति, लिंग, वर्ग व धर्म के आधार पर किये जाने वाले भेद को समाप्त कर समतावादी समाज का विकास व उत्थान करना रहा है। इन्हीं सरकारी योजनाओं के परिणामों व प्रभावों के कारण अनुसूचित जाति की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक व शैक्षणिक प्रस्थिति में परिवर्तन आ रहा है। अनुसूचित जाति की महिलायें जो समाज में कई प्रकार की उपेक्षाएँ, वंचनाएँ, प्रताड़नाएँ सहती थीं, वर्तमान में उनकी सामाजिक एवं आर्थिक प्रस्थिति में परिवर्तन स्पष्टतः देखा जा सकता है।

अनुसूचित जाति की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं शैक्षणिक प्रस्थिति पर विभिन्न अध्ययन हुए हैं जिनके माध्यम से विद्वानों ने देश के विभिन्न क्षेत्रों में अनुसूचित जाति के समक्ष विद्यमान विभिन्न समस्याओं के बारे में आनुभाविक अध्ययनों के द्वारा न केवल विश्लेषण किया वरन् समस्याओं के समाधान पर भी प्रकाश डाला। अनुसूचित जाति पर की गई वैचारिक समीक्षायें इस प्रकार है–

के. एल. शर्मा (१९७४) ने राजस्थान के छः गाँवों का तुलनात्मक अध्ययन किया है व बताया कि अनुसूचित जातियों में सामाजिक गतिशीलता के दो प्रतिमान देखने को मिलते हैं (१) कल्याणकारी योजनाओं से अनुसूचित जाति के कुछ भागों में गतिशीलता आई है जिसके परिणाम स्वरूप अनुसूचित जातियों के मध्य सामाजिक व आर्थिक असमानता पनपी तथा (२) अनुसूचित जातियों में सामाजिक गतिशीलता प्रत्यक्ष रूप से अपनी निम्न स्थिति के प्रति जागरूकता व उच्च जातियों के व्यवहार के विरुद्ध सामाजिक-सांस्कृतिक आन्दोलन व प्रतिरोध का परिणाम है जिसके परिणाम स्वरूप एक जाति का दूसरी जाति के प्रति शत्रुभाव बढ़ गया।

मुमताज अली खान (१९८०) का मत है कि अनुसूचित जाति की महिलायें आरामदायक जीवन जीने के लिये आवश्यक मूलभूत सुख सुविधायें भी अभी तक प्राप्त नहीं कर पायी है। खान ने कर्नाटक में अनुसूचित जाति की महिलाओं के जीवन में आने वाले परिवर्तनों का अध्ययन किया। उनका मत है अनुसूचित जाति में साक्षरता व उच्च शिक्षा में पुरुषों का प्रतिशत महिलाओं की अपेक्षा अधिक है। उनमें शिक्षा के प्रति जागरूकता बढ़ रही है।

शोवेब एम. (१९८६) ने अनुसूचित जाति में शैक्षणिक स्तर का अध्ययन किया व पाया कि इनमें निरक्षर सदस्यों की संख्या बहुत अधिक है। उनका मत है कि अनुसूचित जाति में शैक्षणिक स्तर कम होने का कारण उनकी आर्थिक पृष्ठभूमि का निम्न होना हो सकता है। उन्होंने तुलनात्मक अध्ययन द्वारा पाया कि दलित जाति में युवा पीढ़ी औपचारिक शिक्षा के प्रति अधिक प्रवृत्त हुई है। शिक्षित पीढ़ी परम्पराओं से दूरी रखती है। शिक्षा, आधुनिक व्यवसाय और सरकारी योजनायें अनुसूचित जाति समुदाय के जीवन जीने के तरीकों व उनके सामाजिक-सांस्कृतिक व्यवहार को परिवर्तित करने में योगदान दे रहे हैं।

विश्वनाथ लीला (१९९३) का मत है कि अनुसूचित जाति की महिलायें दोहरे शोषण को झेलने को मजबूर हैं। वे जाति व वर्गीय आधार पर उपेक्षित होती हैं। उन्होंने सामाजिक गतिशीलता के कारकों में शिक्षा को महत्त्वपूर्ण माना व पीढ़ियों में शैक्षणिक गतिशीलता व शिक्षा के स्तर में वृद्धि को पाया।

ट्रोड पिल्लई वैटच्छेरा (२०१०) पिल्लई ने अपने अध्ययन में पाया कि दलित महिलायें पुरुषों की अपेक्षा अधिक कार्य करती हैं फिर भी उन्हें पुरुषों की तुलना में कम वेतन प्राप्त होता है। सामान्यतः महर महिलाएं, परम्परा से बंधी उच्च हिन्दू जाति की महिलाओं की अपेक्षा स्वतंत्र होती हैं। संस्कृतीकरण की प्रक्रिया के माध्यम से आज दलित अपनी सांस्कृतिक विश्व दृष्टि खो रहे हैं। वे उच्च जाति हिन्दू विश्व दृष्टि द्वारा प्रभावित हो रहे हैं। शिक्षित दलित उच्च जातीय हिन्दू संस्कारों को अपना रहे हैं। उच्च जातियों के सांस्कृतिक मूल्यों ने दलित महिलाओं के जीवन को प्रभावित किया है, जिससे दलित महिलाओं की स्वतंत्रता प्रभावित हुई है उन पर प्रतिबंध लगाये जा रहे हैं। अस्पृश्यता की चर्चा करते हुए पिल्लई कहते हैं कि दलित जाति की वयोवृद्ध महिलायें ही परम्परागत प्रतिबंधों को मानती हैं। युवा महिलायें इन प्रतिबंधों को नहीं मानती व इनके विरुद्ध

आवाज भी उठाती हैं। संस्कृतीकरण के प्रभाव के कारण दलितों में अब विलिंग सहोदरज विवाह प्रतिबंधित कर दिया गया वहीं विवाह में वधू मूल्य के स्थान पर दहेज प्रथा का प्रचलन हो गया।

सुरिन्दर खन्ना (२०११) का मत है कि गाँवों व कस्बों में प्रभु जाति जातीय व लैंगिक कारकों पर अपना प्रभाव रखते हैं, जिसके परिणामस्वरूप दलित महिलाएं स्वयं को अशक्त महसूस करती हैं व शोषित होती हैं। खन्ना का मत है कि जमीन व अन्य आर्थिक संसाधनों पर अधिकार नहीं होने के कारण भी दलित महिलाओं की स्थिति कमजोर है। समाज में जाति, वर्ग व लैंगिक आधारों पर उनके मानवाधिकारों का उल्लंधन किया जाता है। निम्न शैक्षणिक स्तर व निम्न आर्थिक स्तर के कारण वे इन मानवाधिकारों के उल्लंघन को चुपचाप सहन करने को बाध्य होती हैं।

नरेन्द्र पाल सिंह (२०१७) का मत है कि स्वतंत्रता के पश्चात् और उदारवाद के बाद के दौर में अनुसूचित जाति की महिलाएं, उनका सशक्तिकरण और विकास सामाजिक अनुसंधान में महत्त्वपूर्ण हैं। ऐसा इसलिए है क्योंकि भारत में ५० प्रतिशत मानव आबादी महिलाओं की है और उनमें से अधिकांश के साथ घर और बाहर भेदभाव और तिरस्कारपूर्ण व्यवहार किया जाता है। अनुसूचित जाति की महिलाओं की स्थिति अभी भी अधिक निराशाजनक है और विकासात्मक और कल्याणकारी योजनाओं का लाभ अभी अनुसूचित जाति की सभी महिलाओं तक नहीं पहुँच पाया है। सिंह ने अनुसूचित जाति की महिलाओं से संबंधित प्रमुख सरकारी कल्याणकारी नीतियों और उनके कार्यान्वयन और परिचालन स्थिति पर चिन्ता व्यक्त की है व उन्होंने पाया कि विकासात्मक नीतियों के कारण हुए परिवर्तनों के परिणाम स्वरूप अनुसूचित जाति की महिलाओं की स्थिति में कुछ विशिष्ट प्रकार के संकट और विरोधाभास पैदा हुए।

यश्विन एवं प्रदीप (२०२३) ने अपने अध्ययन में पाया कि २१वीं सदी की शुरुआत में, भारत में ग्रामीण अनुसूचित जाति की महिलाओं की स्थिति में सकारात्मक बदलाव और चुनौतियाँ दोनों देखी गईं। शिक्षा तक उनकी पहुँच में सुधार के प्रयास किए गए हैं, जिससे नामांकन दर में वृद्धि हुई है। सर्व शिक्षा अभियान और शिक्षा का अधिकार अधिनियम जैसी सरकारी पहलों ने इस प्रगति में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। हालाँकि, इन सुधारों के बावजूद, अनुसूचित जाति की लड़कियों के स्कूल छोड़ने की दर ग्रामीण क्षेत्रों में चिंता का विषय बनी हुई है। रोजगार और आजीविका के संदर्भ में, अनुसूचित जाति की महिलाओं को अक्सर सीमित अवसरों और कम वेतन का सामना करना पड़ता है, मुख्य रूप से कृषि श्रम में संलग्न होने के कारण जहाँ भेदभाव और शोषण जारी रहता है। बहरहाल, ग्रामीण अनुसूचित जाति की महिलाओं द्वारा सामना किए जाने वाले जटिल मुद्दों, जैसे गरीबी, सामाजिक भेदभाव और लिंग आधारित हिंसा को संबोधित करने के लिए २१वीं सदी में उनके लिए समान अवसर और सम्मानजनक जीवन सुनिश्चित करने के लिए निरंतर प्रयासों की आवश्यकता है।

अध्ययन के उद्देश्य एवं शोध पद्धति– संवैधानिक प्रावधानों एवं सरकारी योजनाओं के कारण देश में अनुसूचित जाति की महिलाओं की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, शैक्षणिक

प्रस्थिति में परिवर्तन आ रहा है, लेकिन यह परिवर्तन ग्रामीण व नगरीय क्षेत्रों में समान रूप से आ रहा हो ऐसा नहीं है। प्रस्तुत अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य हैं–

१. ग्रामीण क्षेत्र में अनुसूचित जाति की महिलाओं के समक्ष शिक्षा से संबंधित चुनौतियों का अध्ययन करना।

२. अनुसूचित जाति की महिलाओं को शिक्षा के लिये प्रेरित करने वाले कारकों का अध्ययन करना।

३. अनुसूचित जाति की महिलाओं की अगली पीढ़ी की शिक्षा के संदर्भ में बदलती वैचारिकी का अध्ययन करना।

प्रस्तुत अध्ययन में राजस्थान राज्य के जयपुर जिले के ढोढसर गाँव की अनुसूचित जाति की शैक्षणिक प्रस्थिति, चुनौतियों एवं बदलते परिदृश्यों का क्षेत्रीय अध्ययन पद्धति द्वारा आनुभाविक अध्ययन किया गया है। अध्ययन के लिये अनुसूचित जाति की कुल ८४५ महिलाओं में से ५० महिलाओं का चयन स्तरीकृत निदर्शन पद्धति द्वारा किया गया। साक्षात्कार अनुसूचि के द्वारा आँकड़े एकत्रित करके अध्ययन किया गया है।

जनसंख्यात्मक रूपरेखा– राजस्थान के सभी ३३ जिलों में अनुसूचित जातियाँ निवास करती हैं। भारत में अनुसूचित जातियों की संख्या लगभग ४५० है। इनमें से ४५ सूचीबद्ध नहीं है। राजस्थान में निवास करने वाली अनुसूचित जातियों में कुल ५९ जातियाँ हैं।

२०११ की जनगणना के अनुसार भारत की कुल जन संख्या १,२१०,८५४,९७७ (१२१ करोड़ है)। अनुसूचित जाति की जनसंख्या २०.१४ करोड़ है, जो कि देश की कुल जनसंख्या का १६.६ प्रतिशत है। अनुसूचित जाति की कुल जनसंख्या का १८.५ प्रतिशत जनसंख्या देश के ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है, वहीं १२.६ प्रतिशत जनसंख्या नगरीय क्षेत्रों में। भारत में जहाँ लैंगिक अनुपात ९४०:१००० है वहीं अनुसूचित जाति में स्त्री पुरुष अनुपात ९४६:१००० है। देश की कुल अनुसूचित जाति की जनसंख्या के अनुपात के आधार पर अनुसूचित जाति की सर्वाधिक जनसंख्या उत्तर प्रदेश राज्य में है। क्षेत्रफल के आधार पर राजस्थान देश का सबसे बड़ा राज्य है।

सन् २०११ की जनगणना के अनुसार राजस्थान की कुल जनसंख्या ६,८५,४८,४३७ है, राजस्थान में अनुसूचित जाति की कुल जनसंख्या १,२२,२१,५९३ है जो कि कुल जनसंख्या का १७.८ प्रतिशत है। अनुसूचित जाति में पुरुषों की जनसंख्या ६३.६६ लाख है, जो कि १७.९ प्रतिशत है व महिला जनसंख्या ५८.७६ लाख है, जो १७.८ प्रतिशत का निर्माण करती है। राजस्थान में अनुसूचित जाति की कुल जनसंख्या का १८.५ प्रतिशत ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करता है व १५.७ प्रतिशत नगरीय क्षेत्रों में। अनुसूचित जाति में कुल साक्षरता दर ५९.८ प्रतिशत है। इसमें पुरुष साक्षरता की दर ७३.८ व महिला साक्षरता की दर ४४.६३ है। राजस्थान में लैंगिक अनुपात ९२८:१००० है, वहीं राज्य में अनुसूचित जाति में लैंगिक अनुपात ९२३:१००० है। राज्य की कुल

जनसंख्या के अनुपात के आधार पर अनुसूचित जाति की सर्वाधिक जनसंख्या जयपुर जिले में निवास करती है जिसका प्रतिशत ८.२ है व सबसे कम जनसंख्या राजसमंद जिले में निवास करती है जो प्रतिशत ०.५ है। जिले की कुल जनसंख्या के अनुपात के आधार पर अनुसूचित जाति की सर्वाधिक जनसंख्या गंगानगर जिले में ३६.५८ प्रतिशत व सबसे कम डूँगरपुर जिले में ३.७६ प्रतिशत है।

शोध क्षेत्र परिदृश्य-ढोढसर गाँव राजस्थान राज्य के जयपुर जिले की चोमू तहसील का एक बड़ा व समृद्ध गाँव है, जो राष्ट्रीय राजमार्ग ११ पर स्थित है व इसकी पंचायत समिति गोविन्दगढ़ है। यह गोविन्दगढ़ से ८ किमी. व जयपुर शहर से ५४ किमी. दूरी पर स्थित है। गाँव का कुल भौगोलिक क्षेत्र ७७४.८४ हेक्टेयर है। २०११ की जनगणना के अनुसार गाँव की कुल जनसंख्या ४,९२७ है। गाँव में अनुसूचित जाति की जनसंख्या १,७५६ है इसमें पुरुष जनसंख्या ९११ व महिला जनसंख्या ८४५ है। गाँव में अनुसूचित जाति के ३५० घर हैं, अनुसूचित जाति समूह में रैगर, बलाई, खटीक, बावरिया धोबी व हरिजन जाति यहाँ निवास करती है। अनुसूचित जातियों में गोत्र के आधार पर विभाजन है। रैगर जाति में नंगलिया, सिंगाड़िया, जाटोलिया, परसोया, सबलानियाँ गोत्र है, बलाई जाति में डूमोलिया, कटारिया, मोखरिया, देवठिया, पंवार, खरकड़िया, भांवरिया, बबेरवाल गोत्र है व खटीक जाति में बागोरिया गोत्र है।

गाँव में अनुसूचित जाति समूह का डॉ. भीमराव अम्बेडकर सामाजिक उत्थान संस्थान संगठन स्थापित है, जो कॉपरेटिव सोसायटी एक्ट, २०१४ द्वारा स्थापित किया गया है। यह संगठन गाँव के अनुसूचित जातिसमूह के लोगों के हितों की सुरक्षा, विकास, व जागरूकता के लिये कार्य करता है। अनुसूचित जाति का सरकारी सेवाओं में प्रतिनिधित्व भी अच्छा है, अनुसूचित जाति के कुल ९० लोग सरकारी सेवा में हैं, इनमें सर्वाधिक रैगर जाति के लोग हैं। इसके पश्चात् बलाई (बुनकर) व बाद में खटीक जाति का स्थान आता है। हरिजन व बावरिया जाति के लोग राजकीय सेवाओं में नहीं हैं। गाँव में महिलाओं की स्थिति सामाजिक, शैक्षणिक दृष्टि से अच्छी है। यहाँ महिलाओं में शिक्षा के प्रति जागरूकता देखने को मिली। गाँव की महिलायें व लड़कियाँ उच्च शिक्षा व भविष्य में अपने रोजगार को लेकर जागरूक हैं, लेकिन यह स्थिति अनुसूचित जाति समूह की रैगर, बलाई व खटीक जाति में ही है। बावरिया जाति में एक भी महिला शिक्षित नहीं है। हरिजन जाति में लड़कियाँ शिक्षित तो है, लेकिन उच्च शिक्षित नहीं हैं। इसका प्रमुख कारण समाज का भेदभाव पूर्वक रवैया है।

शिक्षा संबंधी विशेष योजनाएँ-शिक्षा ही वह आधार है जो व्यक्ति को स्वयं के सम्बंध में व समाज के संदर्भ में जागरूक करता है, अधिकारों का ज्ञान कराता है, उचित-अनुचित को बताता है। अतः अनुसूचित जातियों में शैक्षणिक स्तर को उच्च करने, उनमें शिक्षा के प्रति जागरूकता उत्पन्न करने के लिए सरकार द्वारा अनेक योजनायें चलायी जा रही हैं। अनेक प्रकार की छात्रवृत्तियों का प्रावधान किया गया है-

१. पूर्व मैट्रिक छात्रवृत्ति- (i) अनुसूचित जाति के विद्यार्थियों के लिये पूर्व मैट्रिक छात्रवृत्ति (ii) दूषित व्यवसायों में लगे व्यक्तियों के बच्चों के लिये पूर्व मैट्रिक छात्रवृत्ति।

२. उत्तर मैट्रिक छात्रवृत्ति- अनुसूचित जाति के विद्यार्थियों के लिये।

३. उच्च शिक्षा प्राप्त करने एवं प्रशिक्षण (Coaching) के लिये छात्रवृत्ति।

(i) अनुसूचितजाति के विद्यार्थियों के लिये सर्वोच्च श्रेणी की शिक्षा (IITs, IIMs, NITs)

(ii) राष्ट्रीय अनुदान- एम.फिल्., पीएच.डी और समकक्ष शोध के लिये राजीव गाँधी राष्ट्रीय फैलोशिप, अनुसूचित जाति/जनजाति के उम्मीदवारों के लिये यूजीसी पोस्ट डॉक्टोरल फैलोशिप।

(iii) अनुसूचित जाति के विद्यार्थियों के लिये राष्ट्रीय विदेशी छात्रवृत्ति।

(iv) अनुसूचित जाति के विद्यार्थियों के लिये छात्रावास योजना।

(v) अनुसूचित जाति के विद्यार्थियों के लिये पुस्तक अधिकोष।

४. डॉ. अम्बेडकर राष्ट्रीय योग्यता छात्रवृत्ति।

अनुसूचित जाति की महिलायें एवं शैक्षणिक चुनौतियाँ- शैक्षणिक गतिशीलता के आधार पर गतिशीलता के अन्य आयामों को प्राप्त किया जा सकता है। अनुसूचित जाति में शिक्षा के प्रति जागरूकता लाने के लिये सरकार द्वारा कई प्रकार की योजनायें चलाई जा रही है। इन योजनाओं का उद्देश्य अनुसूचित जाति में शैक्षणिक गतिशीलता को बढावा देना है।

प्रस्तुत अध्ययन में उत्तरदाताओं को शैक्षणिक स्तर के आधार पर तीन स्तरों में विभाजित किया है- (१) निरक्षर (२) साक्षर (३) औपचारिक रूप से शिक्षित। जिसके अन्तर्गत प्राथमिक, माध्यमिक, सीनियर सेकेण्डरी, स्नातक, स्नातकोत्तर व अन्य व्यवसायिक, तकनीकी शिक्षा को सम्मिलित किया गया है। ढोढसर गाँव में कुल ५० महिला उत्तरदाताओं में से ३ महिला उत्तरदाता निरक्षर हैं तथा ६ महिला उत्तरदाता मात्र साक्षर, वहीं ४१ महिला उत्तरदाता औपचारिक रूप से शिक्षित हैं। इन कुल उत्तरदाताओं में से १८ प्रतिशत एवं १० प्रतिशत महिला उत्तरदाता क्रमशः प्राथमिक स्तर एवं उच्च प्राथमिक स्तर ८ प्रतिशत माध्यमिक स्तर १० प्रतिशत सीनियर सेकेण्डरी एवं २० प्रतिशत स्नातक स्तर तक तथा १६ प्रतिशत स्नातकोत्तर एवं अन्य व्यवसायिक/तकनीकी शिक्षा प्राप्त की है। इन ४१ महिला उत्तरदाताओं में से ६८.२९ महिला उत्तरदाता वे हैं जो किसी कारण वश अपनी शिक्षा पूर्ण नहीं करपाई उन्हें शिक्षा बीच में ही छोड़नी पड़ी, लेकिन अवसर मिलने पर वे अपनी शिक्षा पूर्ण करना चाहती है, वहीं ३१.७१ प्रतिशत उत्तरदाता शिक्षा जारी रखने की इच्छुक नहीं है; क्योंकि वे अब पारिवारिक, एवं व्यवसायिक जिम्मेदारियों के निर्वहन में व्यस्त हैं।

अनुसूचित जाति की महिलाओं के लिए शिक्षा प्राप्ति का मार्ग सुगम नहीं है, यही कारण है कि इस जाति की महिलाओं में शिक्षा बीच में ही छोड़ देने की दर भी सवर्ण जातियों की तुलना में अधिक है। शिक्षा से वंचित करने वाले कारकों में कई प्रकार के कारक हैं, जो निम्न सारणी संख्या

०१ में दर्शाई गयी है।

क्र.स.	शिक्षा प्राप्त करने से वंचित करने वाले कारक	उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत
१.	पारिवारिकजिम्मेदारी	१६	३९.०२
२.	विवाह के पश्चात् जिम्मेदारी	१६	३९.०२
३.	कमजोर आर्थिक स्थिति	११	२६.८३
४.	स्वयं की रुचि नहीं	०४	९.७५
५.	व्यावसायिक जिम्मेदारी	०२	४.८७
६.	भेदभाव/अस्पृश्यता	०५	१२.२०
७.	सामाजिक कारक	१०	२४.३९
	कुल	४१	

सारणी संख्या ०१

अनुसूचित जाति की महिलाओं का मत है कि उन्हें शिक्षा से वंचित करने वाले कारकों में पारिवारिक जिम्मेदारी जिसमें छोटे भाई-बहनों की देखभाल एवं घर का कामकाज मुख्य है, विवाह के पश्चात् पारिवारिक एवं सामाजिक जिम्मेदारी व परिवार की कमजोर आर्थिक स्थिति को महत्त्वपूर्ण कारक माना है। उनका मत है कि ये सभी पारस्परिक कारक हैं जिनमें अंतर्निभरता है। कमजोर आर्थिक स्थिति के कारण शीघ्र विवाह कर दिया जाता है तथा इसी कारण पारिवारिक जिम्मेदारियाँ उन पर आने से वे शिक्षा से वंचित हो जाती हैं। १२.२० प्रतिशत महिलाओं ने समाज में अनुसूचित जाति के प्रति किये जाने वाले भेदभावपूर्ण व्यवहार तथा अस्पृश्यता को शिक्षा में बाधक माना है विशिष्ट रूप से हरिजन, बावरिया एवं नट जाति की महिलाओं ने। २४.३९ प्रतिशत महिलाओं ने सामाजिक कारक को शिक्षा से वंचित करने का कारक माना, क्योंकि उनका मत है कि उनके समाज में लड़कियों को अधिक नहीं पढ़ाया जाता, वहीं पितृसत्तात्मक समाज के कारण लैंगिक भेदभाव व्याप्त है। कमजोर आर्थिक स्थिति के कारण शिक्षा का अवसर लड़कों को प्रदान किया गया व उन्हें घर-परिवार की जिम्मेदारियाँ दे दी गई साथ ही परिवार के परम्परागत कार्यों में संलग्न कर दिया गया। हरिजन, बावरिया व नटजाति की महिलाओं ने सामाजिक कारकों को शिक्षा से वंचित करने के प्रमुख कारक माना, वहीं खटीक व मेघवाल जाति की महिलाओं ने समाज में लैंगिक आधार पर किये जाने वाले भेदभाव को तो स्वीकार किया, लेकिन शिक्षा के अवसर के संदर्भ में नहीं। अतः अनुसूचित जाति की महिलाओं के समक्ष शिक्षा के अवसर तो है, लेकिन कई ऐसे कारक व परिस्थितियाँ उत्पन्न हो जाती है जिसके कारण उनकी शिक्षा में व्यवधान आ जाता है एवं उन्हें शिक्षा बीच में ही छोड़ देने को बाध्य होना पड़ता है।

बावरिया जाति के खानाबदोश जाति होने से शिक्षा के प्रति इनमें जागरूकता नहीं देखी गयी।

हरिजन जाति की महिलाओं का शैक्षणिक स्तर निम्न होने का प्रमुख कारण समाज में अभी भी उन्हें अस्पृश्य माना जाना व निम्न आर्थिक स्थिति का होना है। हालाँकि उच्च जातियों द्वारा अस्पृश्यता के व्यवहार में कमी अवश्य आ रही है, लेकिन पूर्णतः समाप्त अभी भी नहीं हुई। अनुसूचित जाति की महिलाओं के समक्ष शिक्षा के संदर्भ में उपस्थित चुनौतीयों का सामना निम्नवर्ग की महिलाओं को करना होता है वहीं दूसरी ओर मध्यम व उच्च वर्ग की महिलाओं के समक्ष ये चुनौतियाँ नही रहती। इसका कारण प्रथम तो आर्थिक कारक, द्वितीय पारिवारिक सदस्यों का शिक्षित होना तथा तृतीय सामाजिक प्रस्थिति का उच्च होना प्रमुख है। अतः शिक्षा के प्रति अनुसूचित जाति की महिलाओं के समक्ष वंचना समान नही है।

शिक्षा का बदलता परिदृश्य– अध्ययन क्षेत्र ढोढसर गाँव में अनुसूचित जाति की महिलाओं में शिक्षा के प्रति रुचि को देखा गया। यही कारण है कि इस गाँव में अनुसूचित जाति की महिलाओं में उच्च शिक्षित महिलाओं की संख्या १८ है, जिन्होंने स्नातक, स्नातकोत्तर एवं तकनीकी स्तर तक की शिक्षा प्राप्त कर रखी है। महिलायें शिक्षा को परिवर्तन एवं सशक्तिकरण का सबसे महत्त्वपूर्ण साधन मानती है। शिक्षा के लिये प्रेरित करने वाले कारकों के संदर्भ में बहु–विकल्पों को चुनते हुए इन १८ महिला उत्तरदाताओं में से ८८.८८ प्रतिशत महिला उत्तरदाताओं का मानना है कि शिक्षा से व्यक्ति में आत्मनिर्भरता को बढावा मिलता है एवं वे आत्मनिर्भर होना चाहती है। ७२.२२ प्रतिशत का मत है कि शिक्षा से व्यक्ति में अच्छे–बुरे की समझ बढती है एवं आत्म विश्वास जागृत होता है एवं बढ़ता है साथ ही उत्तरदाताओं का मत है कि शिक्षा समाजिक–आर्थिक दृष्टि से सशक्त करती है। अनुसूचित जाति की महिलायें उच्च शिक्षा के प्रेरित करने वाले कारकों में सबसे महत्त्वपूर्ण कारक सामाजिक–आर्थिक दृष्टि से सशक्त होना व आत्मनिर्भरता को मानती है। उनका मत है कि उच्च शिक्षित महिला सामाजिक व आर्थिक स्तर पर अपने निर्णय स्वयं ले सकती है। उच्च शिक्षा से आत्मविश्वास बढ़ने व पारिवारिक सदस्यों के उच्च शिक्षित होने से वे उच्च शिक्षा के प्रति प्रेरित हुईं। अतः अनुसूचित जाति की महिलाओं में शैक्षणिक गतिशीलता के लिये प्रेरित करने वाले कारकों में सामाजिक, आर्थिक तथा पारिवारिक कारक महत्त्वपूर्ण हैं।

वर्तमान में संवैधानिक प्रावधानों एवं सरकार द्वारा चलाये जाने वाली योजनाओं के फलस्वरूप न केवल नगरीय क्षेत्र में वरन् ग्रामीण क्षेत्रों में भी अनुसूचित जाति के लोगों में अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता स्पष्टतः देखी जा सकती है। शिक्षा के प्रति यही जागरूकता अनुसूचित जाति की महिलाओं में भी देखी जा सकती है। यह जागरूकता न केवल शिक्षित महिलाओं में वरन् उन महिलाओं में भी देखी जा सकती है जो शिक्षा से वंचित रहीं हैं। अनुसूचित जाति की महिलायें अब अपनी अगली पीढ़ी की शिक्षा को लेकर बहुत जागरूक हैं और इस संदर्भ में वे लैंगिक भेदभाव नहीं करती। क्षेत्रीय कार्य के दौरान महिला उत्तरदाताओं में अपने पुत्र व पुत्री की शिक्षा के संदर्भ में समानता की विचारधारा देखने को मिली। ९६ प्रतिशत महिलायें पुत्र एवं पुत्री को शिक्षा के समान अवसर प्रदान करती हैं। उनका मत है कि पुत्र एवं पुत्री को समान अवसर

मिलने से ही समाज आगे बढ़ेगा एवं वे समाज के जागरूक नागरिक बनकर एक स्वस्थ एवं समृद्ध समाज का निर्माण कर सकेंगे। शिक्षा के प्रति रुझान रैगर, बलाई व खटीक जाति की महिलाओं में हरिजन, बावरिया एवं नट जाति से तुलनात्मक रूप अधिक देखने को मिला। अतः वर्तमान में अनुसूचित जाति की महिलाओं में शिक्षा को लेकर विचारधाराओं में परिवर्तन आ रहा है जिससे वर्तमान में शिक्षा के परिदृश्य में परिवर्तन को स्पष्टतः देखा जा सकता है।

अनुसूचित जाति की महिलायें चाहे स्वयं शिक्षित हो या नहीं हो। अपनी आने वाली पीढ़ियों की शिक्षा के प्रति जागरूक अवश्य हैं। शिक्षा के प्रति लैंगिक आधार पर समानता की धारणा रखते हुए समान अवसरों को दिए जाने में भी विश्वास रखती है। यह समानता की धारणा उन जातियों में अधिक है, जो उच्च जाति के सम्पर्क में है। रैगर, बलाई व खटीक जाति की महिलाओं में पुत्र व पुत्री की शिक्षा के लिये समानता के अवसर देने की विचारधारा अधिक है, लेकिन हरिजन, बावरिया व नट जाति में यह समानता की धारणा कम है। बावरिया एक खनाबदोश समूह है। अतः पूर्णतः अशिक्षित है जिसके कारण शिक्षा के प्रति उनमें जागरूकता बिल्कुल नहीं है। हरिजन जाति में जातिगत भेद के कारण यह जागरूकता का स्तर अपेक्षाकृत कम है।

अनुसूचित जाति की महिलाओं में जागरूकता लाने में सरकार द्वारा दी जा रही निःशुल्क शिक्षा तथा छात्रवृति योजनाओं का योगदान प्रमुख है। सदियों से शिक्षा से वंचित रही अनुसूचित जाति समूह की महिलायें इन योजनाओं का लाभ उठा रही हैं, जिसके कारण औपचारिक शिक्षा प्राप्त करने वाली अनुसूचित जाति की महिलाओं के प्रतिशत में बढ़ोतरी स्पष्टतः शोधकार्य के दौरान देखी गयी। शैक्षणिक गतिशीलता सर्वाधिक रैगर, बलाई व खटीक जाति की महिलाओं में देखी गयी। विशेष रूप से उन महिलाओं में जिनकी पारिवारिक पृष्ठभूमि का शैक्षणिक स्तर उच्च रहा हो या पारिवारिक सदस्यों की सरकारी सेवा में भागीदारी हो।

अतः वर्तमान में अनुसूचित जाति की महिलाओं में शिक्षा के प्रति कई प्रेरक कारक हैं, जो उन्हें न केवल शिक्षा के क्षेत्र में आने वाली चुनौतियों का सामना करने की प्रेरणा देते हैं वरन् आगे वाली पीढ़ी की शिक्षा के लिये भी वैचारिकी परिवर्तन कर लैंगिक भेद के विना शिक्षा के समान अवसर उपलब्ध कराकर परिदृश्य को परिवर्तित कर रही है।

निष्कर्ष– भारतीय समाज में जातिगत भेदभाव वर्तमान में भी स्पष्टतः देखे जा सकते हैं। वर्तमान में जाति व्यवस्था के स्वरूपों, प्रतिबंधों, नियमों में व उच्च व निम्न जातियों के मध्य सामाजिक सम्पर्क के संदर्भ में परिवर्तन अवश्य आ रहा है। लेकिन यह जाति व्यवस्था की समाप्ति नहीं वरन् इसका परिवर्तित स्वरूप है। अनुसूचित जाति के सामाजिक, आर्थिक व शैक्षणिक विकास के लिए केन्द्र व राज्य सरकारों द्वारा कई प्रकार के कल्याणकारी कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं, जिसके परिणामस्वरूप अनुसूचित जाति की महिलाओं में भी परिवर्तन दिखाई देने लगा है।

भारत में ग्रामीण क्षेत्रों में अनुसूचित जाति की महिलाओं की स्थिति में सकारात्मक बदलाव और चुनौतियाँ दोनों देखी गई। शिक्षा तक उनकी पहुँच में प्रगति हुई है जिससे नामांकन दर में वृद्धि हुई है। बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ अभियान, सर्व शिक्षा अभियान और शिक्षा का अधिकार अधिनियम जैसी सरकारी पहलों ने इस प्रगति में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। अनुसूचित जाति की महिलायें शिक्षा के लिए प्रेरित करने वाले कारकों में सामाजिक व आर्थिक कारक को प्रमुख मानती है, उनका मत है कि यह अशिक्षा ही है जिसके कारण उनका जाति समूह व वे स्वयं सामाजिक आधार पर वंचनाओं व उपेक्षाओं को झेलने को बाध्य थी। अतः शिक्षा के द्वारा सामाजिक बुराईयों से लड़कर व आर्थिक आधार पर सशक्त होकर वे अपने खिलाफ होने वाले भेदभावों से लड़ पाएगीं।

सन्दर्भ सूची

- Khan, Mumtaz Ali, Scheduled Caste and Their Status in India, Delhi, Uppal Publishing House, Delhi, 1980.
- Khanna, Surinder, Dalit Women and Human Rights, Swastik Publications, Delhi, 2011.
- Leela, Viswanath, Social Mobility Among Scheduled Caste Women, Uppal Publishing House, Delhi, 1993.
- Sharma, K. L., The Changing Rural Stratification System, Orient Longman, New Delhi, 1974.
- Showeb, M., Education and Social Mobility among Harijans, Ashish Publishing House, Delhi, 1986.
- Singh, Narendra Pal, Scheduled Caste Women Development Policy and Plan Implementation: A Sociological Study of Agra District of Uttar Pradesh, Radha Publications Delhi, 2017.
- Vetschera, TraudePillai, Ambedkar's Daughters: A Study of Mahar Women in Ahmednagar District of Maharashtra, in Dalits in Modern India: Vision and Values, (ed.) by S.M. Michael, Vistaar Publications, New Delhi, 1999, pp-235 259.
- Yashaswini B., Pradeep B. S., Status of Rural Scheduled Caste Women in Early 21st Century, Current Publications, Mumbai, 2023.

———————

Shodh Navneet (International Peer-Reviewed Research Journal)
ISSN : 2321-6581, Vol. XXII, January - June 2024

नई सदी की हिन्दी फिल्मों में स्त्री मुद्दे एवं प्रतिनिधि फिल्में

डॉ. दिनेश कुमार सैनी*

हिन्दी सिनेमा में स्त्री की भूमिका और उसका प्रतिनिधित्व एक जटिल और विवादास्पद मुद्दा है। पुरानी हिन्दी फिल्मों में स्त्री की भूमिका अक्सर सीमित और घरेलू होती थी। स्त्री के कार्यों को महज रसोईघर और घर की चारदीवारी तक ही सीमित रखा जाता था। वह पत्नी, माँ और बहन के रूप में चित्रित की जाती थी। घरेलू कार्यों में सिद्धस्थ हो जाना और मातृत्व जिम्मेदारी का निर्वहन कर लेना ही किसी महिला की पारिवारिक और सामाजिक स्वीकृति थी। स्त्री की यह संकीर्ण और दायरों में बाँधी हुई भूमिका स्त्री की स्वतंत्रता और उसके अधिकारों के बारे में और नकारात्मक संदेश देती है। वैजयंती माला की चौदहवीं का चाँद, मधुबाला की मुग़ल-ए-आज़म, जयाप्रदा की अभिमान, शर्मिला टैगोर की चुपके चुपके, हेमा मालिनी की शोले, माधुरी दीक्षित की बेटा, काजोल की दिलवाले दुल्हनिया ले जाएंगे इत्यादि ऐसी फिल्में हैं जो स्त्री के दृष्टिकोण से महत्त्वपूर्ण और उल्लेख योग्य हैं, परन्तु इन फिल्मों में महिला छवि को वस्तुकृत किया गया है। यह वस्तुकरण (ऑब्जेक्टिफिकेशन) यह स्पष्ट कर देता है कि स्त्री पुरुष के सामने सिर्फ़ एक साधन है साध्य नहीं। पुरानी हिन्दी फिल्मों में स्त्री को केवल शोपीस के तौर पर जगह दी गई है; क्योंकि इस दौर की तकरीबन सभी फिल्मों में महिला किरदारों को पुरुष चरित्रों के बरक्स कमजोर, लाचार, बेबस तथा परनिर्भर दिखाया जाता था। इस दौर की हिन्दी फिल्मों की अभिनेत्री ऐसी आज्ञाकारी और शान्त स्त्री के रूप में पर्दे पर हमारे समक्ष आती है जिसके लिए उसका पति ही परमेश्वर है। समाज की जटिल और पक्षपात पूर्ण दोयम दर्जे की रूढ़ियों और पुरातन मान्यताओं के कटु यथार्थ को भोगने वाली स्त्रियाँ पुरुष सत्तात्मक समाज के खाँचे में इस कदर सहजता से समर्पित हो जाया करती थी कि पुरुषों ने स्त्री की इस सहजता को महिला शोषण के प्रमुख हथियार के रूप में इस्तेमाल किया। इस तरह की सभी शोषणकारी प्रवृत्तियों को बीसवीं सदी के फिल्मकारों ने बड़ी कलात्मकता और मार्मिकता के साथ रूपहले पर्दे पर चित्रित किया। गीना डेविस संस्थान की २०१७ की एक रिपोर्ट के अनुसार बॉलीवुड में १० में से केवल एक निर्देशक महिला है। अन्य आँकड़े बताते हैं कि महिलाओं के लिए स्क्रीन टाइम मात्र ३१.५ था, जबकि पुरुष अभिनेताओं को ६८.५ समय मिला। निर्देशन, पटकथा लेखन, तकनीकी कुशलता और मेकओवर युक्तियों जैसी ऑफ स्क्रीन प्रक्रियाओं में महिलाओं की तुलना में पुरुषों की संख्या में पर्याप्त असमानता के कारण हिन्दी फिल्म उद्योग में महिला किरदारों को बड़े स्तर पर मर्दवादी मानसिकता से दिखाया गया है।

* हिन्दी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, राजस्थान।

शिक्षा के प्रसार, वैश्वीकरण के बाद बदलते सामाजिक और आर्थिक सांस्कृतिक परिदृश्य, स्त्री अधिकारों के प्रति जागरूकता और स्त्री आंदोलनों के परिणाम स्वरूप नई सदी में स्त्री ने अपने आपको सशक्त और आत्मनिर्भर बनाने हेतु कई सार्थक और वाज़िब प्रयास किये तथा पुरुष सत्ता की चक्की में पिसती स्त्री चेतना ने प्रतिरोध और असहमति के स्वर फूँके। स्वयं एवं समाज की अपेक्षाओं के बीच संतुलन स्थापित करने के लिए समझौता परस्त और शोषित स्त्री अब सजग और सतर्क हो गयी है। आजकल वह इतना चिंतन और मंथन करने लग गयी है कि वह क्यों इतनी शोषित और अभावग्रस्त है। उसने अपने दयनीय अतीत से सबक लेकर यह निश्चय कर लिया कि अब वह और अधिक शोषण और प्रताड़ना बर्दाश्त नहीं करेगी। बोडो कवयित्री रूपाली सोरगियारी स्त्री मन की इसी भावना को व्यक्त करते हुए लिखती हैं–

"मैं चाहती हूँ
खुला आसमान
जहाँ हो सब समान
पशु–पक्षी लोग बाग
जहाँ न हों
ऊँच–नीच के भाव
शोषण–उत्पीड़न, घृणा अपेक्षा।"

नई सदी के हिन्दी सिनेमा में कुछ फिल्मकारों ने स्त्री को नितांत नये, पहले से भिन्न और समय सापेक्ष परिवर्तनों से ओत–प्रोत दिखाकर प्रस्तुत किया। यह प्रस्तुति स्त्री की बदलती छवि, स्त्री की पुनः निर्मित सोच और सम अधिकार युक्त माहौल की पुरज़ोर अपील करती है। इस परिप्रेक्ष्य में कहना समीचीन होगा कि नई सदी के हिन्दी सिनेमा के बहु–आयामी दृष्टिकोण और विषय वस्तुगत व्यापकता के साथ–साथ स्त्री जीवन से जुड़े विविध सरोकारों को भी हिन्दी फिल्मों में स्थान मिलने लगा। इस सदी के हिन्दी सिनेमा ने स्त्री आकांक्षा, उसकी सामाजिक पारिवारिक समस्या और रोजमर्रा के जीवन के अनछुए पहलुओं को प्रकाश में लाने का प्रयास किया है। नई सदी की कुछ उल्लेखनीय और चुनिंदा स्त्री–केंद्रित हिन्दी फिल्मों पर विचार करने के पश्चात् इन फिल्मों के प्रमुख मुद्दों को अग्रलिखित विश्लेषण से समझा जा सकता है–

नई सदी की लिंग आधारित हिंसा से जुड़ी फिल्मों में 'पिंक', 'थप्पड़' और 'मुल्क' अग्रगण्य हैं। यह फिल्में महिलाओं के खिलाफ हिंसा और उत्पीड़न के मसले को दिखाती है। थप्पड़ तापसी पन्नू के अभिनय जीवन की एक ऐसी गंभीर फ़िल्म है जो घरेलू हिंसा के मुद्दे को बड़े सलीके से पेश करती है। तापसी पन्नू ने इसमें बड़ा प्रभावी अभिनय किया है। यह फिल्म प्रकारांतर से यह संदेश देना चाहती है कि हिंसा अब न तो स्वीकार्य है और न ही माफी योग्य। 'क्वीन', 'कहानी', 'गुलाबगैंग' स्त्री सशक्तिकरण और स्वतंत्रता के बारे में हैं। महिला अधिकारों और समतामूलक

वातावरण को अभिव्यक्ति देने वाली फिल्मों में 'लिपस्टिक अंडर माय बुर्का', 'पार्च्ड', 'मॉम' प्रमुख हैं। महिला सुरक्षा विषयक चर्चित और अर्थवान फिल्मों में 'मर्दानी', 'नीरजा', 'निर्भया' हैं। पारिवारिक और घरेलू पहलुओं के लिहाज से 'इंग्लिश-विंग्लिश', 'बदलापुर', 'कपूर एण्ड संस', 'पीकू' वजनदार फिल्में कही जा सकती हैं। 'इंग्लिश विंग्लिश' एक ऐसी फ़िल्म है जो स्त्री चेतना और उसकी ताकत को उभारकर पितृसत्ता को शालीन और संयतभाव से चुनौती देती है। यह फ़िल्म समाज से स्त्री को पुरुष से कमतर न समझने की गुजारिश करने वाली ऐसी सटीक कहानी है जो औरत के दृढ़ निश्चय को आधार बनाकर रची गयी है।

स्त्री, स्त्रीत्व और स्त्री मुक्ति के प्रश्नों ने नई सदी की हिन्दी फिल्मों में जोरदार टकराहट पैदा की है। इस कालखण्ड की कई फ़िल्मों में स्त्री चेतना अपने मुखर स्वर में मौजूदगी दर्ज कराती है। जिनमें राजी, नो वन किल्ड जेसिका, द डर्टी पिक्चर, डियर जिंदगी, गंगूबाई काठियावाड़ी प्रमुख हैं। स्त्री चिंतन और स्त्री अस्मिता को हिन्दी फिल्मों के संसार मे अलंकर्ता श्रीवास्तव, सुजीत सीरकार, जोया अख्तर, मेघना गुलजार, गौरी शिंदे, ओमंग कुमार और अश्विनी अय्यर तिवारी जैसे फ़िल्मकार असरदार ढंग से अपनी आवाज दे रहे हैं। इन सभी फ़िल्मकारों के कुछ युग विजित स्त्री किरदार पुरुष सत्तात्मक सोच को चुनौती देते हुए किसी कवयित्री के शब्दों में मानो कह उठते हैं-

"मगर अब नहीं चाहती
कि दो रोटी, दो कपड़ों में
सिमट कर रह जाए
मेरी हैसियत और मेरी अस्मिता
इसलिए इस निराधार जीवन का
अंत कर
अपने लिए कुछ करूँगी।"

आज की कितनी ही हिन्दी फिल्में स्त्री की दमित कुंठा और पुरुष की स्त्री के प्रति दोयम दर्जे की मानसिकता को प्रकाश में लाकर यह स्थापित करती हैं कि स्त्री न तो वस्तु है, न कोई बेजान गुड़िया है जिसके साथ आदमी मनमाना बर्ताव करे, वह भी इंसान है और उसे भी एक इंसान के तौर पर गरिमामय और भेदभाव रहित जीवन चाहिए। सुरेश त्रिवेणी के निर्देशन में बनी फ़िल्म 'तुम्हारी सुलू' मध्यम वर्गीय स्त्री के सपनों को सच कर देने का सफर दिखाती है तो फिल्म 'हिचकी' की नैना माथुर नामक एक बीमार शिक्षिका के प्रेरक व्यक्तित्व से हमें रूबरू कराती है। अश्विनी अय्यर तिवारी की 'नील बट्टे सन्नाटा' और 'पंगा' ऐसी यादगार फिल्में हैं जो महिलाओं में अपनी क्षमता और सामर्थ्य पर विश्वास पैदा करने का रास्ता और जरिया दिखा सकती हैं। हालिया फ़िल्म 'गंगूबाई काठियावाड़ी' एक वेश्या पर आधारित है जिसका एक जबरदस्त संवाद "जब शक्ति, संपत्ति और सद्बुद्धि तीनों ही औरत है तो इन मर्दों को गुरूर कैसा?" बड़ा ही प्रभावी और

व्यंग्यात्मक संवाद सीधे-सीधे शोषणकारी पुरुष सत्तात्मक ढ़र्रे को खुली चुनौती है। समसामयिक हिन्दी फिल्मों को स्त्री के दृष्टिकोण से समझने परखने के बाद यह कहना युक्ति-युक्त होगा कि इनमें से बहुतेरी फ़िल्में स्त्री के सम्मान, स्त्री की समस्या और उसकी त्रासद जीवन झाँकी को फ़िल्मों के कथ्य के रूप में अपना रही हैं। पुरानी फ़िल्में स्त्री जीवन की मुश्किलों एवं मजबूरियों को केंद्र में रखती थी मगर आजकल की हिन्दी फिल्में स्त्री समस्याओं के समाधान को लेकर गंभीर एवं तल्ख नज़रिया अख्तियार कर रही हैं।

संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि आज की हिन्दी फिल्में स्त्री संबंधी मिथकों को चुनौती देकर पुरुष प्रधान सोच के प्रति न सिर्फ़ प्रतिरोध का वातावरण निर्मित कर रही हैं वरन् समाज में अपने हक व अधिकारों को हासिल करने के लिए स्त्री को हर मुमकिन प्रयास करने के तरीके भी बता रही हैं। नई सदी की हिन्दी फ़िल्में मजबूत और नेतृत्वकारी स्त्री किरदारों को प्रस्तुत कर रही हैं। इस दौर में पहले के मुकाबले हिन्दी सिनेमा के व्यापक फलक पर स्त्री के प्रतिनिधित्व और उसकी स्थिति में सकारात्मक परिवर्तन परिलक्षित हुए हैं। अब वह पुरुष के साथ कंधे से कंधा मिलाकर अपनी क्षमता का प्रदर्शन कर रही हैं। प्रियंका चोपड़ा, कंगना राणावत, करीना कपूर खान, तापसी पन्नू, विद्या बालन, दीपिका पादुकोण, आलिया भट्ट सरीखी अभिनेत्रियों ने पुरुष कलाकारों के बराबर मेहनताने को लेकर आवाज बुलंद कर यह जता दिया है कि अब शोषण और असमानता गुज़रे वक़्त की बात है। सिनेमा में महिला चेतना और कुछ प्रेरणास्पद महिला व्यक्तित्वों के दमखम और प्रतिभा के आधार पर हिन्दी सिनेमा के संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि आने वाले वक्त में स्त्री के लिए और अधिक अनुकूल और सहज परिस्थितियाँ होंगी।

सहायक-ग्रन्थ

- भारतीय सिने-सिद्धांत, डॉ. अनुपम ओझा, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली।
- हिन्दी सिनेमा का सच, सं. मृत्युंजय (मृणाल पांडे का आलेख)।
- सिनेमा समकालीन सिनेमा, अजय ब्रह्मात्मज, वाणी प्रकाशन, इलाहाबाद।
- स्त्री विमर्श हाशिये से पृष्ठ तक, डॉ. भारती शर्मा, बोधि प्रकाशन, जयपुर, राजस्थान।
- इक्कीसवीं सदी का हिन्दी सिनेमा, डॉ. सुषमा म्हरावत।
- हिन्दी सिनेमा : आदि से अनन्त (चौथा खण्ड), प्रह्लाद अग्रवाल, साहित्य भंडार, इलाहाबाद।

Shodh Navneet (International Peer-Reviewed Research Journal)
ISSN : 2321-6581, Vol. XXII, January - June 2024

संस्कृत वाङ्मय में 'धर्म' एक दर्शन

डॉ. प्रवीण शर्मा*

प्रस्तावना–

नरत्वं दुर्लभं लोके विद्या तत्र सुदुर्लभा।
कवित्वं दुर्लभं तत्र शक्तिस्तत्र सुदुर्लभा।।
विद्वत्वं च नृपत्वं च नैव तुल्यं कदाचन।
स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते।।

मानव जीवन अत्यन्त दुर्लभ है तथा इस जीवन को विद्यारूपी आभरण से अलंकृत करना इससे भी दुष्कर है। जो मनुष्य इन दोनों सोपानों को पारकर विद्वता को प्राप्त कर लेता है वही मानव इस धरणी पर शोभा व पूजा को प्राप्त होता है। वेद–उपनिषद–आरण्यक–स्मृतिग्रन्थ–रामायण–महाभारत–नाट्यशास्त्र–वास्तुशास्त्र–ज्योतिषशास्त्र–आयुर्वेद–कामशास्त्र–दर्शनशास्त्र तथा सौन्दर्यशास्त्र इत्यादि साहित्य पर दृष्टिवीक्षण करने पर यह सिद्ध हो जाता है कि इसका एक मात्र ध्येय है– मानव और मानवता का उन्नयन एवं कल्याण।

उन्नति एवं विकास की इस परम्परा की अभिवृद्धि के लिए यह संस्कृत साहित्य प्रकृति अनुकूल परम्पराओं एवं मान्यताओं का समर्थन करता है। इसे यदि वैदिक धर्म से अभिहित किया जाए तो कोई अतिशयोक्ति नही होगी। इस धर्म में प्रकृति को ही सर्वशक्तिमान माना गया है। निखिल वसुन्धरा पर दृष्टिपात करने पर एक अद्भुत व्यवस्था दिखलाई देती है जहाँ पर सम्पूर्ण कार्यकलाप एक सुव्यवस्थित तरीके से सम्पन्न होते हुए दृष्टिगोचर होते हैं। इसे ही वैदिक धर्म कहा जा सकता है। इस भूमि पर पुरातन काल से धर्म और नैतिकता एक–दूसरे के पर्याय के रूप में सुशोभित रहे हैं। आज भारतीय समाज में धर्म एवं नैतिकता दो ऐसे विषय रहे हैं जिसके स्तर में नित्य प्रति न्यूनता दृष्टिगोचर हो रही है। 'धर्म' शब्द का प्रयोग संकुचित एवं स्वार्थपूर्ण अर्थों में प्रयोग होने लगा है। धर्म जिसे यह सम्पूर्ण धरित्री धारण करती है, जिसमें समस्त मनुष्य के कल्याण की भावना छुपी हुई हो इस विस्तृत अर्थवाली परिभाषा को धर्म कहा जा सकता है। धर्म के रूप में व्यापक दृष्टिकोण रखना ही भारतीय संस्कृति की विशेषता है। परन्तु आज तो मनुष्य ने इसे खण्डित करने का प्रयत्न किया है। इसीलिए 'धर्म' के विषय पर आज सर्वत्र असहिष्णुता

* सहायक आचार्य–संस्कृत, अटल बिहारी वाजपेयी राजकीय महाविद्यालय सुन्नी शिमला, हिमाचल प्रदेश भारत।

परिलक्षित होती है। नित्य प्रति विभिन्न धर्मों में अन्तर्कलह का परिवेश बन रहा है। साथ ही साथ प्रकृति के प्रति कोई आत्मीयता का भाव न रखना, इसका त्यागपूर्वक उपभोग न करना, इसके प्रति आदर व सम्मान के भाव में न्यूनता आना भारतीय संस्कृति के खण्डित होने का प्रमाण है।

कूट शब्द : वेद, धर्म, उपनिषद्, आरण्यक, रामायण, महाभारत, श्रीमद्भगवद्गीता, लौकिक-साहित्य, वैदिक वाङ्मय।

धर्म की अवधारणा : 'धर्म' शब्द की सर्जना संस्कृत भाषा की 'धृ' धातु से हुई है यथा- **'ध्रियते लोकोऽनेन, धरति लोकं वा।'** अर्थात् लोक जिसे धारण करता है, लोक में व्यक्ति, कुटुम्ब, समाज, राष्ट्र व अखिल जगत् समाविष्ट हो जाता है। अतः जो इन सभी को नीरोग, स्थिर व विशुद्ध बनाए रखे वही धर्म है।

धारणाद्धर्ममित्याहुः धर्मो धारयते प्रजाः।
यः स्याद् धारण संयुक्तः स धर्म इति निश्चयः।।[१]

इस जगत् में जितना प्राचीन इतिहास मानव का रहा है धर्म भी उतना ही पुरातन दृष्टिगोचर होता है। यदि धर्म को मनुष्य का नैसर्गिक गुण कहा जाए तो इसमें कोई अतिशयोक्ति न होगी यथा धरित्री पर अनेक मानव सभ्यताएँ, परम्पराएँ तथा संस्कृतियाँ पुष्पित हुई हैं। इन सभी संस्कृतियों व सभ्यताओं का गहन अनुशीलन करने पर इनके धर्मों में अन्तर दृष्टिगोचर होता है। जिसे निवर्तमान समय में भी देखा जा सकता है। अतः कहा जा सकता है कि देशकाल व परिस्थिति के अनुरूप ही धर्म की परिकल्पना रही है। मानव जीवन को सुव्यवस्थित, प्रतिबन्धित व मर्यादित करने के लिए ही एक व्यवस्था या परम्परा का विकास हुआ है जिसे धर्म की संज्ञा दी गई है। धर्म का क्षेत्र इतना व्यापक रहा है जिसने मनुष्य के सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक इत्यादि क्षेत्र को पूर्णतया प्रभावित किया है। यदि सम्पूर्ण धरा के धर्मों पर एक दृष्टिवीक्षण किया जाए तो यह ज्ञान प्राप्त होता है कि सभी धर्म एक ही हैं तथा ईश्वर धर्म का केन्द्र बिन्दु है। इसे ही विभिन्न धर्मों विविध नामों से जाना जाता है। वेदों में उसी सत् या ईश्वर को एक ही माना है। यथा- **'एकं सद्विप्राः बहुधा वदन्ति।'**[२]

यदि सरल व स्पष्ट शब्दों में कहा जाए तो विविध प्रकार के गुणों के समवाय को धर्म की संज्ञा दी जा सकती है। यदि वैदिक साहित्य से छान्दोग्य उपनिषद् का संदर्भ प्रस्तुत किया जाए तो वहाँ पर यज्ञ करना, अध्ययन, दान, तप एवं बह्मचर्य पालन को धर्म माना गया है। यथा-

त्रयो धर्मस्कन्धाः यज्ञोऽध्ययनं दानमिति प्रथमः,
तप एव द्वितीयः ब्रह्मचारी आचार्यकुलवासी
तृतीयोऽत्यन्तमात्मानमाचार्यकुले अवसादयन्।[३]

याज्ञवल्क्य स्मृति के अनुसार सुपात्र को दान देना धर्म है। इसके साथ-साथ यज्ञ, शुद्ध आचरण, अहिंसा, इन्द्रिय नियन्त्रण, अहिंसा, दान व योग को धर्म का नाम दिया है।[४]

महाराज मनु ने मनुस्मृति में आचार को ही धर्म स्वीकार किया है– '**आचारो धर्मः।**'[५] इन्होंने धर्म को विस्तृत रूप प्रदान करते हुए धर्म के दस लक्षण प्रतिपादित किया है।

धृति क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहम्।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम्।।[६]

अर्थात् धृति, दम–अहङ्कार रहित होना, शुचिता पवित्रता, क्षमा, अस्तेय–चोरी न करना, इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखना, विद्या, सत्य तथा क्रोध न करना ये दस लक्षण स्वीकार किये हैं।

भारतीय सनातन संस्कृति में मानव जीवन को सफल बनाने के लिए पुरुषार्थ चतुष्ट्य धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष की प्राप्ति को बतलाया गया है। वहीं आदिकवि वाल्मीकि ने रामायण में धर्म को सर्वश्रेष्ठ स्वीकार किया है। यथा–

धर्मो हि परमो लोके सत्यं प्रतिष्ठितम्।
धर्मं सश्रितमप्येतत् पितुर्वचनमुत्तमम्।।[७]

आदिकवि महर्षि वाल्मीकि ने सत्य को ही सर्वोत्तम धर्म स्वीकार किया है।

आहुं सत्यं हि परमं धर्मं धर्मविदो जनाः।
सत्यमाश्रित्य च मया त्वं धर्मं प्रतिचोदितः।।[८]

श्रीमद्भागवत पुराण में महर्षि नारद जी ने धर्मराज युधिष्ठिर को धर्म के तीस लक्षण बतलाए हैं। यथा–

सत्यं दया तपः शौचं तितिक्षेक्षा शमो दमः।
अहिंसा ब्रह्मचर्य च त्यागः स्वाध्याय आर्जवम्।।
सन्तोषः समदृक सेवा ग्राम्येहोपरमः शनैः।
नृणां विपर्ययहेक्षा मौनमात्मविमर्शनम्।।
अन्नाधादेः संविभागो भूतेभ्यश्च यथार्थतः।
तेष्वात्मदेवताबुद्धिः सुतरां नृषु पाण्डव।।
श्रवणं कीर्तनं चास्य स्मरणं महतां गतेः।
सेवेज्यावनतिर्दास्यं सख्यमात्मसमर्पणम्।।
नृणामयं परो धर्मः सर्वेषां समुदाहृतः।
त्रिंशल्लक्षणवान् राजन्सर्वात्मा येन तुष्यति।।[९]

अर्थात् सत्य, दया, तपस्या, शौच, तितिक्षा, उचित अनुचित बोध, मन का संयम, इन्द्रियों पर नियंत्रण, अहिंसा ब्रह्मचर्य, त्याग भावना, स्वाध्याय, सरलता, सन्तोष, समदर्शी, महात्मा शुश्रुषा, इत्यादि धर्म के तीस लक्षणों को स्वीकार किया है।

मनु महाराज ने भी धर्म के चार लक्षणों को माना है तथा वेद, स्मृति, सद् आचरण एवं आत्मा

को अच्छा लगने वाला आचरण को धर्म का लक्षण कहा है। यथा–

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम्।।

(मनुस्मृति, २.१२)

संस्कृत वाङ्मय में पग–पग पर विभिन्न प्रकार से धर्म को समझने का यत्न किया गया है। वेद प्रतिपादित नियम व सिद्धान्तों को धर्म से अभिहित किया गया है– '**चोदना लक्षणोऽर्थो धर्मः।**'[१०] जिससे निखिल अभ्युदय तथा कल्याण हो उसे भी धर्म की संज्ञा प्रदान की गई है– '**यतोऽभ्युदय निःश्रेयससिद्धिः स धर्मः।**'[११]

आपस्तम्ब धर्मसूत्र में वेदों का निरूपण कर धर्म का प्रमुख प्रमाण वेदों को स्वीकार किया है, तथा यह भी उद्घोषणा करता है कि आर्यजनों द्वारा जिस आचरण की हृदय से प्रशंसा की जाए वस्तुतः वही धर्म है– '**धर्मसमयः प्रमाणं वेदाः यं त्वार्याः क्रियमाणं प्रशंसन्ति स धर्मः।**'[१२] आर्य प्रशंसा का मूल कारण वेद विदित आचरण ही है। गौतम धर्मसूत्र में वेदों का बीजरूप स्वीकार किया गया है– '**वेदो धर्म मूलम्।**'[१३]

सनातन धर्म में धर्मशास्त्र का प्रमुख ग्रन्थ मनुस्मृति भी वेदों को अखिल धर्म का मूल के रूप में मान्यता देता है– '**वेदोऽखिलो धर्ममूलम्।**'[१४] इसके पश्चात् श्रुति तथा स्मृति ग्रन्थों में वर्णित आचार–व्यवहार तथा सिद्धान्तों को भी धर्म कहा गया है– '**श्रुति स्मृति विहितो धर्मः।**'[१५] याज्ञवल्क्य स्मृति ने धर्म की व्यापकता पर विचार प्रस्तुत करते हुए धर्म का मूल केवल वेद में स्वीकार नहीं किया, अपितु वह समस्त परम्परागत ज्ञान जो वेद से इतर है जिसमें श्रुति, स्मृति, श्रेष्ठ आचरण, स्वविवेक से जिसे श्रेष्ठ व अच्छा माना गया है और श्रेष्ठ एवं दृढ़ संकल्प से युक्त उत्पन्न इच्छा को भी धर्म का मूल स्वीकार किया गया है। यथा–

श्रुति स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
सम्यक् संकल्पजः कामो धर्ममूलमिदं स्मृतम्।।[१६]

अतः स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय धर्म का मूल वेदों में ही दृष्टिगोचर होता है। नीतिसारीय जयमंगला की उद्घोषणा है– '**धर्माधर्म वेदनाद्वेदाः।**'[१७]

भारतीय सनातन धर्म का चरमोत्कर्ष इष्ट प्राप्ति तथा अनिष्ट का निराकरण करना ही है। धर्म के इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए वेद ही प्रमुख ईश्वरीय उपहार है। आचार्य सायण ने वेद की निम्न परिभाषा प्रतिपादित की है– '**इष्टप्राप्त्यनिष्टपरिहारयोरलौकिकमुपायं वेदयति व इति वेदः।**'[१८]

संस्कृत वाङ्मय में उद्धृत धर्म का महात्म्य प्रस्तुत पद्य से स्पष्ट व सिद्ध हो जाता है। यथा–

सत्येनोत्पद्यते धर्मो दयादानेन वर्धते।
क्षमायां स्थाप्यते धर्मो क्रोधलोभाद्विनश्यति।।

धर्मोमातेव पुष्णाति धर्मः पातिपितेव च।
धर्मः सखेव प्रीणाति धर्मः स्निह्यति बन्धुवत्।।

अर्थात् धर्म सत्य से आविर्भूत होता है, दया तथा दान से अभिवृद्धि को प्राप्त होता है। क्षमा के द्वारा स्थिर किया जाता है व क्रोध तथा लोभ से नाश को प्राप्त हो जाता है। धर्म मातृवत् हमारा पालन-पोषण करता है, पितृवत् रक्षण को करने वाला है तथा सम्बन्धियों की तरह स्नेह करने वाला है। अन्यापि च-

अन्यस्थाने कृतं पापं धर्मस्थाने विमुच्यते।
धर्मस्थाने कृतं पापं वज्रलेपो भविष्यति।।

अर्थात् किसी इतर स्थान पर किये गए पापों से धर्मस्थान में मुक्ति प्राप्त होती है, किन्तु धर्मस्थान पर ही किया हुआ पाप वज्रलेप सदृश ही बन जाता है। भाव यह है कि ऐसा कृत्य अत्यन्त दुःखद परिणाम देने वाला होता है।

वैदिक धर्म एक परिचय-जो सम्पूर्ण जगत् को धारण करता है उसे धर्म की संज्ञा दी जाती है। यदि विशेषतया वैदिक धर्म पर चर्चा करें तो वह धर्म जो ऋत् अर्थात् सत्य है वही वैदिक धर्म है। वैदिक धर्म यज्ञ प्रधान धर्म है। इसे भारतीय संस्कृति एवं धर्म में मेरुदण्ड माना गया है। वेदों में यज्ञ के माहात्म्य को प्रतिपादित किया गया है।

वेदाहि यज्ञार्थमभिप्रवृत्ताः।[१९]
वेदास्तावद्यज्ञकर्मप्रवृत्ताः।[२०]

भारतीय संस्कृति कर्म प्रधान संस्कृति रही है। वेदों में यज्ञ को सर्वश्रेष्ठ कर्म की संज्ञा दी गई है। शतपथ ब्राह्मण का कथन है- '**यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म।**[२१] यही कारण है कि निखिल वैदिक वाङ्मय वेद, आरण्यक उपनिषद् तथा ब्राह्मण ग्रन्थों का प्रमुख उद्देश्य यज्ञ प्रतिपादन ही रहा है। यज्ञ को निखिल भूवन की नाभि की संज्ञा प्रदान की गई है। इससे वेदों में यज्ञ की महनीयता स्पष्ट हो जाती है।

यज्ञो विश्वस्य भुवनस्य नाभिः।[२२]
अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः।[२३]

ऋग्वेद में एसे अनेक मन्त्र हैं जिनसे सनातन संस्कृति में यज्ञ करने की चिरस्थायी एवं शाश्वत परम्परा का बोध होता है। यथा- '**यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः।**[२५] भगवद्गीता भी यज्ञ के महत्त्व का प्रतिपादन विशद एवं सुस्पष्ट रीति से करती है। यज्ञ एवं मनुष्य का एक दूसरे से अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। प्रजापति द्वारा इस सृष्टि की उत्पत्ति के समय यज्ञ एवं मानव को साथ-साथ उत्पन्न करना तथा यह उद्घोषणा करना कि इस यज्ञ के माध्यम से मानव जाति का कल्याण होगा एवं यह मनोवांछित फल प्रदान करने वाला होगा। यज्ञ से देवता प्रसन्न होंगे तथा ये मानव जाति को यश-कीर्ति आदि फल प्रदान कर सन्तुष्ट करेंगे। इस प्रकार मानव एवं देवता दोनों

यथोचित रीति से एक दूसरे को पोषित एवं प्रसन्न करते हुए कल्याण को प्राप्त करने वाले बनों। यथा–

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्टवा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेववोडस्त्विष्टकामधुक्।।
देवान् भावयतानेन ते देवा भवयन्तु वः।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ।।[२६]

पद्मपुराण में तो यहाँ तक उल्लेख किया गया है कि मानव सर्जना ही यज्ञ कर्मों को निष्पादित करने के लिए हुई है। यथा–

यज्ञनिष्पत्तये सर्वमेतद् ब्रह्मा चकार ह।
चातुर्वर्ण्यं महाभाग यज्ञसाधनमुत्तमम्।।[२७]

शतपथ ब्राह्मण में यज्ञ को ब्रह्म स्वरूप स्वीकार किया गया है। क्योंकि ब्रह्मा जी ने सबसे पहले स्वप्रतिमा रूप में यज्ञ की ही सर्जना की है– '**अथैनमात्मनः प्रतिमामसृजद् यद् यज्ञम् तस्मादाहुः प्रजापतिर्यज्ञ इत्यात्मनो ह्येनंप्रतिमामसृजत।**[२८]

देवऋण से निवृत्ति प्राप्त करने के लिए भी यहाँ पर यज्ञ विधान का बहु प्रचलन है। भगवद्गीता में यज्ञ से इतर अशेष कर्मों को लोक बन्धन का हेतु बताकर यज्ञ सम्पादन को मनुष्य का प्रधान कर्म स्वीकार किया गया है। यथा– '**यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः।**'[२९] इसी तरह निखिल भारतीय संस्कृति में यज्ञ के माहात्म्य को सर्वत्र प्रसृत किया गया है। अतः समस्त मनुजों को यज्ञ सम्पादन करना चाहिए। जो मनुष्य यज्ञ के यथार्थ रूप व महत्त्व को न जानते हुए यज्ञ के प्रति श्रद्धा का भाव नहीं रखते तथा न ही यज्ञ करते हैं वे निश्चित रूप से नाश को प्राप्त हो जाते हैं। यथा–

नास्त्ययज्ञस्य लोको वै नाऽयज्ञो विन्दते शुभम्।
अयज्ञो न च पूतात्मा नश्यति छिन्नपर्णवत्।।[३०]

तात्पर्य है कि जो मनुष्य यज्ञ नहीं करते हैं वह पारलौकिक सुखों के साथ–साथ इहलौकिक कल्याण से भी वंचित हो जाते हैं। इसके परिणामस्वरूप वो मनुष्य आत्मशुद्धि एवं पवित्रता के अभाव में छिन्न–भिन्न पर्णों सदृश विनष्ट हो जाते हैं।

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः।।[३१]

इस प्रकार से सिद्ध होता है कि वैदिक धर्म यज्ञ प्रधान धर्म है। यज्ञों के माध्यम से ही देवताओं को प्रसन्न किया जाता रहा है। तैत्तिरीयोपनिषद इसी धर्म के पालन के साथ समस्त मानवों से सत्य बोलने का आह्वान कर रही है। यथा– '**धर्मं चर सत्यं वद।**'

अतः उपर्युक्त मन्त्रों से यह सिद्ध होता है कि सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय तथा वैदिक धर्म प्रकृति प्रधान है। यह धर्म ही मानव अनुकूल दृष्टिगोचर होता है। यथा–

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथः मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।।[३२]

यदि उपनिषद् के इस उद्घोष की अनुपालना की जाए तो राष्ट्र व इस निखिल धरा की अधिकांश समस्याओं का समाधान स्वतः ही हो जाएगा।

फलितांश–नैतिकता रूपी आभूषण से अलंकृत यह सनातन धर्म प्रकृति के साथ सामंजस्य को संस्थापित करते हुए निखिल जगत को निरंतर आगे बढ़ने की प्रेरणा देता आ रहा है। **'वसुधैव कुटुंबकम्'** इसी सनातन संस्कृति का अमर वाक्य है जो इस संपूर्ण धरित्री को परिवार की तरह देखता है व समस्त प्राणियों को समता के सूत्र में बाँधता है। अतः इस सनातन पुरातन प्राचीन ईश्वरीय सर्व कल्याणप्रद आर्यावर्ती धर्म का बोध व अभिवृद्धि अत्यंत ही आवश्यक है। यह प्राचीन धर्म इस राष्ट्र की धरोहर व आत्मा है इसकी रक्षा स्वयं की रक्षा करने जैसा ही है अर्थात् जो धर्म की रक्षा करता है धर्म उसकी रक्षा करता है।

सन्दर्भ

१. महाभारत, शान्तिपर्व, १०.८१
२. ऋग्वेद, १.१६४.४६
३. छान्दोग्योपनिषद्, २.२.३.
४. याज्ञवल्क्य स्मृति (काण्ड-१), उपक्रम प्रकरण, ६-७
५. मनुस्मृति, १.१०८
६. मनुस्मृति, ६.९२
७. वाल्मीकि रामायण, अयोध्या काण्ड, २१.४१
८. वाल्मीकि रामायण, अयोध्या काण्ड, १४.३
९. श्रीमद्भागवद पुराण, ७.११.८-१२
१०. पूर्वमीमांसा, १.१.२
११. वैशेषिक सूत्र, १.१.२
१२. आपस्तम्ब धर्मसूत्र, १.१.१२, ७.६.७
१३. गौतम धर्मसूत्र, १.१.२
१४. मनुस्मृत्ति, २.६
१५. धर्मशास्त्र का इतिहास, पृ. ५
१६. याज्ञवल्क्य स्मृति, १.७
१७. कल्याण वेदकथांक, पृ. १२५
१८. वैदिक साहित्य और संस्कृति का स्वरूप, पृ. ३

१९. वेदांग ज्योतिष, श्लोक- ३
२०. सिद्धान्त शिरोमणि मध्यमाधिकार, पद्य- ९
२१. शतपथ ब्राह्मण, १.७.१.५
२२. अथर्ववेद, ९.१०.१४
२३. शुक्ल यजुर्वेद, २३.११
२५. ऋग्वेद, १०.९०.१६, शुक्ल यजुर्वेद, ३१.१६
२६. श्रीमद्भगवद्गीता, ३.१०-११
२७. पद्मपुराण सृष्टि खण्ड, ३.१२३
२८. शतपथ ब्राह्मण, ११.१.८.३
२९. श्रीमद्भगवद्गीता, ३.९
३०. कल्याण वेद विशेषांक, पृ. ३३९
३१. भगवद्गीता, ३.१४
३२. ईशावास्योपनिषद्, मन्त्र- १.

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

- श्रीपाददामोदर सातवलंकर,वैदिक धर्म की विशेषता, सतारा।
- पं. अखिलानन्द शर्मा, दयानन्द दिग्विजयम् महाकाव्य, आर्य प्रकाशन दिल्ली, १९९७
- डॉ. श्रीधर भास्कर वर्णेकर, संस्कृत वाङ्मय कोश, भारतीय भाषा परिषद्, कोलकाता, १९९८
- सम्पा. श्री सनत्कुमार वन्द्योपाध्याय, वाल्मीकि रामायण्, गीताप्रेस, गोरखपुर, २०१५
- सम्पा. गायत्री वन्धोपाध्याय, श्रीमद्भगवद्गीता, गीताप्रेस, गोरखपुर, २०१६
- दुर्गाचार्यकृत टीका, निरुक्त, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, वाराणसी, २०१२
- श्रीधर भास्कर वर्णकर, संस्कृतवाङ्मयकोश, वाणी पब्लिकेशन, राजस्थान।
- राजबली पाण्डेय, हिन्दू संस्कार, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, १९९५
- प्रशान्त कुमार वेदालंकार,वैदिक साहित्य में नारी, वसुदेव प्रकाशन दिल्ली, १९६४
- वाचस्पति गैरोला, वैदिक साहित्य और संस्कृति, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, २०१३
- प्रीति प्रभा गोयल, भारतीय संस्कृति, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, २०१६
- सं. पाण्डुरंग शंकर, अथर्ववेद सायणभाष्यम्, सेन्ट्रल बुक डिपो, मुम्बई, १८९५
- भा. सातवलेकर,अथर्ववेद सुबोध भाष्यम्, स्वाध्याय मण्डल, पारडी, २०११
- भा. क्षेमकरण दास त्रिवेदी, अथर्ववेद भाष्यम् (हिन्दी), दयानन्द संस्थान नई दिल्ली, सं. २०३०
- ईला घोषा, ऋग्वैदिक ऋषिकाओं का जीवन एवं दर्शन, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली, २००७
- परमहंस परिव्राजकाचार्य (संम्पा.), ऋग्वेदभाष्य भाषानुवाद, प्रकाशक सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा।
- स्वामी दयानन्द सरस्वती, ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, प्रकाशक वैदिक यन्त्रालय, अजमेर, १९२०
- सम्पा. परमहंस परिव्राजकाचार्य, ऋग्वेदभाष्य भाषानुवाद प्रथम मण्डल, अजमेर।

शोध नवनीत शोध पत्रिका के सामान्य नियम

- शोध-नवनीत शोध पत्रिका के सम्पादक, समीक्षक आदि समस्त पद अवैतनिक हैं।
- शोध-नवनीत शोध पत्रिका देश-विदेश के विद्यार्थियों, शोधच्छात्रों, शिक्षाविदों तथा विभिन्न क्षेत्रों के विशेषज्ञों के शोध प्रक्रिया आधारित गुणवत्तापरक, ज्ञानपूर्ण एवं स्तरीय शोधपत्रों/शोधलेखों को नि:शुल्क प्रकाशन के लिए आमंत्रित करता है।
- सम्पादक मण्डल/समीक्षक समिति द्वारा चयनित शोधपत्रों/शोधलेखों को ही प्रकाशित किया जायेगा; किन्तु इसकी सामग्री के प्रति जवाबदेही इसके लेखकों की होगी। शोधपत्र/शोधलेख मौलिक या पाण्डुलिपि से सम्बन्धित होना चाहिए। लेखकों के मत से सम्पादक मण्डल की सहमति अनिवार्य नहीं है, किन्तु किसी धर्म, जाति, सम्प्रदाय आदि के विरुद्ध लेखों के प्रकाशन के लिए न विचार किया जायेगा और न ही प्रकाशित किया जायेगा।
- सम्पादक/सम्पादक मण्डल/समीक्षक आदि के द्वारा अस्वीकृत शोधपत्रों/शोधलेखों को उनके लेखकों को वापस नहीं किया जायेगा। इसलिए लेखक अपने पास इसकी एक प्रति सुरक्षित रखें। शोधपत्रों/शोधलेखों की सामग्री अनुचित या विवादित होने की स्थिति में सम्पादक/सम्पादक मण्डल/समीक्षक का निर्णय अन्तिम होगा। सम्पादक/सम्पादक मण्डल आदि द्वारा शोधपत्रों/शोधलेखों के पाण्डुलिपि आदि में कुछ परिवर्तन करके प्रकाशित किया जा सकता है।
- शोध-नवनीत में प्रकाशित शोधपत्रों/शोधलेखों को देश-विदेश के विश्वविद्यालय, महाविद्यालय, शोध-संस्थान आदि के द्वारा स्वीकृत या अस्वीकृत किये जाने पर प्रकाशक, सम्पादक, सम्पादक मण्डल, मुद्रक आदि की कोई जिम्मेदारी नहीं होगी।
- अगला अंक प्रकाशित होने के बाद पहले के अंकों की सामग्री का दुरुपयोग न हो इसलिए नष्ट कर दिया जायेगा। सी.डी./ई-मेल से प्राप्त लेखों को सुरक्षित रखने का प्रयास किया जायेगा।
- शोध-नवनीत से सम्बन्धित विवाद के किसी भी निर्णय के लिए न्यायिक क्षेत्र जनपद न्यायालय फैजाबाद ही मान्य होगा।
- लेखक शोध प्रक्रिया आधारित शोधपत्रों/शोधलेखों को 5 से 7 पृष्ठों (2000-3000 शब्दों) में Unicode (Mangal), Kruti Dev-10 (size 16)/Times New roman (Size-14) में संस्कृत/अंग्रेजी/हिन्दी भाषा में टंकित कराकर सी.डी. (हार्ड कॉपी सहित)/ई-मेल के माध्यम से नाम, पता, मोबाइल नं. ई-मेल सहित भेजें।
- **शोधपत्र में लगभग 150 शब्दों के शोधसार एवं मुख्य शब्द सहित सन्दर्भ अन्त में होना चाहिए।**
- शोधपत्र में सन्दर्भ, लेखक, पुस्तक, व्याख्याकार का नाम, प्रकाशक, प्रकाशन का स्थान, प्रकाशन वर्ष और पेज संख्या आदि सहित होना चाहिए।

सम्पर्क सूत्र : +91-7800193920

ई-संङ्केत : **shodhnavneet@gmail.com**

ISSN 2321-6581

अक्षर संयोजन एवं मुद्रक : **प्रभा कम्प्यूटर्स एण्ड प्रिंटर्स**, युनिवर्सिटी रोड, इलाहाबाद